जायसी साहित्य पर आधारित मध्यकालीन भारत का सामाजिक एवं सांस्कृतिक इतिहास
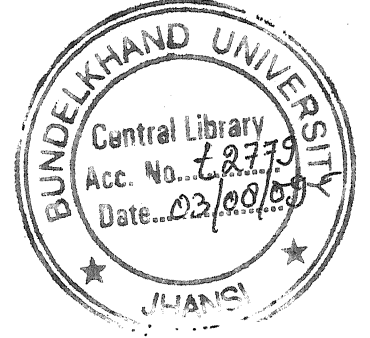
इतिहास विषय में पी-एच0डी0 उपाधि हेतु बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय झाँसी में प्रस्तुत-

शोध-प्रबन्ध

वर्ष - 2005

शोध निर्देशक
डॉ0 एस.पी. पाठक
(एम.ए., पी.-एच.डी., इतिहास)
विभागाध्यक्ष, इतिहास
बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी

प्रस्तुतकर्ता
विवेकानन्द सिंह
(एम.ए., एम.एड.)
बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी

अनुसंधान केन्द्र

बुन्देलखण्ड कॉलेज झाँसी, (उ0प्र0)

समर्पण
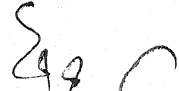
ममतामयी माँ

श्रीमती शिवकुमारी देवी

व

स्व० पिता जी

श्री रामदास सिंह

को

सादर समर्पित

Dr. S.P. Pathak
M.A., Ph.D.
Convenor,
Board of studies, History,
Bundelkhand University,
Jhanshi.

Residence-
31, Civil Lines
Jhanshi.

CERTIFICATE

This is to certify that the research work embodied in this thesis submitted for the degree of Ph. D. in History, entitled "**Jaysi Sahitya Par Adharit Madhyakalin Bharat ka Samajik Evam Sanskritk Itihas**".in Hindi is the original research work done by **Mr. Vivekanand Singh.** He has worked under my guidance and supervision for the required period.

(S.P. Pathak)

कृतज्ञता ज्ञापन

15वीं, 16वीं शताब्दी ई0 का युग भारत में राजनीतिक और धार्मिक संघर्षो का युग था। तत्कालीन भारतीय समाज में राजनीतिक और धार्मिक रागद्वेष तथा कट्टरवाद व्याप्त था। हिन्दू समाज अपने को गुलामी दासता और दलितावस्था में जकड़ा हुआ महसूस कर रहा था। ईस्लामिक कट्टरवाद से हिन्दू पीड़ित थे। ऐसी स्थिति में तत्कालीन समाज को ऐसे मार्गदर्शकों की आवश्यकता थी। जो समाज में व्याप्त राग-द्वेष व घृणा के भाव को समझ कर समाप्त कर समन्वय एवं सामंजस्य स्थापित कर सके। यह कार्य भक्तिमार्गीय संघ ही कर सकते थे।

जायसी को अपने युग से वैचारिक धरोहर के रूप में बहुत कुछ मिला था और नींव पर ही उन्होंने अपने चिन्तन एवं अनुभूतियों के भव्य प्रासाद 'पद्मावत' का निर्माण किया था। अत: 'पद्मावत' और उसके निर्माता को समझने के पूर्व उनके निर्माण में महत्वपूर्ण योगदान देने वाले उस युग एवं तत्कालीन परिस्थितियों का पर्यवेक्षण नितांत आवश्यक है।

पूर्व मध्यकालीन भारतीय इतिहास संघर्षो, सत्तालोलुप ईस्लामिक राजवंशों के लोग आपस में ही एक दूसरे के विरूद्ध विद्रोह करने तथा हत्याओं में लिप्त थे। ईस्लाम की कट्टरपंथी राजनीति के कारण हिन्दू समाज पर तरह-तरह के अत्याचार ढ़ाये जा रहे थे। समाज में अनेक प्रकार के अंधविश्वास, जातिगत एवं धर्मगत राग-द्वेष व घृणा व्याप्त थी। हिन्दू अपने को दलित व असुरक्षित महसूस कर रहे थे। देश में गरीबी व अशिक्षा व्याप्त

थी। इन सब विपत्तियों से परित्राण के लिए उन्हें एक त्राता की आवश्यकता थी ऐसे संकट के अवसर पर संजीवनी बुटी के रूप में सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी का आर्विभाव हुआ। उनकी अन्योक्ति व निर्गुण भक्ति धारा ने भारतीय समाज में व्याप्त धार्मिक भेद-भाव तथा घृणा को मिटाने और हिन्दू-मुसलमानों में सामंजस्य में रामबाण का काम किया।

हिन्दी साहित्य के विकास में जायसी का महत्वपूर्ण योगदान रहा। उनकी साहित्यिक कृति पद्मावत तथा अन्य रचनाओं में हिन्दी साहित्य के सभी गुणों का निरूपण है। तत्कालीन इतिहास के ज्ञान में भी उनकी कृतियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में उपर्युक्त सभी तत्वों का समावेश करते हुये जायसी युगीन समाज एवं संस्कृति को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।

मैं अपने शोध निर्देशक डा0 एस.पी. पाठक प्रोफेसर, इतिहास विभाग, बुन्देलखण्ड डिग्री कॉलेज, झाँसी का अत्यन्त आभारी हूँ, जिनकी वैदुषिता, कृपा, सृजनता सरलता, उदारता, तन्मयता एवं शास्त्रावगाहनशीलता के फलस्वरूप उक्त शोधकार्य यह स्वरूप धारण कर सका है।

इसके अतिरिक्त प्रो0 कैलाश खन्ना जिन्होंने हर पग पर अपना बहुमूल्य समय देकर शोध कार्य की अनेक गुत्थियों को सुलझाया, एवं अपने विद्धतापूर्ण गरिमामय उपदेश से शोध प्रबन्ध की उपादानभूत सामग्री का निर्देशन किया है, का अत्यन्त अनुग्रहीत हूँ। बुन्देलखण्ड डिग्री कॉलेज, झाँसी के इतिहास विभाग के डा0 श्रीमती मंजु सिंह, डा0 भाटिया एवं डा0 अजीत सिंह

जी एवं विभाग के अन्य अध्यापकों के प्रति भी मैं श्रद्धानवत हूँ। इसके अतिरिक्त विभाग के कर्मचारियों द्वारा प्रदत्त सहयोग एवं सहानुभूति के लिए उनका आभारी हूँ।

तत्पश्चात मुझे अपने परमपूज्य पिता श्री रामदास सिंह एवं परम पूजनीय माता जी श्रीमती शिवकुमारी देवी से अनवरत शोधकार्य के गहन उदधि में निमज्जन करने का बराबर उत्साह, वात्सल्य, स्नेह एवं आशीर्वाद प्राप्त होता रहा उनके प्रति आभार प्रकट कर उनके सम्मान को नहीं बढ़ाया जा सकता।

मेरे पूज्यनीय बड़े भाई श्री राधाकृष्ण सिंह, पवन सिंह एवं भाभियों ने मेरे पालन-पोषण एवं अन्य जिम्मेदारियों से सर्वविध चिन्तामुक्त रखा है; अतएव मैं इनका पुत्र समान भाई होने के कारण अपने हार्दिक उद्‌गारों को व्यक्त करने में असमर्थ हूँ; जिनके स्नेह एवं आशीर्वाद से यह असम्भव शोध कार्य पूर्ण हो पाया है।

भारतीय संस्कृति की यह अवहेलना होगी यदि मैं अपने पिता समान चाचाद्वश्री जगदीश सिंह, श्री हितनारायण सिंह एवं अपने बड़े भाई को इस अवसर पर स्मरण न करूँ, उन्हीं की प्रेरणाओं के फलस्वरूप ही मैं इस शोध-कार्य में प्रवृत्त हुआ। वे मेरे पिता समान हैं, अतः परमेश्वर को शब्दों के माध्यम से धन्यवाद देकर उनके सम्मान को नहीं बढ़ाया जा सकता। उनकी सहयोग भावना, दिनचर्या में प्रबल समर्थन तथा उत्साहवर्धन से यह शोधकार्य बड़ी तत्परता से सम्पन्न हो सका है।

तत्पश्चात अपने भाई अजय, दीपक, मनु, रामकृपा एवं भतीजा, विश्वास और वंश, भतीजी, श्रद्धा, खुशबू, छोटी, रमा, विनीशा एवं सभी बहनों तथा परिवार के अन्य सदस्यों को आभार प्रकट करते हुए उनके सहयोग एवं उत्साहवर्धन के प्रति नतमस्तक हूँ। मैं अपनी धर्मपत्नी श्रीमती राखी का भी ऋणी हूँ जो मेरा समय-समय पर उत्साहवर्धन करती रहीं और मेरी सफलता के लिए सदैव व्रत रखा करती थी। मैं उनका भी आभारी हूँ जिन्होंने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से मेरा सहयोग प्रदान किया है।

अन्त में मैं श्री श्रीप्रकाश (कम्प्यूटर ऑपरेटर), पांथरी कम्प्यूटर, कैण्ट वाराणसी के प्रति आभार प्रकट करना अपना कर्तव्य समझता हूँ जिनके टंकणपरक अथक परिश्रम से यह शोध प्रबन्ध वर्तमान रूप में इतने शीघ्रता से उद्टंकित हो, यह रूप धारण कर सका है।

विवेकानन्द सिंह

विषय–सूची

प्रथम अध्याय

जायसी का जीवन-परिचय

प्रथम अध्याय

भूमिका

जायसी का जीवन-परिचय

जायसी भक्तिकालीन निर्गुणधारा की प्रेमाश्रयी शाखा के सूफी काव्यधारा के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। जायसी का पूरा नाम मलिक मुहम्मद जायसी था। उनके जीवन का पूर्ण विवरण उपलब्ध नहीं है, इसलिए अंतः साक्ष्य एवं बहिसाक्ष्य के आधार पर उनके जीवन के जो कुछ सूत्र मिलते हैं, उसी को आधार मानकर हम संक्षेप में विचार करेंगे।

मलिक इनके वंश की उपाधि परम्परा है, जो इनके पूर्वजों से चला आया है। इनके पिता का नाम मलिक शेख ममरेज था, इन्हें लोग मलिक राजे अशरफ भी कहा करते थे।[1] इनकी माँ मानिकपुर के शेख अहददाद की पुत्री थी। अलह दाद जायसी के नाना थे।[2] माता का नाम ज्ञान नहीं है। असहदाद जायसी की काल्पी वाली गुरू परम्परा में उनके गुरू के गुरू का भी नाम हैं सूफियों की परम्परा में शिष्य को संतान भी कहा जाता है। इस प्रकार गुरू के गुरू के गुरू को दादा या नाना भी कहा जाना संभव है।[3] जायी शब्द स्थानसूचक है, जो जायस नामक स्थान के सम्बन्ध कहा जाता है। इस प्रकार इनका पूरा नाम है- मलिक मुहम्मद जायसी।

जन्म स्थान निवास-स्थान

जायसी का संबंध जायस से था। जो की रायबरेली का एक

कस्बा है। जायसी वहां पैदा हुए अथवा बाद में आकर वहाँ बस गये, इस पर मतभेद है। जायसी ने 'पद्मावत' तथा 'आखिरी कलाम' में अपने स्थान के रूप में जायस नगर का उल्लेख किया है। जायसी का जन्म स्थान जायस था, अभी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता, पर यह उनका निवास स्थान अवश्य था। जायसी ने 'पद्मावत' की रचना जायस नामक स्थान में की।

जायस नगर धरम अस्थाना तस्या यह कवि कीन्ह बखान्।[4]

जायसी के जन्म स्थान के विषय में मतभेद है कि जायस ही उनका जन्म स्थान था या वे कहीं अन्यत्र से आकर वहाँ रहने लगे थे। कवि वहाँ आकर काव्य-रचना में प्रवृत्त हुआ। वस्तुतः वहाँ का था नहीं। जायसी के जायस में आकर बसने की बात की पुष्टि 'आखिरी कलाम' की इन पंक्तियों से भी होती है-

जायस नगर मोर अस्थान्। नगर का नांव आदि उद्यान्।।

तहाँ देवस दस पहुँने आएउ। भा वैराग बहुत मुख पाउ।।[5]

इन वाक्यों से ऐसा जान पड़ता है कि यह कहीं अन्यत्र पैदा हुए थे पर जायस नगर में आकर बसे थे और वहीं उन्हें वैराग्य हुआ। जहाँ तक जायस नगर के धर्म स्थान होने का प्रश्न है, अनुमानतः कहा जा सकता है कि अपना जन्मस्थान होने के कारण वह उन्हें धर्मस्थान जैसा लगा होगा।[6] जायस वालों के अनुसार जायसी जायस के ही रहने वाले थे। उनके घर का

स्थान अब तक लोग वहां के कंचाने मुहल्ले में बताते हैं।[7] पंडित सूर्यकान्त शास्त्री ने भी लिखा है कि इनका जन्म जायस नगर के 'कंचाना मुहल्ला' में हुआ था।[8] डा० मुंशीराम शर्मा का विचार है कि जायस का पूर्व नाम उदान था। वहां पर जायसी थोड़े दिनों के लिए पाहुने के रूप में आये थे बाद में वैरागी हो गये।[9] कुछ विद्वानों का मत है कि जायसी गाजीपुर में पैदा हुए थे[10] और मानिकपुर जिला प्रतापगढ़ में अपने ननिहाल में जाकर कुछ दिनों तक रहे थे।[11]

सभी तर्कों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि जायसी जायस के ही रहने वाले थे। 'पद्मावत' में कवि ने अपने जिन चार घनिष्ठ मित्रों–युसूफ मलिक, सालार कादिम, सलोने मियां और बड़े शेख का उल्लेख किया है, वे सभी जायस के ही रहने वाले थे। इस प्रकार जायसी को जायस का निवासी कहा जा सकता है।

चारि मीत मुहम्मद पाए। जोरि मिताई सरि पहुँचाए।।
युसूफ मलिक पंडित ओ ग्यानी। पहिते भेद बात उन्ह जानी।।
पुनि सालार कदिन मतिमाहा। छांड़े दान उंभ निति वाहां।।
मियां सलोने सिंघ हरियारू। वीर खेत रन खरग जुझारू।।
सेख बड़े-बड़े सिद्ध बखाना। किए आदेश सिद्ध अड़े माना।[12]

काल

जायसी के जन्म और मृत्यु के संबंध में पर्याप्त मतभेद है।

'आखिरी कलाम' में उन्होंने अपने जन्म के विषय में लिखा है-

था अवतार मोर नव सदी। तीस बरस उपर कवि बदी।।[13]

इसका ठीक अर्थ नहीं निकलता है। विद्वानों ने इसके भिन्न-भिन्न अर्थ निकाले हैं और जन्म के भिन्न-भिन्न सन् निर्धारित किये हैं। पंडित रामचन्द्र शुक्ल का कहना है कि इन पंक्तियों का ठीक अर्थ नहीं खुलता। यदि नव सदी ही पाठ मानें तो उनका 900 हि0 सन् 1492 ई0 के लगभग ठहरता है। दूसरी पंक्ति का अर्थ निकलेगा 'जन्म के तीस वर्ष पीछे जायसी अच्छी कविता करने लगे।[14] पंडित चन्द्रबली पाण्डेय जायसी की उपर्युक्त पंक्ति का अर्थ 'नवीं' सदी हिजरी में तीस वर्ष बीतने पर अर्थात 830 हि0 मानते हुए जायसी की जन्म तिथि 830 हिजरी 1427 ई0 मानते हैं।[15] डॉ0 जयदेव जायसी के जन्म-तिथि के संबंध में मानते हैं कि 'जायसी का जन्म (900 हि0) सन् 1495 ई0 में हुआ था, जिसका उन्होंने अपने काव्य 'आखिरी कलाम' में दिया है- "भा अवतार मोर नव सदी।[16] जायसी के जन्म के संबंध में सैयद कस्बे मुस्तफा ने लिखा है कि "कस्बा जायस में मुहम्मद जहीरूद्दीन बाबर शाह के समय में सन् 900 हि0 (1495 ई0) में पैदा हुए।[17] किन्तु डॉ0 रामपूजन तिवारी ने इन पंक्तियों का अर्थ इस प्रकार किया है- (मेरा) जन्म 900 हिजरी में हुआ लेकिन कवि (मैंने) तीस वर्ष बढ़ाकर कहा है। अर्थात 900 हि0 से तीस वर्ष पहले उसका जन्म हुआ था। इस प्रकार जायसी का जन्म 870 हिजरी (1464ई0) प्रतिपादित करते हैं।[18] डॉ0 कमल कुलश्रेष्ठ जायसी का जन्मकाल 906 हि0 मानते हुए अपने भाव इस प्रकार

व्यक्त किये हैं- 'जायसी का जन्म 906 हि0 (1496 ई0) में हुआ था। जायसी ने यह बात स्पष्ट बतला दी है, वे कहते हैं-

नौ सौ बरस छत्तीस जब भए। तब एहि क्या के आखर कहे।।

अर्थात् 936 हि0 में उन्होंने 'आखिरी कलाम' की रचना की। 'भा अवतार...........कवि बदी' अर्थात् तीस वर्ष की आयु में उन्हेंाने यह रचना की और नव सदी में पैदा हुए थे।[19]

उपर्युक्त विचारों के साथ इस संबंध में अन्य बातें भी विचारणीय हैं- प्रथम, प्रो0 सैय्यद अखसन अस्करी को मनेर शरीफ की 'पद्मावत' के साथ अखरावट' की शाहजहाँ कालीन हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है। अखरावट की पुष्पिका में रचना की प्रतिलिपि तिथि 'जुम्मा 8 जुत्काद 9।। हि0 लिखा है। यदि जायसी का जन्म सन् 900 या 906 हि0 में मानें, तो जायसी की छोटी अवस्था में 'अखरावट' ऐसे ग्रंथ की रचना करना असंभव है।[20] दूसरे, पद्मावत के स्तुति खण्ड में जायसी ने तत्कालीन बादशाह शेरशाह सूरी का शाहेवल के रूप में प्रशंसात्मक वर्णन करके इस प्रकार आशीर्वाद दिया है-

दीन्ह असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।
बादशाह तुम जगत के, जग तुम्हारा मुहताज।।[21]

शेरशाह ने दिल्ली के सुल्तान के रूप में 947 हि0 (1540 ई0) में कन्नौज युद्ध में हुमायूँ को पराजित कर दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार किया था और उसका दिल्ली का शासन काल यहीं से प्रारम्भ हुआ माना जाता है। उस समय उसकी आयु 34 वर्ष की थी। सच है कि आत्मिक

आशीर्वाद देनेवाला कवि शेरशाह से आयु में बड़ा रहा होगा। तीसरे, जायसी ने स्वत: आत्म अभिव्यंजना करते हुए लिखा है-

मुहम्मद बिरिध बपल अब भई। जीवन हुत सौ अवस्था गई।।

बल जो गएउ के सीन सरीख दिस्टि गई नैनन्ह दे नील।।

दसन गए के त्वचा कपौला। जैन गए दे अनुरूचि बोला।।

स्पष्ट है कि पद्मावत की रचना के समय वे अत्यन्त वृद्ध हो गये थे। यह एक प्रकार का अन्तर्विरोध ही कहा जाएगा और इसी कारण 900 हि0 या 906 हि0 को जायसी की जन्मतिथि मानना उचित नहीं लगता। डा0 मुंशीराम शर्मा के अनुसार 'पद्मावत' में वृद्धावस्था का स्वत: अनुभूति का वर्णन जायसी की वृद्धायु का सूचक है।[22]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जायसी का जन्म नवीं सदी (800-900) हि0 में किसी समय हुआ जान पड़ता है। सन् 870 हि0, 900 हि0 या 906 हि0 में से सन् 870 हि0 ही अधिक युक्ति संगत प्रतीत होता है। जायसी की मृत्यु तिथि के विषय में अनेक सन् दिये गये हैं-

<u>मृत्यु व समाज</u>

जायसी की मृत्यु तिथि के संबंध में पंडित रामचन्द्र शुक्ल का मानना है कि 'काजी नसीरूद्दीन हुसैन जायसी ने, जिन्हें अवध के नवाब शुजाउद्दौला से सनद मिली थी, अपनी याददाश्त में जायसी का मृत्यु काल 4 रजस 949 हि0 (1542 ई0) दिया है।[23] कई विद्वान जायसी की मृत्यु तिथि

1659 ई0 मानते हैं।[24] सैयद कल्बे मुस्तफा ने गुलाम सरवर लाहौरी तथा अब्दुल कादिर आदि के साक्ष्य पर जायसी की मृत्यु-तिथि 1049 हि0 सन् 1639 ई0 माना है।[25] किन्तु इस तिथि को मानने में सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि इसके अनुसार पद्मावत की रचना के उपरान्त जायसी 102 वर्ष तक जीवित रहे जबकि पद्मावत की रचना के समय कवि अपनी वृद्धावस्था का वर्णन कर चुका है जिसे देखते हुए 'पद्मावत' की रचना के बाद कवि का 102 वर्ष जीवित रहना असंभव है। पंडित चन्द्रबली पाण्डेय का मत है कि काली नसीरूद्दीन हुसैन जायसी ने जो मृतयु तिथि दी है, वह ठीक और प्रामाणिक है।[26] किन्तु रामचन्द्र शुक्ल ने इस तिथि पर संदेह व्यक्त करते हुए लिखा है कि यह काल कहाँ तक ठीक है नहीं कहा जा सकता। इसे ठीक मानने पर जायसी दीर्घायु नहीं ठहरते। उनका परलौकवास 49 वर्ष से भी कम की अवस्था में सिद्ध होता है।[27] वास्तव में शुक्ल जी ने जायसी की जन्म तिथि 900 हि0 स्वीकार कर ली है। इसलिए यह सन्देह उन्हें हुआ है। डा0 राम पूजन तिवारी के अनुसार जन्म तिथि 870 हि0 मानने पर मृत्यु के समय 79 वर्ष जायसी की अवस्था ठहरती है जिसकी जायसी की रचनाओं में वर्णित सभी तिथियों से संगति बैठ जाती है। डॉ0 रामपूजन तिवारी का कहना है कि मृत्यु तिथि 949 हि0 या 1542 ई0 ही मानना युक्ति संगत प्रतीत होता है।[28] जायसी की रचनाओं में वर्णित तिथियों के आधार पर भी जायसी की मृत्यु तिथि यही सही प्रतीत होती है।

गुरू-परम्परा

साधारणतः हिन्दी सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं में अपने गुरू का स्मरण किया है और गुरू परम्परा का भी उल्लेख किया है। जायसी चिश्ती सम्प्रदाय के कर्णधार निजामुद्दीन औलिया की शिष्य परम्परा में थे। इस परंपरा की दो प्रमुख शाखाएं हुई- एक मानिकपुर काल्पी बाली और दूसरी जायस वाली। जायसी ने इन दोनों शाखाओं के पीरों की चर्चा श्रद्धावनत होकर की है। पद्मावत और अखरावट दोनों में जायसी ने मानिकपुर काल्पी वाली गुरू-परम्परा का उल्लेख विस्तार पूर्वक करते हुए उनका गुणकीलन किया है। डा० प्रियदर्शन ने शेख मौहिदी (मुहीउद्दीन) को शेख खुरहान की परम्परा में एक स्वतन्त्र व्यक्ति मानकर जायसी का गुरू कहा है।[29] पंडित रामचन्द्र शुक्ल[30] ने इसी मत का अनुगमन करते हुए कहा था- "गुरू वन्दना से इस बात का ठीक-ठीक निश्चय नहीं होता है कि वे मानिकपुर (काल्पी वाली शाखा) के मुहीउद्दीन के मुरीद थे अथवा जायस के सैयद अशरफ के। 'पद्मावत' में दोनों पीरों का उल्लेख इस प्रकार है-

सैयद असरफ पीर पियारा। जैइ मोहिं पंच दीन्ह उजियारा।।

गुरू मोहदी छेवक में सेवा। चलै उताइस जैहि कर सेवा।।

अखरावट में भी इन दोनों की चर्चा इस प्रकार है-

कही सरीअत चिस्ती पीरू। उधरित असरफ ओ जहांगीर।।

पा-पापउं गुरू मोहदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा।।

परन्तु "आखिरी कलाम" में उन्होंने केवल सैयद अशरफ जहांगीर का ही उल्लेख किया है-

मानिक एक जायस उजियारा। सैयद असरफ पीर पियारा।।

जहाँगीर चिस्ती नियमरा। कुछ जग महं दीपक विधि धरा।।

तिन्ह घर हों मुरीद सौ पीरू। संवरत बिनु गुन जावै तीरू।।

"पीर" शब्द का प्रयोग भी जायसी ने सैयद असरफ के नाम के पहले किया है। अपने आप को उनके घर का बंदा कहा है, इससे हमारा अनुमान है कि उनके दीक्षा गुरू तो थे सैयद, पर पीछे से उन्होंने मुहीउद्दीन की सेवा करके उनसे बहुत कुछ ज्ञानोपदेश और शिक्षा प्राप्त की। जायसवाहै तो सैयद असरफ के पोते मुबारक शाह बोदले को उनका गुरू बतलाते हैं, पर यह ठीक नहीं जँचता।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या जायसी के दो गुरू थे? क्या सचमुच सैयद असरफ जहाँगीर और मोहिदी (मुहीउद्दीन) दोनों जायसी के गुरू थे? अथवा क्या मुबारक शाह बादते भी जायसी के गुरू थे? कवि ने सैयद असरफ की शिष्य परम्परा में हाजी शेख और उनके शिष्य शेख मुबारक शाह बोदले और शेख कमाल का नाम लिया है। जायसी ने हाजी शेख के दोनों शिष्यों की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि उनका दर्शन और स्पर्श मुझे प्राप्त हुआ जिससे मेरा पाप समाप्त हुआ और मेरी काया निर्मल हुई-

उन्ह घर रतन एक निरमरा। हाजी सेख सभागत भरा।।

तिन्हि घर दुह दीपक उजियारे। पंथ देह कहं दइज संवारे।।

सेख मुबारक पूनिउं करा। सेख कमाल जगत निरमरा।।

जिन्ह दरसे ओ परसे पाया। पाप हरा निरमल भी काया।।

महमद तहाँ निचिंत, पश जेहि संग मुरासिद पीर।

जेहि रे नाव करिआ ओ सेवक वेग पाव सों तीर।।[31]

सैयद अशरफ एक महान सूफी संत थे। उनकी मृत्यु 17 मोहर्रम हि0 806 में हुई थी।[32] जायसी उनकी मृत्यु के काफी बाद पैदा हुए। अतः जायसी से उनका सीधा संबंध नहीं हो सकता। शेख मुबारक और शेख कमाल से उनका संबंध अवश्य रहा होगा। अमर बहादुर सिंह 'अमरेश' के अनुसार[33] शेख मुबारक और शेख कमाल दोनों ही जायसी के वास्तविक गुरू थे। मुबारक शाह बोदले की मृत्यु 947 हि0 तथा शेष कमाल की मृत्यु सन् 984 हि0 है। पद्मावत का रचना काल 947 हि0 है। इससे प्रतीत होता है कि ये ही दोनों कवि के समकालीन थे। यही निर्विवाद रूप से जायसी के गुरू थे। इस प्रसंग की पुष्टि हेतु जायसी ने 'मुरशिद पीर' शब्द का प्रयोग किया है जो इन्हीं लोगों के लिए हैं। वस्तुतः ये दोनों जायसी के समकालीन थे। जायसी के अनुसार उन्हें इनका दरस-परस मिला था और साथ ही उनके सत्संग से जायसी लाभान्वित भी हुए थे। इस प्रसंग से ऐसा प्रतीत होता है कि सैयद असरफ तथा उनकी परम्परा के इन पीरों के प्रति उनमें सम्मान का भाव था।

कवि अपने समकालीन जायस के सामान्य पीरों का गुणगान करने

के उपरान्त कहता है कि जहाँ मुरशिद पीर होते हैं वहां ही मार्ग निश्चिंतता से प्रशस्त होता है। वे ही जीवन की नौका को खेने वाले होते हैं। उसने इसी प्रसंग में महदी गुरू बुरहान को सेवक कहा है। मुरशिवपीर के रूप में जायसी ने शेख खुरहान को ही स्मरण किया है। अतः मुरशिद पीर शब्द का संबंध शेख खुरहान से है, अन्य किसी से नहीं-

गुरू मोहदी सेवक में सेवा। चले उताइल जिन्ह कर सेवा।।

अगुवा भर शेख बुरहान्। पंथ लाई जेहि दीन्ह गियान।।

'अखरावट' में जायसी ने महदी शेख खुरहान को गुरू और काल्पी को गुरू-स्थान बताते हुए स्पष्टतः इन्हें अपना गुरू और महदी कहा है-

पा पाउएं गुरू मोहदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा।।

नांव पियार सेख खुरहान्। नगर कालपी हुत गुरू वान्।।

इसी प्रकार 'चित्ररेखा' में जायसी ने स्पष्टतः इन्हें अपना गुरू और महदी कहा है-

महदी गुरू शेख झुरहान। कालपि नगर लेहि क अस्थान्।

सो मोरा गुरू हौं तिन्ह चेला। धोवा पाप पानि सिर मेला।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जायसी सेयद असरफ जहाँगीर चिस्ती को पीर के रूप में और मानिकपुर की कालपी वाली शाखा के शेख खुरहान महदी को गुरू कहकर स्मरण करते हैं। अतः स्पट है कि उनके गुरू

प्रसिद्ध सूफी संत शेख मोहिदी थे। अधिकांश विद्वानों ने शेख मोहदी को जायसी का दीक्षागुरू स्वीकार किया है।

गुरू परम्परा एंव परी-परम्परा

शेख निजामुद्दीन औलिया (मु0 सन् 1325 इ0 725 हि0)

शेख सिराजुद्दीन

शेख अलाउस हक

शेख कुतुबन आलम (पंडोई के सन् 1415)

सैयद अशरफ जहांगीर

शेख हसमुद्दीन (मानिकपुर)

शेख हाजी

सैयद राजे हामिदशाह

शेख मुहम्मद

शेख कमाल

या मुबारक

शेख दानियल

शेख मुहम्मद

शेख अलहदाद

शेख बुरहान (कालपी)

शेख महदी

मलिक मुहम्मद जायसी

रचनाएँ

जायसी की रचनाओं के विषय में निश्चित रूप से कुछ कहा नही जा सकता। जायसी ने कितने ग्रंथों की रचना की यह भी स्पष्ट नहीं है। कवि ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति 'पद्मावत' के अतिरिक्त अन्य और ग्रन्थों की रचना की हैं पंडित रामचन्द्र शुक्ल ने जायसी की तीन रचनाओं–पद्मावत, अखरावट और आखिरी कलाम को स्वीकार किया है। किन्तु उनका कहना है कि जायस वाले इन पुस्तकों के अतिरिक्त जायसी की दो और पुस्तकें बतलाते हैं– पोस्तीनामा तथा नेनावत नाम की प्रेम कहानी। 'पोस्तीनामा' के संदर्भ में उनका कहना है कि मुबारक शाह बोदले को लक्ष्य करके लिखी गई जो चलू पिया करते थे।[34]

सैयद वाले मुहम्मद ने जायसी के 14 ग्रंथों की सूची इस प्रकार दी है– 1. पद्मावत, 2. अखरावट, 3. सखरावत, 4. चंपावत, 5. इतरावत, 6. मटकावत, 7. चित्रावत, 8. सुर्दानामा, 9. मोराईनामा, 10. मुकहरानामा, 11. मुखरानाम, 12. पोस्तीनामा, 13. होलीनामा, 14. आखिरी कलाम।[35] डॉ0 शिव सहाय पाठक ने विभिन्न विद्वानों की शोधों, खोज रिपोर्टो एवं सूचनाओं के आधार पर जायसी द्वारा लिखित चौबीस ग्रंथों के नामों की सूची इस प्रकार दी है–

1. पद्मावत	8. मुर्बानामा	15. धनावत
2.अखरावट	9. मोराईनामा	16. सौरठ
3. सखरावट	10. मुकहरानामा	17. जयजी

4. चंपावत	11. मुखरानामा	18. नैनावत
5. इतरावत	12. पोस्तीनामा	19. मेखरावटनामा
6. मटकावत	13. होलीनामा	20. कहारनामा या कहरानामा
7. चित्रावत	14. आखिरी कलाम	21. स्फुट कविताएं
सीवत: चित्ररेखा		22. तहलावत
		23. सकरानामा
		24. मसला या मसलानामा।[36]

डा० रामपूजनतिवारी के अनुसार अभी तक जायसी की छः रचनाएं ही प्रकाश में आयी हैं[37]–

1. पद्मावत	4. आखिरी कलाम
2. अखरावट	5. महिरीचाईसी या कहरानामा।
3.चित्ररेखा	6. मसलानामा।

किन्तु प्रो० वासुदेव सिंह के अनुसार[38] जायसी की एक और रचना 'कन्हावत' हाल ही में प्रकाशित हुई है, तदनुसार अब तक कवि ने निम्नलिखित ग्रन्थ प्रकाश में आसके हैं–

1. पद्मावत	2. अखरावट	3. आखिरी कलाम
4. चित्ररेखा	5. माहिरी बाईसी या	6. मसलानामा और
7. कन्हावत।	8. कहरानामा	

पद्मावत

पद्मावत के रचनाकाल के संबंध में विवाद रहा है। कुछ विद्वान इसका रचनाकाल सन् 927 हि0 मानते हैं और कुछ 947 हि0 मानने के पक्ष में हैं। 'पद्मावत' की एक प्रति में यह पंक्ति मिलती है-

सन् नौ से सत्ताइस अहा। कथा आरम्भ बैन कवि कहा।।

इसके आधार पर पद्मावत का रचनाकाल सन् 927 हि0 (सन् 1522 ई0) माना गया है- किन्तु जायसी ने शाहेवक्त के रूप में शेरशाह की प्रशंसा की है-

शेरशाह दिल्ली सुल्तानू। चारिउ खण्ड तपै जस भानु।। शेरशाह 26 जनवरी सन् 1542 को गद्दी पर आसीन हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि कवि ने पद्मावत का प्रारम्भ तो सन् 927 हि0 में किया, किन्तु शेष भाग बाद में अपने 'शाहेवक्त' शेरशाहसुरी के शासन काल समय हि0 सन् 947 में पूर्ण किया।

इस कथानक के दो भाग हैं। प्रथम भाग में राजा रत्नसेन और पद्मावती के प्रेम का वर्णन है। दूसरे में अलाउद्दीन के आक्रमण से लेकर पद्मिनी के सती होने की कथा है। इसमें ऐतिहासिकता की अपेक्षा काल्पनिकता का अंश अधिक है। संक्षेपतः ऐतिहासिक तथ्य केवल इतना है कि रत्नसेन चित्तौड़ का राजा था, दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर विजय प्राप्त किया था। इस युद्ध में राजा, गोरा एवं बादल वीरगति

को प्राप्त हुए पद्मिनी शव के साथ सती हो गई। दिल्ली तथा चित्तौड़गढ़ ऐतिहासिक नगर है। डॉ0 हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में इसकी ऐतिहासिक प्रमाणिकता के विषय में सन्देह प्रकट किया है, पर उसकी लोमनोहारिता को स्वीकार करना ही पड़ता है।[39] काव्य-सौन्दर्य की दृष्टि से पद्मावत एक अनूठी कृति है। इसमें पद्मावती के नख-शिख, नागमती वियोग तथा रत्नसेन के त्याग और शौर्य का प्रभावपूर्ण शैली में चित्रण हुआ है।

आखिरीकलाम

निर्विवादित एवं अंतः साक्ष्य से प्रमाणित इसकी रचना सन् 936 (हि0) 1532ई0 में हुई।

नौ से बरस छत्तीस जो भए। तब यह कथा के आसर कहे।।

बाबरशाह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहँ विधि साजा।[40]

'आखिरी कलाम' सा0 दोहों तथा चार सौ बीस अर्द्धालियों का खण्डकाव्य है। डा0 जयदेव के मतानुसार इसका आखिरनामा अधिक समीचीन प्रतीत होता है।[41] इस कृति के संबंध में डा0 रामपूजन तिवारी का विचार है कि साधना एवं साहित्यिक दृष्टि से 'आखिरी कलाम' का कोई विशेष महत्व नहीं है।[42] इसमें अंतिम रसूल हजरत मुहम्मद साहब के उपदेशों और सृष्टि के अंतिम दृश्य अर्थात प्रसद का वर्णन है। डॉ0 बत्रा के अनुसार संभवतः वही दो बातें उसके नाम 'आखिरी कलाम- का कारण होंगी।[43] बिरह की अभिव्यक्ति, गुरू की स्तुति के साथ ही साथ स्थान-स्थान पर सूफीमत के संकेत मिलते हैं तथा हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों में सामंजस्य

की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है।

अखरावट

इसका रचना काल सन् 949 हि0 सन् 1542 ई0 माना गया है। कवि ने इस ग्रंथ में हिन्दी वर्णमाला के क्रम से प्रत्येक दोहा खण्ड को प्रारम्भ किया है तथा इस्लाम धर्म की मान्यता के अनुसार सृष्टि की उत्पत्ति का कारण और प्रयोजन आदि का वर्णन है। इसमें सरल एवं सरस भाषा में रोचक ढंग से सिद्धान्तों और दार्शनिक विचारों का हृदयंगम कहा जा गया है। साहित्यिक दृष्टि से इसका विशेष महत्व नही है।

महिरीबाईसी या कहरानामा

डॉ0 माता प्रसाद गुप्त ने इसका संपादन किया है और इसमें बाईस छंद होने के कारण इसका 'हिरीबाईसी' नामकरण किया गया है। डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल ने पद्मावत के प्रारम्भ में मनेर शरीफ की खानकाई पुस्तकालय की फारसी लिपि में लिखित एक प्रति का उल्लेख किया है, जिसमें जायसी के इस ग्रंथ का नाम 'कहरनामा' दिया है।[44] यह एक अन्योवित रूपकरण खंडकाव्य है, जिसमें जीवात्मा को दुलहिन बताया गया है, जिसे कहार डोली में बैठाकर परमात्मा रूपी प्रियसन के पास ले जाते हैं।

चित्ररेखा

इस ग्रंथ का संपादन डॉ0 शिवसहाय पाठक ने किया है। यह भी एक प्रेमकाव्य है। प्रारम्भ में ईश्वर की स्तुति और इसके बाद लौकिक प्रेम का चित्रण इसके द्वारा कवि ने आध्यात्मिक प्रेम का संकेत किया है। प्रियतम

और प्रियतमा के प्रतीकों के आधार पर कवि ने लोक संसार को नैहर और परलोक को प्रियतम का घर बताया है। प्रभुप्रेम की प्राप्ति के लिए विरह के महत्व का प्रतिपादन किया गया है। साथ ही जकात् (दान पुण्य) की आवश्यकता पर बल दिया गया है।

मसलानामा

जायसी की इस कृति का प्रथम प्रकाशन हिन्दुस्तानी अकादमी की शोधपत्रिका 'हिन्दुस्तानी' में किया गया। इसके बाद इसका संपादन अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'[45] और प्रकाशन हिन्दुस्तानी अकादमी इलाहाबाद ने किया। 'मसलानामा' एक साधारण रचना है जिसमें केवल 71 मसले हैं।

कन्हावत

'कन्हावत' के दो संस्करण प्रकाश में आये हैं। एक का संपादन डा0 शिवसहाय पाठक ने किया है और दूसरे का परमेश्वरी लाल गुप्त ने। इसकी रचना काल 947 हि0 दिया गया है। इसमें भारतीय परम्परा के अनुसार श्रीकृष्ण की जीवनकाल लिपिक है किन्तु विषयवस्तु जीवन शैली और नामकरण की दृष्टि से यह जायसी की कृति नहीं जान पड़ती।[46]

सन्दर्भ

1. शिवसहाय पाठक : चित्ररेखा, भूमिका, पृ0 31
2. सैयद कस्बे मुस्तफा : मलिक मुहम्मद जायसी, पृ0 22
3. डॉ0 कन्हैया सिंह : हिन्दी सूफी काव्य में हिन्दू संस्कृति का चित्रण और निरूपण, पृ0 60
4. जायसी: पद्मावत संपा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, छंद 23/1
5. जायसी: माता प्रसाद गुप्त-जायसी ग्रन्थावली, आखिरी कलाम, पृ0 16, हंसं0 10,
6. विमल कुमार जैन : सूफीमत और हिन्दी साहित्य, पृ0 116
7. रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली, 'भूमिका, पृ0 5
8. प्रो0 सूर्यकान्त शास्त्री : पद्मावती, भूमिका, पृ0 5
9. मुंशीराम शर्मा : पद्मावत, प्राक्कथन, पृ0 3
10. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 14, पृ0 391
11. वही, भाग 21, पृ043
12. रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, पद्मावत, स्तुतिखण्ड, छंद 22/1-5
13. माता प्रसाद गुप्त : जायसी ग्रन्थावली, आखिरी कलाम, छंद 4/1
14. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल: जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ0 4
15. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 14, सं0 1990, पृ0 397.
16. डा0 जयदेव : सूफी महाकवि जायसी, पृ0 31
17. सैयद कस्बे मुस्तफा : मलिक मुहम्मद जायसी, पृ0 22
18. डॉ0 रामपूजन तिवारी : हिन्दी सूफी काव्य की भूमिका, पृ0 175

19. डा0 कमल कुलश्रेष्ठ : मलिक मुहम्मद जायसी, पृ0 16

20. श्रीनिवास बत्रा : हिन्दी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 82

21. जायसी : पद्मावत, संपा0 वासुदेव शरण अग्रवाल, स्तुति खण्ड छंद 13/8-9

22. वही, उपसंहार, छंद 653.

23. डॉ0 मुंशीराम शर्मा : भक्ति का विकास, वाराणसी, सन् 1950, पृ0 0529.

24. पंडित रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ0 6

25. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 21, पृ0 58

26. सैयद कस्बे मुस्तफा : मलिक मुहम्मद जायसी, पृ0 75

27. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग 21, पृ0 417.

28. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ0 6

29. डॉ0 रामपूजन तिवारी : जायसी, पृ0 15-16

30. ग्रिवर्सन : पद्मावती, भूमिका, पृ0 11

31. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रन्थावली, भूमिका, पृ0 7 16 वां संस्करण।

32. जायसी-पद्मावत, सं0 वासुदेव शरण अग्रवाल, स्तुति खण्ड, छंद सं0 19

33. जान ए सुभान- सूफीज्म, इट्स सेण्ट्स एण्ड शाइन्स, पृ0 348.

34. अमर बहादुर सिंह 'अमरेश'- कहरानामा मसलानामा भूमिका, पृ0 15

35. डा0 शिवसहाय पाठक- मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, पृ0 50
36. रामचन्द्र शुक्ल : जायसी ग्रंथावली, भूमिका, पृ0 9, 16 वां संस्करण।
37. नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सैयद आले मुहम्मद, वर्ष 45, सं0 1997, पृ0 57
38. डा0 शिवसहाय पाठक : मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, पृ0 69-70, कानपुर, 1964 ई0
39. डॉ0 रामपूजन तिवारी : जायसी, पृ0 28.
40. डॉ0 वासुदेव सिंह : हिन्दी साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृ0 119
41. हजारी प्रसाद द्विवेदी: हिन्दी साहित्य, 1955, पृ0 272.
42. रामचन्द्र शुक्लः जायसी ग्रंथावली, आखिरी कलाम, छंद 13 व 8
43. डॉ0 जयदेव : सूफी कहाकवि जायसी, अलीग, 1957, पृ0 64
44. डॉ0 रामपूजन तिवारी : जायसी, दिल्ली, सन् 1965 ई0, पृ0 127
45. डॉ0 श्रीनिवास बत्राः हिन्दी और फारसी सूफी काव्य का तुलनात्मक अध्ययन, पृ0 99
46. पद्मावतः व्याख्याकार डॉ0 वासुदेवशरण अग्रवाल, प्राक्कथन, पृ0 32

द्वितीय अध्याय

जायसी युगीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ

द्वितीय अध्याय

जायसी युगीन भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ

हूमायूँ का राज्यकाल लगभग पन्द्रह वर्षो के अन्तर से दो भागों में बँट गया था। इस अन्तर-काल में सूर-राजवंश ने, जिसकी स्थापना महान अफगान सरदार शेरशाह ने की थी, उत्तरी भारत के अधिकांश भागों पर अपना अधिकार जमा लिया। यह अन्तर-काल दो कारणों से अधिक महत्वपूर्ण है। प्रथम इसलिए कि अन्तिम बार इस काल में एक अफगानी राजवंश दिल्ली के सिंहासन पर विराजमान हुआ, और इसी केन्द्र स्थान से इसने उत्तरी भारत पर शासन-संचालन किया। द्वितीय, इसलिए कि इस राजवंश ने देश की प्राचीन शासन-व्यवस्था को पुनर्जीवित किया और साथ ही उसमें उपयोगी और आवश्यक सुधार एवं संस्कार भी किये, जिनसे जनता को शान्ति, सुव्यवस्था और समृद्धि प्राप्त हुई। यही उत्तम व्यवस्था आगे चलकर हुमायूँ के उत्तराधिकारियों को एक अमूल्य विरासत के रूप में भी उपलब्ध हुई।[1]

हुमायूँ का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी शेरशाह अत्यन्त साधारण स्थिति से उठा था। फरीद, जिस नाम से उसे आरम्भ में पुकारा जाता था, इब्राहिम सूर का पोता था और इब्राहीम गामल नदी के किनारे पेशावर के निकटवर्ती पहाड़ी प्रदेश रोह का रहने वाला था। वह घोड़ों के क्रय-विक्रय का व्यवसाय करता था, किन्तु जब उसे इस व्यवसाय में कोई सफलता नहीं मिली तो वह भारतवर्ष में नौकरी-चाकरी की तलाश में चला आया। यह बहलोल लोदी के शासन

का आरम्भिक समय था।[2] इब्राहिम सूर और उसके बेटे हसन ने पंजाब के होशियारपुर जिले के अन्तर्गत हरियाणा और बखाला के जागीरदार महाबतखाँ सूर और दाऊद साहूखैल के यहाँ नौकरी कर ली और होशियारपुर से दो मील दक्षिण-पूरब में बजवाड़ा नामक स्थान में टिक गये। इसी जगह ह्सनखाँ की एक पत्नी के गर्भ से 1472 ई0 में फरीद (शेरशाह) का जन्म हुआ। इसके जन्म के कुछ दिनों बाद इब्राहिम और हसन ने जमालखाँ सारंगखानी और खानेअलम उमरखाँ सरवानी के यहाँ क्रमशः नौकरी कर ली। कुछ समय बाद ह्सन जमालखाँ की सेवा में चला गया, और जब सिकन्दर लोदी ने जमालखाँ की बदली जौनपुर कर दी, तो हसन को जो अपने मालिक के साथ बिहार चला आया था, सहसराम, खयासपुर और टांडा के परगनों का जागीरदार बना दिया गया। सोन नदी के किनारे सहसाराम में ही फरीद ने अपनी तरूणावस्था के प्रारम्भिक वर्ष व्यतीत किये थे।

हसन एक योग्य सैनिक तो अवश्य था, किन्तु गृह-प्रबन्ध में वह असफल रहा। उसने चार स्त्रियों से शादी की थी, जिनसे आठ लड़के पैदा हुए थे। फरीद और निजाम पह्ली पत्नी से और सुलेमान तथा अह्मद सबसे छोटी पत्नी से उत्पन्न हुए थे। यह सबसे छोटी पत्नी सम्भवतः ह्सन की कोई रखैल रही होगी लेकिन हसन् सबसे ज्यादा इसी को चाहता था और इसी का सबसे अधिक प्रभाव भी था।[3] स्पष्ट है कि फरीद की शैशवावस्था सुख से व्यतीत नहीं हुई। उसका पिता उसकी कोई देखभाल नहीं करता था और उसकी विमाता उससे जलती थी। ऐसे वातावरण और व्यवहार से तंग आकर बाईस वर्ष की अवस्था में उसने सहसराम छोड़कर कही अन्यत्र जाकर भाग्य अजमाने

का निश्चय किया। उन दिनों जौनपुर इस्लामी संस्कृति और विद्या का केन्द्र बना हुआ था और 'भारत का शीराज' समझा जाता था। फरीद ने इस शिक्षण-केन्द्र में प्रवेश पा लिया और यहाँ अरबी और फारसी साहित्य के पठन-पाठन में जुट गया। उसने अरबी, व्याकरण पढ़ी और फारसी के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ-रत्न 'गुलिस्तां', 'बोस्ताँ' और 'सिकन्दरनामा' का भी अध्ययन किया। वह बड़ा ही कुशाग्र बुद्धि और असाधारण प्रतिभा का विद्यार्थी था और इसी कारण, अनेक लोगों का ध्यान सहज ही उसकी ओर आकर्षित होता था। उसके अनेक प्रशंसकों में उसके पिता के संरक्षक जमालखाँ का नाम प्रमुख था, जिसने पिता-पुत्र में समझौता करा दिया और हसन को अपनी जागीर का प्रबन्ध फरीद के हाथ में सौंपने की आज्ञा दी।

जौनपुर से अपनी शिक्षा-दीक्षा समाप्त कर फरीद सहसरामा में आकर अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करने लगा और एक-दो वर्ष नहीं लगभग 21 वर्षों तक (1497-1518 ई0) वह यह कार्य योग्यतापूर्वक करता रहा। इसी समय में उसने शासन-प्रबन्ध की शिक्षा और अनुभव प्राप्त किया था। जिन जमीदारों ने जरा भी सिर उठाया, उन्हें उसने दबा दिया। दीवानी और फौजदारी अधिकारियों को उसने कड़े नियन्त्रण में रखा और प्रजा को शान्ति और सुव्यवस्था प्रदान की। इस समय का उसका सबसे प्रमुख काम लगान सम्बन्धी एक श्रेष्ठ व्यवस्था की स्थापना करना था। यह व्यवस्था जमीन की विधिवत नाप-जोख, उसके वर्गीकरण और उसमें होने वाली पैदावार पर आधारित थी। कृषकों के हितों का उसने पूरा-पूरा ख्याल रखा। भ्रष्टाचारी लगान अधिकारियों को उसने सजाएं दी। प्रत्येक के साथ न्यायोचित व्यवहार

किया जाय, यह उसका परम उद्देश्य था और इसकी पूर्ति के लिए उसने अफगानी सैनिकों के साथ किसी प्रकार की रियायत नहीं की।[4] उस समय इन कामों को करते हुए उसे शायद स्वप्न में भी यह ख्याल नहीं था कि इस प्रकार वह उत्तरी भारत का एक श्रेष्ठ और सबल शासक बनने की तैयारी कर रहा है।

फरीद ने जिस योग्यता और कुशलता से शासन-प्रबन्ध किया उसे देखकर उसकी माँ उससे और अधिक जलने लगी। फलतः 1518 ई0 में उसे अपने पिता के कहने से पुनः हटना पड़ा। वह सुल्तान इब्राहिम लोदी के दरबार में पहुँचा और उससे प्रार्थना की कि उसके पिता की जागीर उसे सौंप दी जाय। किन्तु सुल्तान के ऊपर उसका भी प्रभाव इसलिए नहीं पड़ा कि वह अपने पिता की ही शिकायत उससे करने पहुँचा और इसी कारण जागीर उसे प्रदान नहीं की गयी। संयोगवश कुछ दिनों के बाद उसके पिता की मृत्यु हो गयी और अब सुल्तान इब्राहिम को फरीद की प्रार्थना स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। सहसराम, खवासपुर, टाँडा की जागीर उसे सौंप दी गयी। इस प्रकार यह महत्वाकांक्षी नवयुवक शाही फरमान लेकर दक्षिण बिहार में लौट आया और 1520-21 ई0 के आस-पास सहसराम में आकर बस गया।[5]

सुल्तान द्वारा फरीद को उसके पिता की जागीर दिये जाने पर भी उत्तराधिकार का झगड़ा समाप्त नहीं हुआ और इन्हीं झगड़े-टण्टों के कारण वह अधिक दिनों तक जागीर का सुख नहीं भोग सका। उसके सौतेले भाइ सुलेमान ने जो हसन के अन्तिम दिनों में जागीर की देखभाल करने लगा था, बिहार के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत बांद (वर्तमान चैनपुर) के मुहम्मदखाँ

हसन से वैमनस्य रखता था अतः उसने भाइयों के झगड़े से लाभ उठाना चाहा और जागीर को दो भागों में बाँट देने का प्रस्ताव रखा।[6] लेकिन फरीद ने इस विभाजन को अस्वीकार कर दिया क्योंकि इब्राहीम लोदी ने तो जागीर केवल उसी को प्रदान की थी। दूरदर्शी तो वह था ही, उसने दक्षिण बिहार के शासक बहारखाँ लोहानी के यहाँ नौकरी कर ली, और इस प्रकार सहज ही में उसे अपने हकों का समर्थक और संरक्षक बना लिया (1522 ई0)। बहारखाँ उसकी सेवाओं से प्रसन्न था और एक दिन शिकार में एक शेर को बिना किसी अस्त्र-शस्त्र के मार देने के पुरस्कारस्वरूप उसने फरीद को शेरखाँ की उपाधि से विभूषित किया। कुछ दिनों बाद ही उसे बहारखाँ के छोटे लड़के जलालखाँ का शिक्षक नियुक्त कर दिया गया और इसके बाद उसकी नियुक्ति दक्षिण बिहार के डिप्टी-गवर्नर के उच्च पद पर कर दी गयी।

शेरखाँ को इस प्रकार तेजी से बढ़ते-चढ़ते देख बिहार के लोहानी तथा अन्य पठान सरदार उससे जलने लगे। जब शेरखाँ किसी आवश्यक कार्य से अपनी जागीर में गया हुआ था तो उसके एक प्रतिद्वन्द्वी ने उसके खिलाफ बहारखाँ के कान भर दिये। यह समय बड़ा नाजुक था, विशेषकर अफगानों के लिए, क्योंकि उनका राजा इब्राहिम लोदी हाल ही में पराजित होकर पानीपत की लड़ाई में मारा गया था और हिन्दुस्तान की सर्वोच्च सत्ता भी अफगानों के हाथों में से निकलकर मुगलों के हाथों में चली गयी थी। बहारखाँ, जिसने सुल्तान मुहम्मदशाह की उपाधि धारण कर अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया था, इस समय अपने आदमियों को एकत्र कर रहा था और बड़ी सावधानी से 'प्रतीक्षा करो और देखो' की नीति पर चल रहा

था।[7] शेरखाँ के शत्रुओं ने मुहम्मदशाह के कान भरे कि वह इब्राहीम के भाई महमूद लोदी के साथ, जो दिल्ली में अफगान शासन-सत्ता को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न कर रहा था, मिलने की तैयारी में है। यह बात मुहम्मदशाह के लिए भारी पड़ती थी क्योंकि उस हालत में उसे महमूद लोदी की अधीनता में रहने का डर था। फलतः उसने चौंद के मुहम्मदखाँ सूर को शेरखाँ और सुलेमान के उत्तराधिकार के झगड़े को तय करने के लिए पंच नियुक्त कर दिया। शेरखाँ अब भी जागीर के विभाजन के लिए तैयार नहीं था, वह तो सम्पूर्ण पैतृक जागीर पर अपना ही अधिकार रखने के लिए आग्रह कर रहा था। सुलेमान की ओर से मुहम्मदखाँ सूर ने परगनों पर बलात अपना अधिकार कर लिया और शेरखाँ को वहाँ से निकाल बाहर किया। शेरखाँपुर बे-घरबार होकर नौकरी की तलाश में निकल पड़ा। इस समय उसे बाजार से ही उत्तरी भारत में अपना साम्राज्य स्थापित कर चुका था, सहायता प्राप्त करने की अशा थी, जिससे मुहम्मदखाँ सूर से वह अपनी जागीर पुनः प्राप्त कर सके। उसे विचार से उसने कड़ा और मानिकपुर के मुगल गवर्नर जुन्नैद बरलास से सम्पर्क स्थापित किया और उसके द्वारा अप्रैल 1527 ई0 में मुगल सेना में एक स्थान प्राप्त कर लिया। जब बाबर ने बिहार के अफगानों पर चढ़ाई की, तो शेरखाँ की सेवाएँ और सहायताएं काफी लाभदायक सिद्ध हुई और मार्च 1528 ई0 में उसकी जागीर उसे पुनः सौंप दी गयी।[8] मुहम्मदखाँ सूर को उसने चौंद, जिस पर मुगलों का अधिकार हो गया था वापस कर दिया और इस प्रकार अपनी सफल कूटनीति और न्यायोचित व्यवहार के द्वारा उसे (मुहम्मदखाँ सूर) अपना कृतज्ञ बना लिया।

मुगलों के साथ कुछ समय तक रहने के कारण शेरखाँ ने उनके शासन-प्रबन्ध और सैनिक संगठन में कुछ ऐसे दोषों का पता लगा लिया था जिनसे उसे विश्वास हो गया था कि अफगानों को अपने राज्य को पुनः प्राप्त कर लेना असम्भव नहीं है। मुगलों का गैर मुगलों के प्रति अपमानजनक और उनके अभिमानसूचक व्यवहार भी शेरखाँ की तेज नजर से नहीं छिपे। 1528 ई0 के अन्त में वह मुगलों की नौकरी छोड़कर बिहार में इसलिए नहीं चला अया था कि यहाँ बाबर के विरूद्ध अफगानों को संगठित करे (कुछ आधुनिक लेखकों का यही मत है); बल्कि मुगलों के साथ उसका निववहि कठिन था। एक बार पुनः वह दक्षिण बिहार के सुल्तान मुहम्मदशाह के दरबार में पहुँचा और उसे जलालखाँ का शिक्षक और अभिभावक नियुक्त कर दिया गया। इसके बाद सुल्तान मुहम्मद शाह की मृत्यु हो गयी (1528 ई0) और उसके पीछे उसका उत्तराधिकारी जलालखाँ रह गया, जो अभी नाबालिग था। सुल्तान मुहम्मदशाह की विधवा पत्नी दूदू बीबी नये सुल्तान की संरक्षिका नियुक्त हुई। उसने शेरखाँ को अपना सहायक अथवा 'वकील' नियुक्त किया। डिप्टी गवर्नर की हैसियत से शेरखाँ ने शासन व्यवस्था का पुनः संगठन किया, फौज के अनेक दोषों को दूर किया और शिशु-शासक के प्रति स्वामिभक्ति और सेवा-भाव रखते हुए अपनी स्थिति को भी सुदृढ़ बनाया।[9] निजी स्वार्थो का भी उसने विस्मरण नहीं किया; बल्कि अपने साथ परखे हुए प्रभावों का एक दल एकत्र कर दिया। उसके ये अनुयायी अधिकतर सूर फिरके के लोग थे, जो उसके लिए जरूरत पड़ने पर अपनी जान तक देने को तैयार थे।

एक वर्ष के अन्दर ही शेरखाँ का भाग्य फिर गोते खाने लगा

(1529 ई0) बिहार के कुछ प्रमुख अफगानों के निमन्त्रण पर इब्राहिम लोदी का छोटा भाई महमूद लोदी यहाँ आ उपस्थित हुआ। राजा संग्रामसिंह, जिसकी ओर से वह खानवा की लड़ाई (मार्च 1527 ई0) लड़ा था, की पराजय के पश्चात् वह मेवाड़ चला गया था; किन्तु हिन्दुस्तान पर अपनी सत्ता स्थापित करने के उसके इरादे अभी खत्म नहीं हुए थे। उसके बिहार में आ जाने पर अफगान सरदारों ने आपस में मिलकर सलाह की और मुगलों से मोर्चा लेने की योजना बनायी। लगभग सभी अफगान उसके झण्डे के नीचे आ गये और उसने दक्षिण बिहार का शासन-सूत्र शिशु-सुल्तान जलालखाँ से इस आश्वासन पर अपने हाथ में लिया कि अफगानों के शत्रु बाबर पर विजय प्राप्त कर वह प्रान्त पुनः उसे (जलालखाँ को) सौंप दिया जाएगा।[10]

शेरखाँ महमूद लोदी की अयोग्यता और उसके प्रमुख अनुयायियों की पारस्परिक कटुता से भलीभाँति परिचित था। महमूद लोदी के नेतृत्व में होने वाली इन तैयारियों के प्रति उसने विशेष उत्साह प्रदर्शित नहीं किया और यह बहाना बनाकर वह अपनी जागीर में चला आया कि वहाँ वह इस अभियान की तैयारियाँ करेगा। वास्तव में बात तो यह थी कि वह बाबर के विरूद्ध मोर्चे में सम्मिलित नहीं होना चाहता था किन्तु महमूद लोदी , जो सभी अफगान नेताओं के सहयोग के लिए उत्सुक था, शेरखाँ से इस राष्ट्रीय कार्य में पूर्ण सहयोग प्राप्त करना चाहता था और इसी उद्देश्य से उसने अपनी फौजों को सहसराम से होकर ले जाना निश्चित किया, जिससे वह शेरखाँ से अन्य अफगान अनुयायियों के साथ फौज में सम्मिलित होजाने के लिए आग्रह कर सके। पहले तो शेरखाँ हिचकिचाया किन्तु कुछ सोच-समझकर वह तैयार

हो गया और महमूद के सहसराम आगमन पर उसने उसका शाही स्वागत-सत्कार किया तथा अपने सैनिक-दल के साथ उसके साथ सम्मिलित भी हो गया। अभियान के आरम्भ में तो अफगानों को अत्यधिक सफलता प्राप्त हुई। ये लोग गाजीपुर तक बढ़े चले आये और बनारस अपने अधिकर में कर लिया। किन्तु मुगल फौजों के वहाँ आ पहुँचने पर ये भयभीत हो गये और अभियान को छोड़ बैठे। महमूद लोदी तो युद्ध क्षेत्र में शत्रु से मोर्चा लिये बिना ही भाग खड़ा हुआ।[11] अफगान सरदारों में से बहुतों ने जिनमें शेरखाँ भी शामिल था, बाबर की अधीनता स्वीकार कर ली। दक्षिण बिहार का शिशु सुल्तान जलालखाँ, जो महमूद लोदी के आगमन पर बंगाल चला गया था, वापस आ गया। 16 मई, 1529 ई0 को उसने बाबर से भेंट की। इस शर्त पर उसका अधिकतर भाग सौंप दिया गया कि वह बाबर को वार्षिक कर चुकाता रहेगा। शेरखाँ को भी उसकी जागीर दे दी गयी और वह बाबर का अधीनस्त हो गया।[12]

जलालखाँ की माँ दूदू बीबी ने आगरा चले जाने और अपने बेटे के पुनः राज्य प्राप्त कर लेने पर शेरखाँ को फिर से उसका संरक्षक और बिहार का डिप्टी-गवर्नर नियुक्त कर दिया। बंगाल और दिल्ली के शक्तिशाली राज्यों के मध्य स्थित होने के कारण दक्षिण बिहार के लिए यह बड़ा भय था कि कहीं उसे इन राज्यों के झगड़ों में न फँसना पड़े और इनकी नाराजगी का शिकार बनना पड़े।[13] इसके साथ ही इस प्रान्त की शासन-व्यवस्था और आर्थिक स्थिति भी कमजोर हो गयी थी क्योंकि बाबर और महमूद लोदी के संघर्ष का यह रण-स्थल बन गया था। दूदू बीबी का

वह विचार बिल्कुल ठीक था कि शेरखाँ की कोटि का प्रबन्धक ही इस प्रान्त को इसकी पूर्व-समृद्धि तक ला सकता है।[14] नियुक्ति के पश्चात् शेरखाँ प्रान्त के शासन-सुधार और उसे व्यवस्थित करने में जी-जान से लग गया। इसके कुछ समय बाद दूदू बीबी का स्वर्गवास हो गया और सम्पूर्ण शासन-सत्ता शेरखाँ के ही हाथ में आ गयी। जलालखाँ अभी नाबालिग और नाममात्र का ही शासक था। इन परिस्थितियों में शेरखाँ को सेना पर अपना प्रभाव और प्रभुत्व स्थापित करने और उसे अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तैयार करने का अच्छा अवसर प्राप्त हो गया। उसने अपने परखे हुए विश्वासपात्र आदमियों को शासन और सेना में महत्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर दिया और वह स्वंय हर प्रकार से अपनी शक्ति और प्रतिष्ठा बढ़ाने में लग गया।

इस समय दक्षिण बिहार के सामने सबसे आवश्यक समस्या बंगाल के नुसरतशाह (1518-32 ई0) से अपने सम्बन्ध ठीक करने की थी। नुसरतशाह अपने पड़ोसी राज्य का कुछ भी ख्याल न करके अपना राज्य विस्तार करना चाहता था। शेरखाँ ने अनुभव किया कि बंगाल की ओर से इस बढ़ते हुए खतरे को दूर करने के लिए किसी शक्तिशाली दोस्त की तलाश होनी चाहिए। उसने नुसरतशाह के बहनोई और हाजीपुर के गवर्नर मखदूमे आलम से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किये। मखदूमे आलम की नुसरतशाह से नहीं बनती थी और इसी बात को समझकर शेरखाँ ने उसे समातोलन के रूप में रखकर नुसरतशाह के विरूद्ध भिड़ाना चाहा।[15] जब यह बात नुसरतशाह को मालूम हुई तो वह बहुत बिगड़ा। अपने बहनोई पर उसने चढ़ाई कर दी और उसे मौत के घाट उतार दिया। उधर शेरखाँ ने मखदूमे आलम द्वारा एकत्र

किया हुआ एक बड़ा खजाना अपने अधिकार में कर लिया। मखदूमे आलम पर विजय-लाभ करने से उत्साहित होकर नुसरतशाह ने दक्षिण बिहार पर भी चढ़ाई कर दी; किन्तु शेरखाँ ने 1529 ई0 में उसे बुरी तरह पराजित किया। अपने शक्तिशाली पड़ोसी पर विजय प्राप्त करने से शेरखाँ की प्रसिद्धि और प्रतिष्ठा काफी बढ़ गयी। लेकिन उसको इस प्रकार बढ़ते-चढ़ते देख लोहानी जल गये। जो आदमी कभी उनके सरदार का नौकर रह चुका था, वह इस प्रकार प्रतिष्ठा पाये, यह उनके लिए असहाय था। इन लोगों ने जलालखाँ के कान भर दिये और उसे शेरखाँ के विरूद्ध भड़का दिया। इतने से भी सन्तुष्ट न होकर इन लोगों ने शेरखाँ की हत्या करने का षड़यन्त्र रचा, किन्तु वह सफल नहीं हो सका। अपने विरूद्ध इतने लोगों को देखकर शेरखाँ ने यही निश्चय किया कि सत्त सँभालने में लोहानियों का भी हाथ रहे, किन्तु उसका यह प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया गया।[16] इसके विपरीत लोहानियों ने शेरखाँ से सत्ता छीनने में सहायता देने के लिए बंगाल के बादशाह को निमन्त्रण दिया। जब उन्हें इसमें भी सफलता नहीं मिली तो ये लोग नाबालिग सुल्तान जलालखाँ के साथ नुसरतशाह के पास भाग गये और बंगाल में शरण ली।

दक्षिण बिहार से जलालखाँ के चले जाने से शेरखाँ वहाँ का वास्तविक राजा हो गया। किन्तु उसने कोई राजसी उपाधि धारण नहीं की और 'हुजरते आला' की शरण पदवी लेकर ही राजकाज चलाने लगा। चुनार के एक पूर्व गवर्नर ताजखाँ की विधवा पत्नी लाड मलिका से शादी कर लेने पर उसे चुनार दुर्ग प्राप्त हो गया, उससे उसकी सैनिक और आर्थिक स्थिति और मजबूत हो गयी। इस शादी-सम्बन्ध से प्रत्यक्ष लाभ हुए। एक तो चुनारगढ़

जैसा अभेद्य दुर्ग उसे प्राप्त हो गया, दूसरे की जमीन में छिपा हुआ एक बहुत बड़ा खजाना भी उसके हाथ लगा।[17] इन सफलताओं से उसकी विजय-लालसा एवं महत्वाकांक्षाएँ और अधिक प्रज्वलित हो गयी। अब वह एक स्वतन्त्र शासक बनने के सुख-स्वप्न देखने लगा और अपने उत्कर्ष से योजनाओं को कार्यान्वित करने लगा।[18]

इन सफलताओं के बावजूद शेरखाँ के लिए सत्ताधारी शासक बनना सरल कार्य नहीं था। उसे जल्दी ही दुर्भाग्य ने आ घेरा, जिससे कुछ दिनों के लिए उसकी महान योजनाओं की गति रूक गयी। यद्यपि लोहानी सरदार बंगाल भाग गये थे और दक्षिण बिहार में वह नाम से न सही, काम से सर्वसत्ताधारी शासक बना हुआ था और प्रयत्न कर रहा था कि भारतीय अफगान संगठित हो जायें, उनकी आर्थिक और नैतिक स्थिति ठीक हो जाय; फिर भी उसकी जाति में ही विरोधी तत्वों की कमी नहीं थी, जिनको शान्त करना उसके लिए अनिवार्य था। शेरखाँ छोटी स्थिति से उठते हुए एक शासक के परम उच्च पद पर पहुँच गया था। उसका यह उत्कर्ष बहुत से अफगान अधिकारियों को फूटी आँख भी नहीं सुहाता था। वे तो उसे एक छोटी सी स्थिति से बढ़ा हुआ आदमी समझते थे। 1530 ई0 में इन असन्तुष्ट अधिकारियों ने महमूद लोदी को, जो घाघरा की लड़ाई में हारकर एक शरणार्थी बना हुआ अपने दिन काट रहा था, निमन्त्रित किया। उसने यह निमन्त्रण स्वीकर कर लिया और बिहार आ गया। हिन्दुस्तान से मुगलों को भगाने और यहाँ पर पुनः अफगानी सत्ता जमाने के लिए यह समय भी अनुकूल जान पड़ता था। मुगल-साम्राज्य का युवराज हुमायूँ बूरी तरह बीमार पड़ा हुआ

था।[19] किन्तु अपने बेटे के लिए बाप ने अपना बलिदान किया और मुगल साम्राज्य का स्थापक बाबर दिसम्बर 1530 ई0 में स्वर्ग सिधार गया। अफगानी लोग मुगलों की कठिनाइयों से लाभ उठाना चाहते थे। महमूद लोदी के बिहार में आ जाने से शेरखाँ को अपनी जागीर में जाना पड़ा क्योंकि वह इस लोदी सरदार की अधीनता में रहकर काम करना नहीं चाहता था। महमूद उसे खुश करके अपनी ओर मिलाना चाहता था और इसी उद्‌देश्य से उसने उसे लिखित आश्वासन दिया कि मुगलों पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् दक्षिण बिहार का सम्पूर्ण प्रदेश उसी को वापस दिया जाएगा। महमूद शेरखाँ की जागीर में भी गया और उससे सहयोग करने के लिए प्रार्थना की जिससे मुगलों के उपर मिलकर चढ़ाई की जा सके। शेरखाँ तो इसके लिए राजी नहीं हुआ किन्तु बाद में अनिच्छापूर्वक इस आक्रमण-योजना में सहयोग देने के लिए उसने अपनी स्वीकृति दे दी और अफगान संगठन का हिस्स बन गया।[20]

कई महीनों की तैयारियें के पश्चात् आक्रमण की एक योजना बनायी गयी। महमूद के नेतृत्व में अफगानों ने बनारस पर अधिकार कर लिया और जौनपुर की ओर बढ़ चले। मुगल गवर्नर जुन्नैद बरलास वह स्थान छोड़कर आगरे की ओर हट गया। इस सफल्ता से उत्साहित होकर अफगान लोग लखनऊ की ओर बढ़े और उसे अपने अधिकार में कर लिया। इस समय हुमायूँ कालिजर का घेरा डाले पड़ा था। अपनी फौज के पराजित होने के समाचार सुनकर उसने कालिजर के राजा के साथ मुगल सन्धि कर ली और पूरब की ओर अफगानों के बढ़ाव को रोकने के लिए चल दिया। दूसरी ओर की फौजें अवध के बाराबंकी जिले की नवाबगंज तहसील के दोनरूआ नामक

स्थान पर आमने-सामने आकर खड़ी हो गयी और अगस्त 1532 ई0 में इन दोनों के मध्य बड़ी जोरों की लड़ाई हुई जिसमें अफगान बुरी तरह हार गये और उनका नेता महमूद लोदी उड़ीसा भाग गया, जहाँ वह अपना शेष जीवन व्यतीत करते हुए 1542 ई0 में मर गया। अफगानों की इस आक्रमण-योजना में शेरखाँ अनिच्छापूर्वक सम्मिलित हुआ था। इसके असफल होने पर उसने दक्षिण बिहार को पुनः हस्तगत कर लिया और इसका पुनः शासक बन बैठा।

दोनरूआ में महमूद लोदी पर विजय प्राप्त कर लेने के पश्चात् हुमायूँ शीघ्र ही आगरा नहीं लौटा, उसने चुनारगढ़ के दुर्ग पर, जो शेरखाँ को 1530 ई0 में लाड मलिका के साथ विवाह करने के फलस्वरूप प्राप्त हुआ था, घेरा डाल दिया। दुर्ग के समीप जब मुगल फौजें दिखायी देने लगीं, तो शेरखाँ ने इसकी रक्षा का भार अपने दूसरे लड़के जलालखाँ को सौंप दिया और स्वयं बिहार के दहातों में चला गया। चुनारगढ़ पर मुगल घेरा चार महीने (सितम्बर से दिसम्बर 1532 ई0 तक) पड़ा रहा। हुमायूँ के लिए जलालखाँ को अपने अधीन बना लेना सरल काम नहीं था। परिस्थितियों ने भी मुगल सेनाओं से भिड़ने में सहायता दी। घेरा डालने के पश्चात् हुमायूँ को यह चिन्ताजनक समाचार मिला की गुजरात का बहादुरशाह सिर उठा रहा है और मुगलों से भिड़ने के लिए तैयारियाँ कर रहा है।[21] इन परिस्थितियों में हुमायूँ ने सुलह करने का निश्चय कर लिया, जैसा पहले भी कालिंजर के राजा के साथ उसने किया था। उसने चुनार के दुर्ग पर शेरखाँ का अधिकार इस शर्त पर रहने दिया कि वह पाँच सौ सैनिकों का एक दल अपने तीसरे लड़के कुतुबखाँ की कमान में मुगल सेना के साथ रखेगा। ये शर्ते दोनों को ही मान्य

थी इसलिए सन्धि हो गयी और जनवरी 1533 ई0 में बहादुरशाह से निबटने के लिए हुमायूँ आगरा लौट गया।

हुमायूँ के आगरा लौट जाने पर शेरखाँ चुनार के समीप से दक्षिण बिहार लौट गया। चुनारगढ़ पर घेरा डालते समय बंगाल के शासक ने बिहार के साथ का व्यवहार किया था। अब शेरखाँ ने उसका प्रत्युत्तर देने का निश्चय किया था। इस उद्देश्य से उसने बंगाल पर आक्रमण की तैयारियाँ पूरी हो गयी तो 1533 ई0 में बंगाल के नये शासक सियासुद्दीन महमूद के ऊपर उसने चढ़ाई कर दी। शेरखाँ अपने मार्ग में ही की खाई खोदवाकर अपने आपको सुरक्षित रखता था जिससे उस पर अचानक आक्रमण न हो सके। बंगाल की सेना उस समय के सुप्रसिद्ध कमाण्डर इब्राहीमखाँ के नेतृत्व में थी। यह कुतुबखाँ का पुत्र था। सूरजगढ़ में दोनों ओर की सेनाएँ आमने-सामने आ गयी और 1534 ई0 में वहाँ बड़ी भयंकर लड़ाई लड़ी गयी। शेरखाँ ने खुदाई से बंगाल की सेना को एक गुप्त स्थान की ओर आकर्षित कर लिया और तब उसके ऊपर आक्रमण करके उसे हरा दिया। बंगाल की सेना की अपार क्षति हुई और उसके हजारों सैनिक बुरी तरह कत्ल कर दिये गये। सूरजगढ़ की लड़ाई का परिणाम वही हुआ, जिसका शेरखाँ ने अनुमान लगाया था। ''सम्पूर्ण कोष, हाथी और गोला बारूद शेरखाँ के हाथ लगा। यह युद्ध-सामग्री प्राप्त कर वह बिहार और इसके अतिरिक्त अन्य प्रदेशों का मालिक बन बैठा।'' सूरजगढ़ की लड़ाई से प्राप्त सफलता से उसके दिल में महत्वाकांक्षाओं का अपार सागर लहराने लगा और उज्जवल भविष्य का द्वार उसके सामने खुल गया।

सूरजगढ़ के विजय लाभ से शेरखाँ की विजय-लालसा और बढ़ गयी। इस सफलता के बाद उसने बंगाल पर पुनः चढ़ाई की, इस समय तक हुमायूँ गुजरात के बहादुरशाह के विरूद्ध ही मोर्चा खड़ा किये हुए था। शेरखाँ ने सियासुद्दीन महमूद को लगातार कई बार हराया और तेलियागढ़ी की दर्रे के निकट का उसका सारा प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। इस प्रकार बुरी तरह हारते हुए और शत्रु-सेना से घिरकर बंगाल का शासक चिनसूरा के पुर्तगालियों की सहायता लेने के लिए मजबूर हो गया। बंगाल और पुर्तगालियों की संयुक्त सेना ने तेलियागढ़ी और सिकरीगाली के दर्रे को बचाने के लिए प्रयत्न किया, किन्तु शेरखाँ मित्र फौजों से कही अधिक चतुर था। दर्रों की ओर हटकर वह चतुरता से मित्र फौजों का चक्कर काटते हुए बंगाल की राजधानी गौड़ की ओर जा निकला और 1536 ई0 में उस पर आक्रमण करने की धमकी दे दी। सियासुद्दीन के पुर्तगाली साथी यहाँ उसके सहायक सिद्ध नहीं हो सकते थे। उसके सामने इसके सिवाय अब कोई दूसरा रास्ता नहीं था कि वह शेरखाँ से सन्धि-चर्चा चलाये और तेरह लाख रूपयों की कीमत की स्वर्ण-राशि उसे भेंट कर आक्रमण को अस्थायी रूप से टलवाये।[22]

इस सन्धि से महमूद को केवल अस्थायी आराम मिला, क्योंकि शेरखाँ में बंगाल-विजय की लालसा बड़ी प्रबल हो चुकी थी। वह यह भी जानता था कि सफल्ता प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है, क्योंकि बंगाल की फौजों को सूरजगढ़ और गौड़, दो स्थानों पर हरा चुका था। साथ ही उसे महमूद और पुर्तगालियों के बीच चलती हुई वार्ताओं का भी पता था और वह इन दोनों के मध्य मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध को रोकने के लिए चिन्तित था।

सन्धि के एक वर्ष के अन्दर ही उसने बंगाल पर पुनः चढ़ाई करने की तैयारियाँ आरम्भ कर दी (1537 ई0)। आक्रमण का एक बहाना भी निकाल लिया गया। महमूद वार्षिक कर चुकाने में असमर्थ तो था और साथ ही अभी तक उसने शेरखाँ को शत्रु समझने की नीति नहीं त्यागी थी। महमूद शेरखाँ का मुकाबला ही क्या कर सकता था। उसे मजबूर होकर गोड़ के दुर्ग में जाकर शरण लेनी पड़ी। यहाँ से उसने ऐसे संकटकाल में हुमायूँ से शीघ्र ही सहायता करने की अपील की। शेरखाँ यह भली प्रकार जानता था कि यदि उसे सफलता प्राप्त करनी है तो तुरन्त कार्यवाही करनी चाहिए। उसने अपने लड़के जलालखाँ और सबसे योग्य एवं स्वामिभक्त जनरल खवासखाँ को गौड़ पर घेरा डालने और हुमायूँ की सहायता पहुँचने के पहले ही बंगाल को जीत लेने के लिए भेज दिया। इसी समय उसने अपनी फौज का एक भाग सुदूर-स्थित चिटगाँव आदि जिलों पर अधिकार कर लेने के लिए भेज दिया। बंगाल का पतन अब कुछ ही दिनों की बात रह गयी।[23]

बंगाल की ओर शेरखाँ को इस प्रकार तेजी से बढ़ते हुए और प्रदेशों को जीतते हुए देख हुमायूँ सावधान हुआ और उसने हिन्दू बेग को वहाँ की स्थिति का अध्ययन करने और शीघ्रातिशीघ्र तत्सम्बन्धी जानकारी की सूचना देने के आदेशों सहित भेजा। इस मुगल सरदार ने, जिसका शेरखाँ के साथ मित्र-भाव जान पड़ता था, रिपोर्ट भेजी कि पूरबी सरहद में सर्वत्र शान्ति है और इधर अफगान सरदार शेरखाँ की कोई सरगमी दिखायी नहीं देती। इसके कुछ समय बाद हुमायूँ को बंगाल के बादशाह महमूद का पत्र मिला जिसमें उसने सहायता की याचना की थी। इसके बाद उसे वह चिन्ताजनक

समाचार भी प्राप्त हुए कि लगभग सम्पूर्ण बंगाल शेरखाँ के हाथ में जाने वाला है। फलतः मुगल सम्राट ने आगरा में एक साल (अगस्त 1536 से जुलाई 1537 ई0 तक) नष्ट करने के उपरान्त चुनार की ओर चलने की तैयारियाँ शुरू कर दी। उसने आगरे की सरकार मीर मोहम्मद बख्शी और दिल्ली की मीर फखअली को सौंप दी और यादगार नासिर मिर्जा को कालपी में, नूरूद्दीन को कन्नौज में और हिन्दू बेग को जौनपुर में तैनात कर दिया तथा स्वयं 27 जुलाई, 1537 ई0 को आगरे से चल पड़ा। नवम्बर में चुनार पहुँचने पर उसने दुर्ग को घेर लेने के लिए आज्ञा दे दी। शेरखाँ ने दुर्ग को अपने लड़के कुतुबखाँ और गाजीखाँ सूर की देखरेख में छोड़ रखा था। दुर्ग पर आसानी से अधिकार नहीं किया जा सका और पूरे छह महीने तक (अक्टूबर 1537 ई0 से मार्च 1538 ई0 तक) घेरा पड़ा रहा। किन्तु शेरखाँ ने बड़ी चतुराई से इस पर अधिकार कर लिया। दुर्ग को रूमीखाँ के प्रबन्ध छोड़कर बादशाह बनारस की ओर बढ़ा। वह अभी यह निश्चय नहीं कर पाया कि उसे महमूद की सहायता के लिए गौड़ पहुँचना चाहिए अथवा शेरखाँ की बढ़ती हुईपीठ को कुचलने के लिए दक्षिण बिहार चलना चाहिए। उसने चुनारगढ़ के घेरे छह महीने कष्ट कर दिये थे; किन्तु इस पर अधिकार हो जाने से कोई लाभ नहीं हुआ, क्योंकि यहाँ से स्थलमार्गो पर नियन्त्रण नहीं रखा जा सकता था।[24] चुनार के लिए तो वह अपनी फौज के कुछ दल छोड़ सकता था जो दुर्ग के अफगान को पर निगाह रखते। इस अवधि में शेरखाँ ने मुगेर और गौड़ के मध्य का बंगाल पर जीत लिया था (जुलाई से अक्टुबर 1537 ई0) और महमूद की राजधानी पर डाल दिया था।

हुमायूँ जब बनारस में ही डेरा डाले हुए था, तो उसने शेरखाँ से सन्धि की खनीत चलायी थी। शेरखाँ जलालखाँ और खयासखाँ के हाथों में गौड़ का घेरा छोड़कर बिहार चला आया था। शेरखाँ के राज्य-प्रदेश के अत्यन्त निकट पहुँचने के मिनार से हुमायूँ सोन नदी के किनारे मानेर तक बढ़ गया। हुमायूँ ने शेरखाँ को आदेश दिया कि तुम चुनारगढ़, जौनपुर या रोहतासगढ़ में से किसी एक को बतौर जागीर के ले लो तथा बिहार और बंगाल के शेष सब भागों को छोड़ दो। हुमायूँ की वह माँग शेरशाह द्वारा अस्वीकृत होनी स्वाभाविक थी। अब हुमायूँ ने दूसरी माँग की जिसमें बिहार को वापस माँगा गया। किन्तु अन्त में वह इतने पर ही राजी हो गया कि शेरखाँ बंगाल पर अपना अधिकार रखे और 10 लाख रूपये वार्षिक-कर मुगल खजाने में पहुँचाता रहे। शेरखाँ इन शर्तो को मानने के लिए तैयार हो गया और हुमायूँ ने उसके लिए खिलअत और एक घोड़ा भेजा। दोनों के मध्य झगड़े का अन्त होता हुआ दिखायी देने लगा था।[25]

सन्धि-वार्ताओं के आरम्भ होने के कुछ पहले शेरखाँ ने, जिसे सम्भवत: इन इरादों का आभास हुआ था, बड़ी चतुराई से बिहार में रोहतासगढ़ के सुदृढ़ दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया था। यह दुर्ग सोन नदी के ऊपर पहाड़ों और जंगलों से ढ़क हुए एक विस्तृत भू-प्रदेश में स्थित था और कहा जाता था कि राजा हरिश्चन्द्र के पुत्र रोहिताश्व ने इसका निर्माण कराया था। यह एक हिन्दू राजा के अधिकार में था, जिसके ब्राह्मण मन्त्री चूड़ामणि के साथ शेरखाँ ने मैत्री-सम्बन्ध स्थापित कर लिया था। शेरखाँ इस सुदृढ़ दुर्ग को अपने परिवार और खजाने की सुरक्षा के विचार से अपने

अधिकार में चाहता था। उसने किस प्रकार इस दुर्ग पर अधिकार प्राप्त किया, इसके बारे में दो कथन प्रचलित है। कहा जाता है कि रोहतासगढ़ के राजा से शेरखाँ ने यह प्रार्थना की कि वह अपने दुर्ग में उसके परिवार की महिलाओं को शरण देने की कृपा करें और जब राजा इसके लिए तैयार हो गया, तो शेरखाँ ने बड़ी चालबाजी से परदे वाली पालकियों में स्त्रियें का वेश धारण किये हुए शस्त्रों से सुसज्जित बहुत-से अफगान सैनिकों को घुसा दिया। इस प्रकार दुर्ग में प्रवेश पर लेने के उपरान्त ये लोग जनाने कपड़े उतार और शस्त्र हाथों में लेकर अपने असली रूप में प्रकट हो गये और राजा तथा उसके आदमियों को मार भगाया। आधुनिक लेखकों ने इस वृत्तान्त को गलत बताया है। दुसरा वृत्तान्त अधिक विश्वसनिय है। इसके अनुसार शेरखाँ ने राजा के मन्त्री को लोभ-लालच और घूँस देकर दुर्ग में शरण प्राप्त करने के लिए बचन ले लिया था। यद्यपि राजा ने इस प्रकार का वचन देने के प्रति नाराजगी प्रकट की किन्तु मन्त्री चूड़ामणि के कहने पर कि मैं वचनबद्ध हूँ और यदि मेरी बात टलती है तो मेरी प्रतिष्ठा भी चली जायेगी।, राजा को शरण देने के लिए राजी होना पड़ा। दुर्ग में प्रवेश करने के थोड़ी देर बाद ही अफगानों ने राजा के सैनिकों को वहाँ से निकाल बाहर किया और दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया (1538 ई0)।[26] रोहतासगढ़ पर जो देश के सबसे सुदृढ़ दुर्गो में से एक था- शेरखाँ का अधिकार हो जाने से उसे अपने परिवार के लिए एक अत्यन्त सुरक्षित स्थान ही नहीं प्राप्त हुआ, बल्कि यहाँ पर हिन्दू राजाओं द्वारा युगों से एकत्र किया हुआ एक बहुत बड़ा राजकीय भी उसके हाथ लगा। अपनी स्त्रियों और बच्चों को इस सुरक्षित स्थान में छोड़कर शेरखाँ अब हुमायूँ से

निबटने के लिए निश्चित और तैयार था।

जबकि हुमायूँ अभी इसी दुविधा में ही फँसा था कि शेरखाँ से सुलह करें अथवा बंगाल पर चढ़ाई करूँ। जलालखाँ और खयासखाँ, जिन्हें शेरखाँ ने गौड़-विजय के लिए छोड़ रखा था, बंगाल की राजधानी पर घेरा डालकर और अधिक दबाव डालने में सफलता प्राप्त कर रहे थे। वे लोग गोलाबारी कर दुर्ग को अपने अधिकार में करने का प्रयत्न कर रहे थे। शेरखाँ ने अपने लड़के के पास यह आवश्यक सन्देश भेजा कि वे लोग गौड़ पर विजय प्राप्त कर बंगाल अभियान को जल्दी से जल्दी सफल्तापूर्वक समाप्त करें, क्योंकि सुल्तान महमूद की सहायता के लिए हुमायूँ के वहाँ पहुँच जाने की सम्भावना है। खवासखाँ ने दुगुने प्रयत्नों से मोर्चा बांधना शुरू किया। आस-पास के क्षेत्रों को उसने तबाह कर दिया और दुर्ग में रसद-सामग्री पहुँचने के तमाम रास्ते रोक दिये, जिससे दुर्गरक्षक बड़े संकट में पड़ गये। बुरी तरह घिर जाने के कारण महमूद अपनी राजधानी छोड़कर उत्तरी बिहार की ओर भाग गया। अफगानों ने उसका पीछा किया और उसे हरा दिया। लड़ाई में वह बुरी तरह घायल हुआ था लेकिन फिर भी किसी प्रकार हाजीपुर की ओर विक्षिप्त मानसिक स्थिति में बचकर भाग आया। दोनों अफगानी जनरलों ने गौड़ पर अधिकार कर लिया और शेरखाँ की शासन-सत्ता बंगाल में जमा दी। शेरखाँ इस विजय से बहुत प्रसन्न हुआ और उसने अपने लड़के जलालखाँ के पास सन्देश भेजा कि हुमायूँ के बंगाल की पश्चिमी सीमा तक पहुँचने से पहले बंगाल के राजकोष को रोहतासगढ़ भेज दो।[27]

इसी समय हुमायूँ से बंगाल के महमूद ने अत्यन्त कातरतापूर्वक सहायता प्रदान करने की प्रार्थना की और कुछ दिनों बाद स्वयं भी मानेर के मुगल शिविर में इसी निमित्त आ उपस्थित हुआ। हुमायूँ ने, जो शेरखाँ ने सन्धि कर चुका था, अपना विचार बदल दिया और सन्धि-शर्तो को तोड़ते हुए बंगाल जाकर उसे विजय करने का निश्चय कर लिया। शेरखाँ ने हुमायूँ द्वारा सन्धि को तोड़ते देख यह उचित ही समझा कि मुगल बादशाह पर विश्वास नहीं किया जा सकता। उसने अपने अफगान सैनिकों को यह कहकर उत्तेजित किया कि अपनी ओर से अफगानों का केन्द्र-स्थल छोड़ देने और मुगलों को वार्षिक कर चुकाने या उनके अधीनस्थ होने की स्वीकृति दे देने पर भी मुगल बादशाह ने सन्धि को ठुकरा दिया है और अब वह अफगान जाति को ही नष्ट करने पर तुला है। उसके आदमियों ने उसका पूरा-पूरा साथ देने और अफगान जाति की रक्षा के लिए अन्तिम दम तक लड़ने का उसे आश्वासन दिया।[28]

हुमायूँ ने अब पूरब की ओर अपनी यात्रा आरम्भ कर दी। यद्यपि महमूद खलगाँव (कोलगाँव) में ही मर गया तथापि हुमायूँ गौड़ विजय के लिए आगे बढ़ता गया। शेरखाँ ने जो इस समय बंगाल के खजाने को रोहतासगढ़ में लाने के लिए प्रबन्ध कर रहा था, अपने लड़के जलालखाँ को सन्देश भेजा कि वह अपनी फौज के साथ तेलियागढ़ी की ओर बढ़ जाय और वहाँ पहुँचकर मुगलों के प्रदेश से दर्रे की रक्षा करे, जिससे खजाना आसानी से इधर लाया जा सके। तेलियागढ़ी नामक स्थान जो (ई.आई.आर.लूप लाइन पर) वर्तमान साहबगंज से 7 मील पूरब में स्थित है, उन दिनों 'बंगाल की कूंजी'

समझा जाता था। जलालखाँ वहाँ पहुँचकर केवल रक्षात्मक कार्य से ही सन्तुष्ट नहीं हुआ बल्कि मुबारकखाँ के नेतृत्व में उसने मुगलों के अग्रगामी दल पर हमला कर दिया। इस दर्रे पर उसने मुगलों को इस सफलता से रोके रखा कि हुमायूँ को एक माह का विलम्ब हो गया और इस अवधि में शेरखाँ ने गौड़ का खजाना आसानी से रोहतासगढ़ में पहुँचा दिया। जब यह कार्य सम्पन्न हो गया तो उसे तेलियागढ़ी से वापस बुला लिया गया और उसने यह स्थान इतनी शान्ति से छोड़ा कि मुगलों को वहाँ से उसके चले जाने का समाचार दूसरे दिन प्राप्त हुआ। हुमायूँ अब गौड़ की ओर बढ़ा और शेरखाँ ने भी बिना किसी रोकथाम के उसे आगे बढ़ने दिया। जैसे ही मुगलों ने गौड़ में प्रवेश पाया, शेरखाँ ने यातायात का सम्बन्ध-विच्छेद करने की तैयारियाँ कर दी। उसने अफगानों के दल बनारस, जौनपुर, कालपी और कन्नौज इस विचार से भेज, दिये कि वहाँ जाकर ये मुगल अफसरों को निकाल बाहर करें। अफगानों ने तिरहुत पर अधिकार कर लिया और बनारस के गवर्नर फजली को मारकर यहाँ भी अधिकार जमा लिया।[29] इसके पश्चात् जौनपुर पर उनका कब्जा हो गया और यहाँ से ये लोग कन्नौज की ओर बढ़े। हिन्दाल तो पहले ही अपना स्थान छोड़ बैठा था और आगरा में भाग आया था, वहाँ वह स्वयं राजा बन बैठा। उसने हुमायूँ के श्रद्धापात्र शेख बहलोल का मार दिया और प्रमुख मुगल सरदारों एवं मुगल राजपरिवार के व्यक्तियों से भी शत्रुता मोल ले ली। तेलियागढ़ी से कन्नौज तक का सम्पूर्ण प्रदेश शेरखाँ के हाथों में आ गया। उसने मुख्य-मुख्य स्थानों पर अपने अधिकारी नियुक्त कर दिये और शासन व्यवस्था तथा कर-वसूली का भी उचित प्रबन्ध कर दिया।

उधर हुमायूँ इस समय प्रमोद और विलास में डूबा हुआ था और जब उसे इस चिन्ताजनक समाचार का पता चला कि तेलियागढ़ी से लेकर कन्नौज तक का सम्पूर्ण प्रदेश अफगानों के हाथ में चले जाने से दिल्ली और आगरे से यातायात का सम्बन्ध-विच्छेद हो गया है, तो आठ महीने की सुस्ती के पश्चात उसकी नींद खुली। बंगाल पर अधिकार जमा रखने के लिए पाँच हजार सैनिकों को जहाँगीर कुली बेग के नेतृत्व में छोड़कर उसने आगरे की ओर शीघ्रता से कदम बढ़ाये।[30]

असकरी अग्रगामी दल का नेतृत्व करते हुए आगे-आगे चला और हुमायूँ एक अन्य डिवीजन का नेतृत्व संभाले उसके कुछ मील पीछे-पीछे चला। मुंगेर पर दोनों भाई मिल गये और उत्तर की ओर गंगा नदी पार कर पुरानी ग्राण्ड ट्रक रोड पर चलने लगे, जो शेरखाँ के राज्य में होकर चली जाती थी। सतर्क अफगानी भेदिये मुगल फौज की गतिविधि के समाचार शेरखाँ के पास पहुँचा रहे थे। उसने मुगलों से खुली लड़ाई में ही मोर्चा लेने का निर्णय किया। मुगल बादशाह ग्राण्ड ट्रंक रोड पर आगे नहीं बढ़ सका और उसे बिहिया नामक स्थान पर गंगा नदी पुनः उत्तरी किनारे की ओर पार करनी पड़ी। उसकी इन गलतियों से शेरखाँ को शान्त रहकर बैठे रहने की नीति त्यागने का अवसर प्राप्त हुआ और वह संघर्ष के लिए तैयार हो गया। उसने मुगल फौज को चारों ओर से घेर लिया, हर तरह से उसे तंग किया और कुछ छोटी-मोटी लड़ाइयाँ करने के लिए भी मजबूर किया। इस प्रकार अफगानों द्वारा तंग होते हुए हुमायूँ चौसा नामक स्थान पर पहुँचा। यह स्थान बक्सर से दक्षिण-पश्चिम दस मील पर है कर्मनासा नदी से थोड़ी ही दूर पर स्थित

है। यह नदी बिहार और वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमा निर्धारित करती है। यह स्थान बक्सर से दक्षिण-पश्चिम में दस मील पर और कर्मनासा नदी से थोड़ी ही दूर पर स्थित है। यह नदी बिहार और वर्तमान उत्तर प्रदेश की सीमा निर्धारित करती हैं यहाँ से मुगलों ने दक्षिण की ओर पुनः गंगा पार की। अब शेरखाँ भी प्रकट हो गया और मुगलों को बिना किसी रूकावट के गंगा पार कर लेने देने के विचार से कुछ दूर पर हट गया। मुगल बादशाह के लिए अफगान फौजों पर आक्रमण करने का यह सबसे उपयुक्त समय था क्योंकि कई दिनों की लगातार और तेज यात्रा के कारण ये लोग थके हुए थे। जो समय मुगलों ने गंगा पार करने में लगाया, उसका उपयोग शेरखाँ ने अपने सैनिकों को आवश्यक आराम देने और अपने शिविर की किलेबन्दी करने में किया। इसके अतिरिक्त बिहार के अफगानों का एक बड़ा दल उससे आ मिला। शेरखाँ ने भी मुगलों पर अपनी ओर से आक्रमण नहीं किया और दोनें ओर की फौजें एक-दूसरे का सामना किये हुए तीन महीने तक पड़ी रही। शेरखाँ ने अपनी ओर से जानबूझकर आक्रमण नहीं किया था, क्योंकि उसकी चाल बरसात का मौसम आ जाने पर मुगलों की असुविधाओं एवं उनके संकटों से लाभ उठाकर उनसे युद्ध करने की थी।

इसी बीच में हुमायूँ ने लड़ाई टालने और शेरखाँ से शान्तिपूर्ण तरीकों से झगड़ा निबटाने का प्रयत्न किया। उसने अफगान-शिविर में अपने एक दूत को यह सन्देश लेकर भेजा कि यदि शेरखाँ उसकी अधिनता स्वीकार करके उसने नाम का खुतबा पढ़वाये और अपने सम्पूर्ण राज्य में उसी के नाम का सिक्का चलवाये तो बंगाल और बिहार के प्रान्त उसी के अधिकार में

छोड़े जा सकते हैं, किन्तु अन्य प्रदेशों को उसे त्यागना पड़ेगा। शेरखाँ ने इन शर्तों के प्रति रजामन्दी दिखाने का बहाना किया और प्रस्ताव रखा कि बंगाल और बिहार के साथ-साथ चुनारगढ़ पर भी उसी का अधिकार रहने दिया जाय। हुमायूँ इसके लिए तैयार न था और इस प्रकार सन्धि चर्चा टूट गयी। किन्तु अपनी कमजोरियों का ख्याल करके मुगल सम्राट ने चौसा की लड़ाई से कुछ पूर्व किसी समझौते तक पहुँचने का एक और प्रत्यन किया। उसने साध ु स्वभाव मुल्ला और मुहम्मद परघरी को शेरखाँ के पास वैर-विरोध त्याग देने के लिए समझाने-बुझाने के लिए भेजा। शेरखाँ ने भी अपनी ओर से वैसे ही साधु स्वभाव के एक व्यक्ति शेख खलील को सन्धि शर्ते तय करने के लिए मुगल शिविर में भेजा। हुमायूँ इस अफगान-दूत से बहुत अधिक प्रभावित हुआ और अपनी ओर से भी सन्धि शर्ते तय करने का कार्य उसी को सौंप दिया। जब शेख ने शेरखाँ को मुगल सम्राट से हुई अपनी बातचीतो का आशय बताया, तो उसने (शेरखाँ ने) बड़ी नीतिज्ञता से उसके सम्मुख यह बात रखकर उसकी राय जाननी चाही कि क्या अफगानों को अपने स्वत्व रक्षा के लिए लड़ना चाहिए अथवा मुगलों से सुलह कर लेनी चाहिए? शेख खलील ने अपनी राज्य प्रकट की कि उन्हें लड़ना चाहिए। शेरखाँ तो यही चाहता था। शेख ने अपनी पूरी बात खत्म भी न की थी कि शेरखाँ ने घोषणा कर दी कि सन्धि-वार्ताएं समाप्त हो गयी।[31]

जैसे ही वर्षा आरम्भ हुई, शेरखाँ ने युद्ध के लिए तैयारियाँ शुरू कर दी। मुगल शिविर में, जो गंगा और कर्मनासा नदियों के मध्य एक नीचे स्थल पर स्थित था, बाढ़ का पानी आ गया, जिससे मुगलों को बड़े संकट

और घोर अव्यवस्था का सामना करना पड़ा। 25 जून, 1539 ई0 को शेरखाँ ने अपनी फौजों को तैयार होने की आज्ञा दी, किन्तु निकट में बिहार के शाहाबाद जिले के अन्तर्गत आदिवासियों के सरदार महारथ चैरों पर आक्रमण करने जाने का बहाना किया। इस समाचार को सत्य मानकर मुगल बेखबर हो गये। शेरखाँ वस्तुतः चैरो के प्रदेश की ओर चल पड़ा, किन्तु आधी रातके बाद वह लौट पड़ा और सोते हुए मुगलों के उपर यकायक उसने आक्रमण बोल दिया। अफगान फौज ने, जो क्रमशः शेरखाँ और उसके लड़के जलालखाँ से मुगलों पर आक्रमण करना शुरू कर दिया। ये लोग (मुगल) भयभीत हो गये। शोरगुल सुनकर हुमायूँ जाग पड़ा और घोड़े पर चढ़कर अपने सैनिकों को एकत्र करने लगा, किन्तु उसके अधिकांश सैनिक अपने-अपने प्राणों की रक्षा के लिए तितर-बितर होकर भाग खड़े हुए थे। हुमायूँ अपने खेमे तक भी पहुँचने में असमर्थ रहा, लेकिन कुछ विश्वासपात्र अनुयायियों की सहायता से इस संकट क्षेत्र से बाहर निकल आया।

बंगाल और बिहार का राजा शेरखाँ (1529-40 ई0)

चौसा की विजय से शेरखाँ एक प्रकार से बंगाल और बिहार का राजा बन गया था, सिर्फ गौड़ के दुर्ग से दुर्गरक्षकों को निकालकर बाहर करना था, जिन्हें हुमायूँ अपने पीछे छोड़ आया था। इतने विस्तृत प्रदेश पर अपना अधिकार जमाकर भी शेरखाँ अभी साधारण व्यक्ति की हैसियत में था। राजा बनने का अभी उसे कानूनी दर्जा प्राप्त नहीं था। इसलिए अपने आदमियों की अधिक स्वामिभक्ति प्राप्त करने के विचार से राज्याभिषेक की रस्म को शीघ्र पूरा करना उसके लिए आवश्यक था और यही उसकी स्थिति को बढ़ाने के

साथ-साथ उसे देश के अन्य शासकों के समकक्ष बिठा सकता था। शेरखाँ यह भुला नहीं था कि योग्यता और सफलता के होते हुए भी किस प्रकार वह दो बार दुत्कार दिया गया था और लगभग सभी अफगान महमूद लोदी जैसे निकम्मे व्यक्ति के झण्डे के नीचे इसलिए चले गये थे कि वह बहलोल लोदी का वंशज था और अपने भाई इब्राहीम लोदी की मृत्यु के पश्चात उसने सुल्तान की उपाधि धारण कर ली थी। इसलिए उसने भी यथार्थ रूप से तथा नाम से भी राजा बनने का निश्चय कर लिया। लेकिन अपने अफगान अनुयायियों की प्रजासत्तात्मक मनोवृत्ति को ध्यान में रखकर वह बड़ी सावध ानी से इस ओर कदम उठाना चाहता था। इस महान विजय के तुरन्त बाद अफगान सरदारों की एक सभा में 'फतहनामा' लिखने का प्रस्ताव रखा गया।[32] इस पर शेरखाँ ने बड़ी चतुराई से यह विचार प्रकट किया कि फतहनामे तो किसी राजा के नाम से ही लिखे जा सकते हैं। इस पर अपने सरदार की मनोगत इच्छा को समझते हुए मसनदेआली ईसाखाँ ने प्रस्ताव रखा कि उनके नेता शेरखाँ को ही राजा की उपाधि धारण कर लेनी चाहिए। इस प्रस्ताव का अनुमोदन आजम हुमायूँ सरवानी और बिब्बन लोदी ने किया। अन्य उपस्थित सरदारों ने भी इस प्रस्ताव का सहर्ष स्वागत किया। अफगान सैनिक-दल ने तो यह आग्रह किया कि राज्याभिषेक का उत्सव शीघ्र से शीघ्र होना चाहिए। इस पर शेरखाँ ने 'ज्योतिषियों को कोई शुभ घड़ी निश्चित करने की आज्ञा दी।" राज्याभिषेक का उत्सव साधारण था। शेरखाँ एक सिंहासन पर विराजमान हुआ और एक शाही छत्र उसके उपर रखा गया। उसने शेरशाह की उपाधि धारण की और उसी के नाम के सिक्के ढ़ाले गये और उसके नाम

का खुतबा पढ़ा गया। इस सस्कार के पश्चात फतहनामे लिखे गये और उन्हें राज्य के विभिन्न भागों में भेज दिया गया।

राज्याभिषेक संस्कार (जो चौसा में उत्पन्न हुआ जान पड़ता है) के तुरन्त बाद ही शेरशाह ने एक फौज इसलिए गौड़ भेजी कि वहाँ जाकर वह दुर्ग के मुगल रक्षकों को निकाल बाहर करे। इस सेना ने जहाँगीर कुलीबेगखाँ को पराजित किया और उसके अन्य साथियों के साथ उसे मौत के घाट उतार दिय गया। सम्पूर्ण बंगाल अब शेरशाह के हाथ आ गया। उसके पश्चात कन्नौज और कालपी तक भी, जो चौसा की लड़ाई से पूर्व ही अधिकृत हो चुके थे, रक्षकों को नियुक्त करने का प्रबन्ध किया गया।[33] नये राजा ने शान्ति और न्याय-व्यवस्था तथा लगान वसूली के लिए अधिकारियों की नियुक्ति कर जीते हुए प्रदेशों को सुव्यवस्थित करने की चेष्टा की।

एक नये राज्य की स्थापना और सुव्यवस्था के साथ शेरशाह ने हुमायूँ का पीछा करने के लिए भी कदम उठाये। यह स्मरण रखने योग्य है कि हुमायूँ के हराम की बहुत-सी महिलाएँ चौसा की लड़ाई में शेरशाह के हाथ लगी थी। उसने उन महिलाओं के आराम और उनकी रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर दिया था। अपने राज्याभिषेक संस्कार के पश्चात उसने इन महिलाओं को रक्षक-दल के साथ हुमायूँ के पास भिजवा दिया। हुमायूँ का पीछा निरूत्साह से किया गया। यदि शेरशाह ने भागते हुमायूँ का अच्छी तरह पीछा किया होता तो वह इस तरह सुरक्षित आगरा नहीं पहुँच सकता था। लेकिन शेरशाह ने मालवा और गुजरात के शासकों के पास यह सन्देश अवश्य भेजा कि हुमायूँ को शरण न दें और यदि वे उस पर आक्रमण करना चाहेंगे

तो ''मैं मदद करूँगा।'' गुजरात की ओर से कोई उत्तर नहीं मिला क्योंकि वह अभी हाल की अव्यवस्था से ही नहीं उभर सका था। लेकिन मालवा के मल्लूखाँ ने, जो कादिरशाह की उपाधि धारण कर राजा बन बैठा था, सन्तोषजनक उत्तर भेजा।

कन्नौज अथवा बिलग्राम की लड़ाई (17मई, 1540 ई0)

इसी बीच में चौसा से भागकर अनेक कष्टों को झेलते हुए हुमायूँ आगरा पहुँच गया था और यहाँ उसने अपने भाइयों से सलाह-मशविरा किया था, किन्तु वे लोग किसी एक बात पर निश्चित नहीं हो सके थे। अनेक कठिनाइयों के होते हुए भी हुमायूँ ने एक नयी फौज का संगठन कर लिया था, जिससे शेरशाह को जो आगरे की ओर तेजी से बढ़ा आ रहा था, रोका जा सके। शेरशाह ने अपने लड़के कुतुबखाँ को मांडू में कादिरशाह के पास इस उद्देश्य से भेजा कि वह उसके पास जाकर उसे सहयोग देने के लिए राजी करे और उधर से पीछे की ओर से हुमायूँ पर हमला कर दे। हुमायूँ को जब यह बात मालूम हुई तो उसने असकरी और हिन्दाल को कुतुबखाँ के विरूद्ध भेजा। जिससे वे उसे कादिरशाह से सांठ-गांठ करने से पहले ही घेर लें। कादिरशाह ने कुतुबखाँ से आ मिलने का कोई प्रयत्न नहीं किया और वह (कुतुबखाँ) कालपी के निकट मुगल फौजों द्वारा पराजित हुआ और मार डाला गया। असकरी और हिन्दाल हुमायूँ से आ मिलने के लिए वापस लौट आये। हुमायूँ शेरशाह से मुकाबला करने के लिए कन्नौज की ओर रवाना हुआ। शेरखाँ वहाँ पहले ही पहुँचकर नदी के पूरबी किनारे पर अपना शिविर स्थापित कर चुका था। मुगल सेना की संख्या दो लाख बतायी जाती है, किन्तु असली

लड़ने वालों की संख्या चालीस हजार थी।

मिर्जा हैदर के अनुसार शेरशाह की सैनिक-संख्या पन्द्रह हजार रही होगी। कुछ कारण ऐसे हैं जिनसे विश्वास किया जा सकता है कि अफगान सेना की संख्या हुमायूँ की सैनिक-संख्या से कम नहीं रही होगी। दोनों विपक्षी दल एक-दूसरे के सामने पड़े रहे किन्तु दोनों में से एक ने भी युद्ध की कार्यवाही प्रारम्भ नहीं की। शेरशाह ने चौसा की लड़ाई की तरह अपने शत्रु पर बरसात आरम्भ होते ही यकायक आक्रमण कर देने की योजना बनायी। यह योजना सफल हुई। जब बरसात से तंग आकर मुगल सैनिक अपने खेमों को किसी अच्छे स्थान पर हटाने में लगे हुए थे तब उसने 17 मई को उन पर आक्रमण कर दिया और उन्हें तोपखाने का प्रयोग करने से सफलतापूर्वक वंचित कर दिया।[34] मिर्जा हैदर द्वारा मुगल फौज को इस आक्रमण से मोर्चा लेने का प्रयत्न करने पर भी हुमायूँ ने सरलता से हार मान ली और वह आगरा भाग आया।

हिन्दुस्तान का राजा (1540-1545 ई0)

हुमायूँ का पीछा किया जाना

इस महान विजय के पश्चात शेरशाह ने नदी पार की और कन्नौज पर अधिकार कर लिया। यहीं से उसने बरमजीद गौड़ को हुमायूँ का पीछा करने और उसे देश से निकाल बाहर करने के लिए भेजा, किन्तु उसे युद्ध में संलग्न करने के लिए आज्ञा नहीं दी गयी थी। एक अन्य फौज ग्वालियर पर घेरा डालने के लिए भेजी गयी और कुछ सैनिक-दल सम्भल और गंगा के उत्तर में स्थित प्रदेश का जीतने के लिए भेजे गये। बरमजीद

ने हुमायूँ का आगरे तक पीछा किया और यहाँ पहुँचकर उसने बहुत से मुगलों को तलवार के घाट उतार दिया। विजित प्रदेशों को व्यवस्थित करने के पश्चात और हुमायूँ के वहाँ से भाग जाने के कुछ दिनों बाद जब शेरशाह आगरे पहुँचा, तो उसने बरमजीद की उसके नृशंस कृत्यों के लिए भर्त्सना की और सदासखाँ को हुमायूँ का पीछा करने के लिए भेजा। जब तक हुमायूँ लाहौर पहुँचा, उसका पीछा करने वाले अफगान सुल्तानपुर आ पहुँचे थे (जुलाई 1540 ई0)। वर्षा आरम्भ हो जाने के कारण खदासखाँ को इसी स्थान पर लगभग तीन महीने ठहरना पड़ा। इसी बीच में शेरशाह ने दिल्ली में प्रवेश किया और यहाँ की शासन-व्यवस्था ठीक करने का उचित प्रबन्ध किया। यहाँ से वह पंजाब की सरहद तक भागते हुए मुगल सम्राट की गतिविधियों को निकट से देखने-समझने हेतु पहुँच गया।

लाहौर में पहुँचकर हुमायूँ को पूरे तीन महीने का सुविधाजनक समय मिला किन्तु फिर भी अपने भाइयों को संगठित करने एवं अफगानों के विरूद्ध एक सुदृढ़ मोर्चा स्थापित करने में वह असफल सिद्ध हुआ। कामरान का सोचना था कि यदि उसने हुमायूँ को पंजाब में स्थायी रूप से रूक जाने दिया तो अन्त में काबुल और कन्धार उसके हाथों से निकट जायेंगे। इसलिए उसने शेरशाह से इस मिथ्या धारणा पर कि पंजाब को उसी को (शेरशाह को) सौंप देना सुरक्षित रहेगा, बातचीतें चलायी। अफगानों ने अक्तूबर 1540 ई0 के तीसरे सप्ताह में सुल्तानपुर के समीप नदी पार कर ली, तो हुमायूँ को लाहौर से भी हटना पड़ा। झेलम के किनारे खुशाब नामक स्थान पर हुमायूँ और कामरान के मध्य झगड़ा होता दिखायी दिया क्योंकि वह (कामरान) उसे

अफगानिस्तान में होकर गुजरने नहीं देना चाहता था। इस स्थान से हुमायूँ ने सिन्ध की ओर का रास्ता पकड़ा और कामरान भी पंजाब छोड़कर काबुल चल दिया। जिस घड़ी हुमायूँ ने हिन्दुस्तान की सीमा छोड़ दी, खवासखाँ ने भी उसका पीछा करना छोड़ दिया और झेलम नदी के पश्चिमी किनारे पर रूक गया। इस समय तक शेरशाह, जो सरहिन्द से ही अपेन सैनिकों का संचालन कर रहा था, लाहौर आ पहुँचा। और यहाँ अधिक समय तक न रूककर चिनाब की ओर चल पड़ा और खुशाब आ पहुँचा। यहाँ से उसने दो दल-एक खवासखाँ के नेतृत्व में और दूसरा कुतुबखाँ के नेतृत्व में- मुगलों का पीछा करते हुए राज्य की सीमा से उन्हें निकाल बाहर करने के लिए भेजा।[35] खवासखाँ ने उच्छ के पश्चिम में पंचनद नदी तक हुमायूँ का पीछा किया और उसे खदेड़ दिया। यहाँ से वह शेरशाह के पास खुशाब लौट आया।

गक्खर प्रदेश की विजय

शेरशाह कुछ महीने खुशाब में ही ठहरा रहा और इस्लामखाँ, फतेहखाँ, गाजीखाँ जैसे बलोच सरदारों तथा चिनाब और सिन्धु नदी के प्रदेशों को विजय करने के बाद वह गक्खर को जो झेलम और सिन्धु नदी के उत्तर में स्थित एक पहाड़ी प्रदेश पर अधिकार करना आवशयक था क्योंकि इसकी स्थिति बड़ी ही महत्वपूर्ण थी। शेरशाह ने इस पहाड़ी प्रदेश का दौरा किया और गक्खर सरदारों पर चढ़ाई कर दी। इनके प्रदेश को उसने बुरी तरह रौंद तो दिया किन्तु उन्हें पूरी तरह अपने काबू में नहीं कर पाया। इनके कुछ सरदारों, विशेषकर रायसारांग गक्खर ने उसकी सत्ता स्वीकार करने से इनकार कर दिया और उसके शत्रु बने रहे। अफगान बादशाह ने वहाँ एक किला

बनवाया निश्चित किया, जिससे वहाँ उत्तरी सीमा की रक्षा और गक्खरों की रोकथाम कर सके। झेलम कस्बे के 10 मील उत्तर की ओर पहाड़ों में उसने एक स्थान पसन्द किया और यहाँ एक विशाल दुर्ग बनवाया, जिसका नाम बिहार के विशाल दुर्ग के नाम पर रोहतास रखा। हैबतखाँ नियाजी और खवासखाँ जैसे श्रेष्ठ सेनापतियों के नेतृत्व में उसने इस दुर्ग में 50,000 अफगान सैनिकों को दुर्गरक्षकों के रूप में तैनात किया। कांची नामक चक्क का समर्थन करके उसने कश्मीर से मिर्जा हैदर को हटाने का भी प्रयत्न किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसी समय जब उसे यह सूचना मिली कि बंगाल के गवर्नर ने विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया है, तो गक्खरों को अपनी अधीनता में लाने का काम अपने सरदारों पर छोड़कर विद्रोही सिज्जखाँ को दबाने के लिए वह मार्च 1541 ई0 में बंगाल की ओर चल दिया।

बंगाल का नया शासन

शेरशाह की एक वर्ष से अधिक की अनुपस्थिति में बंगाल के गवर्नर खिजखाँ ने स्वतन्त्र होने के स्वप्न देखने आरम्भ कर दिये थे। उसने बंगाल के भूतपूर्व एवं स्वर्गीय सुल्तान अहमद की लड़की से इसिलए विवाह कर लिया था कि इस राजवंश के लोगों के प्रति सहानुभूति रखने वालों का उसे सहज ही सहयोग प्राप्त हो जाएगा। अब वह एक स्वतन्त्र राजा की तरह व्यवहार करने लगा। शेरशाह इन समाचारों को सुनकर चिन्तित हुआ और शीघ्रता से गौड़ की ओर खिज्रखाँ को दबाने के लिए चल पड़ा। उसने उसे बर्खास्त कर दिया और बन्दी बना लिया। ऐसे किसी भावी उपद्रव से बचने के विचार से उसने फौजी गवर्नर की नियुक्ति को समाप्त करने का निश्चय

किया और बंगाल का एक नये ढ़ंग से शासन-प्रबन्ध किया। उसने प्रान्त को कई 'सरकारें' (जिलों) में विभक्त कर दिया और प्रत्येक सरकार में 'शिकदार' की नियुक्ति की। शिकदार एक सैनिक अधिकारी था और उसके पास शान्ति और सुव्यवस्था की स्थापना के लिए छोटा सा सैनिक दल भी रहता था। शिकदारों की नियुक्ति बादशाह करता था और ये केवल उसी के प्रति उत्तरदायी थे। अधिकारियों के काम की देखभाल करने और उनके आपसी झगड़ों को निबटाने के लिए उसने काजी फजीलत नामक एक व्यक्ति को प्रान्त का प्रमुख भी नियुक्त कर दिया था।[36] इस अधिकारी के काम की देखभाल करने और उकने आपसी झगड़ों को निबटाने के लिए उसने काजी फजीलत नामक एक व्यक्ति को प्रान्तका प्रमुख भी नियुक्त कर दिया था। इस अधिकारी के हाथों में किसी शक्तिशाली सेना का काम नहीं जान पड़ता था। उसका काम तो यह देखना मात्र था कि सब जिलों में शासन-प्रबन्ध ठीक हो रहा है, सरकारी लगान नियमित रूप से केन्द्रीय कोष में भेजा जा रहा है और जिले के अधिकारी किसी षड़यन्त्र में शामिल तो नहीं है अथवा बादशाह के प्रति विद्रोह तो खड़ा नहीं कर रहे हैं। इस व्यवस्था ने ''प्रान्तीय शासन के सैनिक स्वरूप को एकदम बदल दिया और पुरानी व्यवस्था के स्थान पर एक नवीन शासन-तन्त्र की स्थापना कर दी, जो सिद्धान्त रूप से मौलिक और कार्य की दृष्टि से सुगम एवं सुविधाजनक थी।''

मालवा की विजय (1542)

बंगाल से शेरशाह आगरा लौट आया। 1542 ई0 में उसने मालवा पर चढ़ाई कर दी क्योंकि राज्य की सुरक्षा और एकता के लिए इसके उपर

अधिकार रखना आवश्यक था। मल्लूखा ने जिसने 1537 ई0 में मांडू, उज्जैन और सारंगपुर पर अपना अधिकार कर लिया था और जो कादिरशाह की उपाधि धारण कर स्वतन्त्र राजा बन बैठा था, शेरशाह से बराबरी का दावा कर बड़ा अपराध किया था। मुगलों के विरूद्ध उसके लड़के कुतुबखाँ को सहायता न देने का भी उसने वचन पूरा नहीं किया था जिससे असकरी और हिन्दाल ने 1540 ई0 में उसे घेरकर मार डाला था। इन्हीं कारणों से शेरशाह ने मालवा पर चढ़ाई करना आवश्यक समझा। ग्वालियर ने अफगान फौजों द्वारा लम्बे समय तक घेरा डाले रहने पर भी आत्मसमर्पण नहीं किया किन्तु शेरशाह के यहाँ पहुँचने पर उसे दुर्ग के गवर्नर से अधीनता स्वीकार कर लेने का समाचार मिल गया। यहाँ ये वह सारंगपुर की ओर बढ़ा। उधर कादिरशाह अफगान बादशाह की शक्ति के सामने अपने को शक्तिहीन अनुभव कर उज्जैन से चलकर सारंगपुर में शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ। अफगान बादशाह ने उसके प्रति सौजन्य-भाव प्रकट करते हुए उसका स्वागत किया और इन दोनों ने मालवा की तत्कालीन राजधानी उज्जैन मे प्रवेश किया। शेरशाह ने यहाँ पर अपना अधिकार कर लिया, कादिरशाह को लखनौति का गवर्नर नियुक्त कर दिया (एक अन्य सूत्र से लखनौती के स्थान पर कालपी का पता चलता है) किन्तु कादिरशाह अफगान बादशाह के इरादों से संशकित हो एक रात को अपने परिवार के साथ वहाँ से निकल भागा और गुजरात के महमूद तृतीय के यहाँ जाकर शरण ली। मालवा का बहुत बड़ा भाग शेरशाह ने अपने राज्य में मिला लिया और शुजातखाँ को वहाँ का गवर्नर नियुक्त कर दिया। कुछ समय पश्चात कादिरशाह ने शुजातखाँ पर आक्रमण किया; किन्तु

उसे मार भगाया गया।

उज्जैन से आगरा वापस लौटते समय शेरशाह रणथम्भौर होकर गुजरा और वहाँ के दुर्ग के अधिकारी को दुर्ग उसके हाथ में सौंप देने के लिए उसने सफलतापूर्वक राजी कर लिया। वह एक वर्ष तक आगरा में रहा और इस अवधि में अपने राज्य का शासन-प्रबन्ध व्यवस्थित करने में ही व्यस्त रहा।

रायसीन की विजय (1543)

हुमायूँ के राज्यकाल के अन्तिम दिनों में मध्य भारत की रायसीन नामक रियासत एक महत्वपूर्ण स्थिति को प्राप्त हो गयी थी। इसके राजा पूरनमल ने जो चौहान राजपूत राय सिलहदी का पुत्र था, चन्देरी पर विजय प्राप्त कर ली थी और उन बहुत से मुस्लिम परिवारों को जिसके पास काफी जमीन-जायदाद थी, उसने बेघर बार बनाकर छोड़ दिया था। 1542 ई0 में पूरनमल शेरशाह की सेवा में उपस्थित हुआ था और राजसी भेंट प्रदान कर उसका सम्मान किया गया था।[37] किन्तु अफगान बादशाह तो रायसीन की समृद्धशाली रियासत पर आँखे गड़ाये हुए था। साथ ही उसे यह सूचना भी मिली थी कि पूरनमल ने प्राचीन सामन्ती मुस्लिम परिवारों को अपने अधीन कर रखा है, उनमें से कुछ तो अत्यनत गरीब बना दिये गये हैं और उकनी महिलाएं गुलाम बनाकर नर्तकियों का पेशा अपनाने के लिए मजबूर की गयी है। इन कारणों से शेरशाह पूरनमल को सजा देना चाहता था क्योंकि उसकी दृष्टि में उसके ये कृत्य इस्लामपुर विरूद्ध घोर अपराध थे। 1543 ई0 में आगरा से चलकर मांडू और मांडू से रायसीन पहुँचा और इसे घेर लिया।

पूरनमल सम्भवत: इस संघर्ष के लिए तैयार जान पड़ता था क्योंकि घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहा। शेरशाह को इसके सिवाय कोर्ठ दूसरा मार्ग दिखायी नहीं दिया कि वह किले में रसद पहुँचाना रोक दे और दुर्गरक्षकों को भूखा मार डाले। लेकिन वहां के वीर राजपूतों ने इस पर भी आत्मसमर्पण कर दिया और उसे शेरशाह के समीप ही एक खेमें ठहरा दिया गया। कहा जाता है कि शेरशाह पहले तो अपने वचन का पालन करना चाहता था, किन्तु चन्देरी की उन मुस्लिम विधवाओं की अपील पर जिन्हें पूरनमल ने अनेक कष्ट पहुँचाये थे, उसने अपना विचार बदल दिया। लेकिन उसकी समझ में यह नहीं आ रहा था कि कुरान पर हाथ रख कर ली हुई शपथ की जिम्मेदारी से किस प्रकार पीछा छुड़ाया जाय। कट्टर काजियों ने इस मामले में उसकी सहायता की। उन्होंने बताया कि जो शपथ नहीं लेनी चाहिए थी, उसे न मानने में भी कोई हर्ज नहीं है और न ही कोई बन्धन है। मुल्ला और काजियों की इस व्यवस्था में शेरशाह के मन की बात प्रतिध्वनित हुई और उसेन पूरनमल पर आक्रमण करने का निश्चय कर लिया। उसने अपने हाथियों को आक्रमण के लिए तैयार रखा और रात में राजपूत खेमों के चारो ओर अपनी फौज के आदमियों को तैनात कर दिया। जब दिन निकला तो पूरनमल ने देखा कि उसके उपर आक्रमण की तैयारियाँ पूरी कर ली गयी हैं और हमला होने ही वाला है। इस पर उसने अपनी स्त्रियों को अपने ही हाथों से मार दिया और अपने अनुयायियों को भी अपने परिवार के व्यक्तियों को इसी तरह स्वर्गधाम पहुँचा देने का परामर्श दिया जिससे उनकी रक्षा के विचार से निर्भय और निश्चिन्त होकर वे अफगानों से डटकर लड़ें और मृत्यु का सामना करें। जिस समय

राजपूत लोग अपने जनों की हत्याओं में लगे हुए थे उसी समय अफगान उनके उपर टूट पड़ें। पूरनमल और उसकी वीर सेना ने महान साहस और वीरता का अपूर्व परिचय दिया। एक मुसलमान इतिहासकार के शब्दों में वे खाडत्री के सुअरों की तरह लड़े' लेकिन शत्रु के सामने इनकी संख्या ही कितनी थी? वे बुरी तरह पराजित हुए और उनका एक आदमी भी जीवित नहीं छोड़ा गया। जो थोड़ी सी राजपूत स्त्रियाँ और बच्चे जीवित रह गये, उन्हें गुलाम बना लिया गया। पूरनमल के विरूद्ध शेरशाह का यह विश्वासघात उसके नाम पर एक बहुत बड़ा धब्बा है।"

मुल्तान और सिन्ध का अफगान राज्य में मिलाया जाना

बंगाल में विद्रोह उठ खड़े होने पर जब शेरशाह को खुशाब से बंगाल जाना पड़ा तो पंजाब के शासन-प्रबन्ध और गक्खरों की रोकथाम के लिए वह अपने पीछे खवासखाँ और हैबतखाँ को छोड़ गया था। जब ये दोनों अधिकारी मिलकर काम नहीं कर सके तो शेरशाह ने खवासखाँ को यहाँ से हटा दिया और हैबतखाँ नियाजी को यह आदेश देते हुए प्रान्त का गवर्नर बना दिया कि वह विद्रोही सरदारों को कुचल दे और निकटवर्ती प्रदेशों को अधिकार में कर ले। नये गवर्नर को दो विद्रोही सरदारों का सामना करना पड़ा। इन विद्रोहियों में प्रथम फतेहखाँ जाट था, जिसकी लूटपाट ने दिल्ली और लाहौर का रास्ता आरक्षित बना दिया था और दूसरा विद्रोही था वरूण संग्राह, जिसने अपने आपको मुल्तान का स्वतन्त्र शासक बना लिया था।[38] हैबतखाँ ने अजोधन (पाक पट्टन) पर चढ़ाई की जो फतेहखाँ का केन्द्र स्थान था। जाट सरदार वहाँ से भाग खड़ा हुआ किन्तु एक मिट्टी के किले में उसे

घेर लिया गया। कुछ समय बाद उसे हरा दिया गया। आत्मसमर्पण करने के लिए उसे बाध्य किया गया और बन्दी बना लिया गया। इसके बाद हैबतखाँ मुल्तान की ओर बढ़ा और उसे अधिकार में कर लिया। शेरशाह इन सफल्ताओं से बहुत प्रसन्न हुआ और हैबतखाँ को पुरस्कृत किया। उसेन अपने गवर्नर को आदेश दिया कि वह मुल्तान को फिर से आबाद करने की कोशिश करे क्योंकि यहाँ से आदमी भाग गये थे, साथ ही लंगाहों की रिवाज के अनुसार जमीन की नाप-जोख न कराकर तमाम पैदावार का केवल चौथाई भाग ही लगान के रूप में वसूल करे। फतेहखाँ जाट और हिण्डू बलोच को जिन्हें बन्दी बना लिया गया था, मार दिया गया। शेरशाह ने वरूशू लंगाह और उसके लड़के को जीवित रहने दिया। उसने वरूशू लंगाह के लड़के को जमानत के रूप में रख लिया और उसे उसकी जमीन दे दी। फतेहजंगखाँ को मुल्तान का शासन सौंप दिया गया। 1541 ई0 में खुशाबू में ठहरते समय शेरशाह ने सिन्ध को अपने अधिकार में कर लिया था और इस्लामखाँ नाम के एक स्थानीय सरदार को यहाँ का शासक नियुक्त कर दिया था। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम में शेरशाह के राज्य के अन्तर्गत पंजाब प्रान्त के अतिरिक्त मुल्तान और सिन्ध भी सम्मिलित था।

मालदेव से युद्धः राजस्थान पर अधिकार

मेवाड़ के राणा सांगा की मृत्यु के पश्चात मारवाड़ के राज्य ने, जिसकी राजधानी जोधपुर थी, राजस्थान के स्वतन्त्र राज्यों में प्रथम स्थान प्राप्त कर लिया। वो 1531 ई0 में राजसिंहासन पर बैठा था, मध्य भारत का सबसे प्रमुख राजा था। एक श्रेष्ठ सैनिक और चतुर कूटनीतिज्ञ तो वह था ही; अपनी

सरकार की बागडोर संभालने के पश्चात तुरन्त ही विजय-यात्राओं पर निकल पड़ा और सोजत, नागौर, अजमेर, मेरठ, जयतरण, बिलारा, भद्रजस, मल्लानी, सिवाना, दीदवाना, पचभादरा और वाली पर विजय प्राप्त कर ली। उसने बीकानेर रियासत पर भी चढ़ाई की और इसका आधे से अधिक भाग अपने राज्य में मिला लिया। इसके बाद वह जयपुर के विरूद्ध लड़ा और जालौर, टोंक, टोडा, मलपुर तथा बहुत से अन्य स्थानों पर अधिकार कर लिया।[39] दिल्ली से लगभग तीस मील की दूरी पर बसे हुए झज्जर नाम के स्थान को भी अपने राज्य में मिलाकर उसने अपनी सीमा का और अधिक विस्तार कर लिया। एक महत्वाकांक्षी कूटनीतिज्ञ होने के कारण जून 1541 ई0 में उसने हुमायूँ के पास यह निमन्त्रण भेजा कि आप जोधपुर आइए और मेरी सहायता से दिल्ली के सिंहासन पर पुनः अधिकार प्राप्त करने का प्रयत्न कीजिए। यह निमन्त्रण भेजने में मालदेव का उद्देश्य साफ यह था कि दिल्ली के सिंहासन पर एक ऐसा राजा बैठ जाय जो उसका साथी और मित्र हो। किन्तु हुमायूँ जोधपुर के निकट इस निमन्त्रण की प्राप्ति के तेरह माह पश्चात उस समय उपस्थित हुआ जब देश की राजनीतिक स्थिति बहुत कुछ बदल चुकी थी और शेरशाह उत्तरी भारत के अधिकांश भाग पर अधिकार कर अपेन को संगठित कर चुका था।

कुछ राजपूत सरदार मुख्य रूप से बीकानेर के राव कल्याणमल, जो मालदेव द्वारा पराजित और प्रताड़ित हुए थे, शेरशाह से आ मिले थे और मारवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए जोर डाल रहे थे। फलतः शेरशाह ने मालदेव को लिखा कि वह हुमायूँ को जिसे स्वयं उसी ने निमन्त्रण देकर

बुलाया था, गिरफ्तार कर लेने के अप्रिय उत्तरदायित्व से संघर्ष कर रही थी। दूसरी ओर शेरशाह, जिसने सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर अपनी सर्वोच्च सत्ता स्थापित करने के लिए अपनी शक्ति का बहुत अधिक विकास कर लिया था, राजस्थान के सरदारों को अपने अधीन होने और राजस्व देने के लिए राजी कर रहा था। इसके अतिरिक्त मालदेव के राजपूत शत्रु मारवाड़ पर चढ़ाई करने के लिए उस पर दबाव डाल रहें थे। ऐसी विकट परिस्थितियों में मारवाड़ के शासक ने शक्तिशाली शेरशाह को नाराज न करने के विचार से तटस्थ रहना ही उचित समझा। जब हुमायूँ जोधपुर से लगभग 60 मील की दूरी पर स्थित फालौदी नामक स्थान तक आ पहुँचा, तो मालदेव ने उसके पास सत्कारस्वरूप कुछ फल भेजे किन्तु सैनिक सहायता का कोई निश्चित वचन नहीं दिया। हुमायूँ ने अपने विश्वासपात्र दूतों को जोधपुर भेजा कि वे जाकर मालदेव में ही हूमायूँ के दूतों में से एक शम्सुद्दीन अतकाखाँ ने शेरशाह के एक दूत को देखा जिससे उसे किसी भावी विश्वासघात और षड्यन्त्र की आशंका हो उठी। इस आशंका की पुष्टि अन्य दूतों ने भी की। फलतः हुमायूँ को अगस्त 1542 ई0 में सिन्ध की ओर हटना पड़ा। रास्ते में राठौर सैनिक-दलों ने उसे काफी कष्ट पहुँचाया।

शेरशाह मालदेव के व्यवहार से सन्तुष्ट नहीं था, वह तो उससे अभिन्न मैत्रीभाव और अधीनता चाहता था और इन सब के ऊपर वह मालदेव से यह भी चाहता था कि वह हुमायूँ को गिरफ्तार करके उसके (शेरशाह) हाथों में सौंप दे। दूसरे, मानदेव जैसे शक्तिशाली शासक का होना, जिसके राज्य में नागौर और अजमेर (जो पहले दिल्ली सल्तनत के भाग थे) ही नहीं

वरन् दिल्ली से 30 मील की दूरी पर स्थित झज्जर नामक स्थान तक आ गया था, अफगान बादशाह के लिए चिन्ता विषय था। मारवाड़ का राज्य स्व्यं उसके लिए एक बड़ा खतरा सिद्ध होने की सम्भावना थी। शेरशाह और मालदेव में युद्ध छिड़ना अवश्यम्भावी था। शेरशाह ने जो मारवाड़ की ओर हुमायूँ के जाने के समय में मालदेव से अपना हमेशा के लिए मामला तय करने को तैयार नहीं था, अब उसे आतंकित करने की नीति अपनायी। उसेन अपनी फौज को अगस्त 1542 ई0 तक तैयार करने की आज्ञा दे दी ताकि मारवाड़ की सीमा पर उनका जमाव किया जाय। शेरशाह की इस गतिविधि के कारण ही मालदेव को हुमायूँ को मारवाड़ के बाहर भगाने के लिए राजपूत फौजों की नियुक्ति के लिए बाध्य होना पड़ा था। 1543 ई0 के अन्त में जब शेरशाह रायसीन के अभियान से छुट्टी पा चुका तो उसने मारवाड़-विजय का निश्चय किया और 80,000 सैनिकों को लेकर मालदेव पर चढ़ाई कर दी। इतनी विशाल और शानदार सेना को वह पहली बार युद्ध क्षेत्र में ले गया था। आगरा से चलकर वह दीदवाना पहुँचा और वहाँ से जोधपुर रवाना हुआ। उसका विचार था कि मालदेव के अजमेर से लौटकर वापस आने से पहले ही उसकी राजधानी पर चढ़ाई कर दे। मालदेव के राज्य में पहुँचने पर उसने यह सावधानी बरती कि पड़ाव के किसी भी स्थान पर अपने शिविर को सुरक्षित करने के लिए वह उसके आसपास बालू के बारे चिनवा देता था। जब वह जोधपुर से 70 मील उत्तर-पूरब में और अजमेर से 42 मील पश्चिम में स्थित मेरठा नामक स्थान पर पहुँच गया तो मालदेव को बड़ी घबराहट हुई और 40,000 की फौज लेकर अपनी राजधानी को बचाने और शत्रु से

टक्कर लेने के लिए चल पड़ा।[40] दोनों ओर की सेनाएँ एक-दूसरे का सामना किये हुए जयतरण के समीप सुमेल नामक गाँव पर एक माह तक पड़ी रही। शेरशाह को बड़े संकट का सामना करना पड़ा क्योंकि वह अपनी फौजों के लिए रसद-सामग्री और घोड़ों के लिए दाना-चारा भी कठिनाई से एकत्र कर पाता था। मालदेव के हाथों में फँसा हुआ शेरशाह इस समय किंकर्तव्यविमूढ़ बना हुआ था। ऐसी विकट स्थिति से निकलने के लिए उसने एक चाल चली। मालदेव के साथी सरदारों के नाम से अपने लिये इस आशय के जाली पत्र लिखवाकर कि वे राठौर राजा को गिरफ्तार करने का वचन देते हैं और इन पत्रों को 'खरीता' में बन्द करवाकर मालदेव के वकील ने इस खरीते को उठा लिया और अपने स्वामी के पास पहुँचाया। मालदेव इन्हें देखकर भौंचका रह गया और अपने ही सरदारों द्वारा इस प्रकार विश्वासघात किये जाने की आशंका में उसने शेरशाह से युद्ध करने का विचार त्याग देने का निश्चय कर लिया। उधर जब राजपूत सरदारों ने मालदेव के युद्ध न करने के निश्चय को और उन्हें अपना विश्वासघाती समझ बैठने की उसकी धारणा को जाना तो जायता और कुम्पा तथा इन दोनों के साथ कुछ अन्य सरदारों ने राठौर-सेना से अपने आपको पृथक कर लिया और 12,000 अनुयायियों को लेकर ये लोग अफगानों पर टूट पड़े, जिससे उनके उपर से विश्वासघाती समझे जाने का कलंक धुल सके। इन्होंने जी तोड़कर लड़ना आरम्भ किया और शत्रु-पक्ष के बीचोंबीच तक मारते-काटते-पहुँच गये; किन्तु अपने से अधिक शत्रु-सेना से कहाँ तक लड़ते? ये लोग हार गये और इनका एक-एक आदमी लड़ते-लड़ते कट गया।

मालदेव के सामने सत्य प्रकट हो गया लेकिन अब तक काफी देर हो चुकी थी; उसकी सेना तितर-बितर हो गयी थी। यह सब होने पर भी शेरशाह, जिसे मारवाड़-विजय के इस अभियान में काफी हानि उठानी पड़ी थी, राठौर राजपूतों की महान वीरता और उनके श्रेष्ठ पराक्रम से काफी प्रभावित हुआ। उसे यह कहना पड़ा कि एक मुट्ठी भर बाजरे के लिए वह करीब-करीब हिन्दुस्तान का साम्राज्य ही खो बैठा था। क्योंकि मालदेव वहाँ से जाधपुर हट गया था और वहाँ से वह गुजरात की सीमा पर सिवाना चला गया था, अतः अफगान बादशाह ने अजमेर से आबु तक उसका राज्य-प्रदेश अपन अधिकार में कर लिया। मारवाड़ को व्यवस्थित करने का कार्य खवासखाँ और ईसाखाँ नियाजी को सौंपकर शेरशाह के अधिकार में नहीं रह सका। उसकी मृत्यु के दो महीने के भीतर ही सिवाना से मालदेव लौट आया और अफगान गवर्नर को मार भगाया तथा अपने राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया (जुलाई 1545 ई0)।

मेवाड़ अधिकृत करने में शेरशाह को कोई कठनाई नहीं हुई। किसी समय सिसौदिया राज्य राजस्थान में एक प्रमुख राज्य था किन्तु राणा सांगा की मृत्यु के बाद उसकी स्थिति अत्यन्त साधारण हो गयी थी। इस समय वह अपने इतिहास के अन्धकार में होकर गुजर रहा था।[41] बनवीर नाम के एक व्यक्ति ने विक्रमाजीत की हत्या करने के पश्चात सिंहासन हथिया लिया था और अब वह शिशु-राजकुमार उदयसिंह (राणा प्रताप के पिता) को समाप्त करने की योजना बना रहा था। किन्तु शिशु-राजा उदयसिंह के किसी प्रकार बच जाने और 1542 ई0 में राज्यारोहण के पश्चात जो अव्यवस्था और

अराजकता फैली हुई थी, उनके दुष्प्रभावों से मेवाड़ अभी तक मुक्त नहीं हो पाया था।

अफगानों से सामना करने की स्थिति में न होकर दरबारियों ने उदयसिंह की ओर से चित्तौड़गढ़ की कुंजी शेरशाह के पास भेज दी। शेरशाह ने खवासखाँ के भाई शम्सखाँ को चित्तौड़ का उत्तरदायित्व सौंप दिया और जहाजपुर पर भी अपना अधिकार कर लिया। इसके पश्चात उसने रणथम्भौर पर अधिकार किया और अपने लड़के आदिलखाँ को यहाँ का गवर्नर नियुक्त कर दिया। इस प्रकार जैसलमेर और बीकानेर को छोड़कर राजस्थान का अधिकांश भाग उसकी राजसत्ता के अधीन हो गया। उसने यह बड़ी बुद्धिमानी का काम किया कि राजपूत राजाओं को नितान्त परवश न बनाकर उनके राज्यों पर उन्हीं का अधिकार रहने दिया। राजस्थान के राजाओं के साथ बरती गयी शेरशाह की इस नीति के बारे में डॉ0 कानूनगो ने लिखा है ''शेरशाह ने हिन्दुस्तान के अन्य भागों की तरह राजस्थान में स्थानीय राजाओं और शासकों को उनके स्थानों में विस्थापित करने और उन्हें नितान्त परवश बनाने की चेष्टा नहीं की। ऐसा करना उसने खतरनाक और निरर्थक समझा। उसने इन राजाओं की स्वतन्त्रता को बिलकुल समाप्त कर देने की चेष्टा नहीं की, बल्कि कोशिश यह कि कि इन राज्यों और रियासतों का राजनीतिक और भौगोलिक पृथक्कीकरण ही रहे, जिससे ये अफगान सत्ता के विरूद्ध संगठित होकर विद्रोह के लिए खड़े न हो जाएं। संक्षेप में, यह सत्ताधिकार की तरह था, जिससे मिलने-मिलाने को कुछ नहीं रखा था, किन्तु भारतीय साम्राज्य की सुरक्षा के लिए जरूरी था।'' इसलिए शेरशाह ने प्रमुख महत्व पूर्ण स्थान पर

अपनी चौकियाँ स्थापित की और यहाँ से राजस्थान के अन्य स्थानों से मिलने वाले आवागमन के मार्गो पर कड़ा नियन्त्रण रखां अजमेर, जोधपुर, माउण्ट आबू और चित्तौड़ के दुर्गो की किलेबन्दी की गयी और इन्हें अफगान सैनिक-दलों के अधिकार में छोड़ दिया गया।

<u>बुन्देलखण्ड-विजय : शेरशाह की मृत्यु (1545 ई0)</u>

राजस्थान के अभियान की सफल समाप्ति के पश्चात शेरशाह कालिंजर की ओर चल दिया। रीवा का राजा वीरभान बघेला, जिसे दरबार में बुलाया गया था, कालिंजर के राजा कीरतसिंह के यहाँ शरण पाने के लिए चला गया था। शेरशाह ने कालिंजर के राजा से प्रार्थना की थी कि राजा वीरभान को उसे सौंप दिया जाय किन्तु उसकी यह प्रार्थना ठुकरा दी गयी, जिससे जिससे अफगान बादशाह को उसके विरूद्ध कार्यवाही करने का अवसर प्राप्त हुआ। उसे (कालिंजर के राजा को) सजा देने के लिए शेरशाह कालिंजर की ओर तेजी से बढ़ा और नवम्बर 1544 ई0 में दुर्ग पर घेरा डाल दिया। सभी सम्भव उपाय करने के बावजूद दुर्ग पर उसका अधिकार नहीं हुआ और घेरा लगभग एक वर्ष तक पड़ा रहा। अन्त में दुर्ग की दीवारों को गोला-बारूद से उड़ा देने के सिवाय शेरशाह को कोई अन्य मार्ग दिखायी नहीं दिया। फलतः बारूद का जाल बिछाने और गोलाबारी करने के लिए बुर्ज बनाने की आज्ञाएं जारी कर दी गयी। इसके साथ ही आक्रमण करने वालों के बचाव के लिए 'साबत' (ढ़की हुई नालियाँ) तैयार कराने की भी व्यवस्था की गयी। शीघ्र ही इनका निर्माण हो गया और बुर्ज इतना ऊँचा बना कि यहाँ से दुर्ग का भीतरी भाग स्पष्ट दिखायी देता था। 22 मई, 1545 ई0 को शेरशाह ने

दुर्ग पर आक्रमण करने की आज्ञा दे दी और स्वयं आक्रमणकारियों के आगे बढ़ा। वह बुर्ज पर चढ़ गया और अपने आदमियों को बारूद के पलीते लाने के लिए आज्ञा दी, जिन्हें दुर्ग के अन्दर फेंका जाय। इन पलीतों को जब फेंका गया तो इनमें से एक नगर द्वार से टकराकर फटा और लौटकर गोला-बारूद की ढ़ेरी में, जो शेरशाह के खड़े होने के स्थान के नीचे थी, आ गिरा, जिससे भयंकर विस्फोट हुआ और शेरशाह बहुत बुरी तरह जल गया। शीघ्र ही उसे उसके खेमे में ले जाया गया किन्तु उसने अपने आदमियों को आक्रमण जारी रखने की आज्ञा दी। आक्रमण सफल हुआ और दिन छिपने तक कालिंजर का दुर्ग अफगानों के अधिकार में आ गया। जब दुर्ग पर अधिकार होने और दुर्गरक्षकों के कत्लेआम का समाचार शेरशाह को सुनाया गया तो 'प्रसन्नता और सन्तोष के चिन्ह उसके चेहरे पर प्रकट होने लगे।'' इसके तुरन्त बाद ही वह मर गया (22 मई, 1545 ई0)

शासन-प्रबन्ध

शेरशाह व्यवस्था-सुधारक था, व्यवस्था-प्रवर्तक नहीं

शेरशाह का शासन-प्रबन्ध बहुत दिनों से वाद-विवाद का विषय बना हुआ है। आज से लगभग 35 वर्ष पहले मध्यकालीन भारतीय इतिहास के अध्येता शेरशाह को मुख्य रूप से एक सैनिक और गौण रूप से साधारण योग्यता का शासन-प्रबन्धक मानते थे। यद्यपि 1854 ई0 में इतिहासकार ऐस्किन ने अपनी "History of India under the First Two Sovereingns of the House of Timur, Vol. II" नामक पुस्तक में यह लिखा था कि शेरशाह में एक सफल सैनिक-शौर्यवीर की अपेक्षा शासन-व्यवस्थापक और प्रजापालक के गुण कहीं

अधिक विद्यमान थे, तो भी इतिहास के विद्यार्थियों ने उसके बारे में अपनी राय तब तक पूरी तरह नहीं बदली जब तक कि डॉ0 कालिकारंजन कानूनगो ने अपनी विद्वत्तापूर्ण पुस्तक द्वारा इस अफगान शासक के बारे में पूर्व-सिद्धान्तों को एकदम मिलाकर यह नवीन सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया कि वह अकबर महान से अधिक रचनात्मक प्रतिभासम्पन्न व्यक्ति और उससे बड़ा राष्ट्र-निर्माता था। वर्तमान शताब्दी के तृतीय दशक में शेरशाह के सम्बन्ध में पूर्व-विचारधाराओं के प्रति प्रतिक्रिया हुई और डॉ0 रामप्रसाद त्रिपाठी तथा डॉ0 परमात्मा सरन जैसे इतिहास के विद्वानों ने शेरशाह की शासन संस्थाओं का अच्छी तरह परीक्षण कर यह राय प्रकट की कि उसके (शेरशाह के) दृष्टत्वों को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर लिखा गया है और वास्तव में वह एक व्यवस्था सुधारक था, मौलिक व्यवस्थापक नहीं था। इतिहास के विद्वानों और विद्यार्थियों के पूर्व-मान्यताप्राप्त मत अब इसी सुनिश्चित तथ्य पर आ गये हैं कि शेरशाह मध्यकालीन भारत के महान शासन-प्रबन्धकों में से एक था। नयी शासन-संस्थाओं को उसने जन्म नहीं दिया, उसने तो पुरानी संस्थाओं को नये रूप ही दिये थे और इस कार्य में उसने इतनी सफलता प्राप्त की कि मध्यकालीन भारतीय शासन-व्यवस्था का लगभग सारा रूप ही बदल दिया और इस जनता के हित-साधन में नियोजित किया।[42] उसने किन्हीं नये विभागों की सृष्टि नहीं की, उसके प्रबन्ध विभाग और उप-विभाग प्राचीन व्यवस्था पर ही आधारित थे और इसी तरह उसके अधिकारियों के पदों और उपाधियों के नाम भी प्राचीनकाल से लिये गये थे। उसके सेना सम्बन्धी सुधार अलाउद्दीन खलजी द्वारा स्थापित व्यवस्था पर आधारित थे। उसके लगान सम्बन्धी सुधार तक

नितान्त मौलिक नहीं कहे जा सकते। किन्तु सबसे बड़ी सफलता तो उसकी यही थी कि उसने इन प्राचीन साधन-संस्थाओं में नवीन सुधार-संस्कार कर उन्हें लोक-कल्याण का महत्वपूर्ण साधन बना दिया।

उसके साम्राज्य का विस्तार

दिल्ली विजय करने से पूर्व शेरशाह ने बंगाल और बिहार के प्रान्त अपने अधिकार में कर लिये थे। हुमायूँ पर अन्तिम रूप से विजय प्राप्त करने के कुछ ही वर्षो के अन्दर उसके साम्राज्य के अन्तर्गत आसाम, काश्मीर और गुजरात को छोड़कर सम्पूर्ण उत्तरी भारत आ गया था। यह पूरब में सोनारगाँव (जो अब पूरबी बंगाल में है) तक और पश्चिम में गक्खर प्रदेश तक फैला हुआ था। उत्तर में हिमालय प्रर्वत और दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत तक यह सीमित था। उसके साम्राज्य में सिन्धु नदी, मुल्तान और सिन्ध तक पंजाब का अधिकांश भाग सम्मिलित था। दक्षिण की ओर जेसलमेर को छोड़कर राजस्थान, मालवा और बुन्देलखण्ड को साम्राजय में मिला लिया गया था। बीकानेर के कल्याणमल ने उसकी सत्ता स्वीकार कर ली थी और अपनी रियासत 1544 ई0 में मालदेव के हार जाने ने बाद उसने वापस ले ली थी। गुजरात अफगान साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया जा सका, क्योंकि शेरशाह ने उसे जीतने की कभी चेष्टा नहीं की।

केन्द्रीय शासन-प्रबन्ध

दिल्ली सल्तनत के अन्य शासकों की भांति शेरशाह भी एक निरंकुश शासक था और उसकी शक्ति एवं सत्ता अपरिमित थी। किन्तु अपने पूर्व शासकों के विपरीत वह एक प्रजावत्सल शासका था जो शासनाधिकार को

प्रजा की भलाई के लिए काम में लाता था।[43] फिर भी शासन-नीति और दीवानी तथा फौजदारी संचालन की शक्तियां उसी के हाथों में केन्द्रित थी। उसके मन्त्रिगण केवल राजकाज के दैनिक कार्यों को ही सम्पादित कर सकते थे, शासन-नीति निर्धारण करने अथवा शासन-तन्त्र में किसी प्रकार का स्वतन्त्र परिवर्तन करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं था। इतने विशाल साम्राज्य की देखभाल मन्त्रियों की सहायता के बिना एक ही व्यक्ति द्वारा मानव-शक्ति-सम्पर्क की दृष्टि से असम्भव था। इसलिए शेरशाह को भी सल्तनत काल की व्यवस्था के आधार पर चार मन्त्रि-विभाग करने पड़े थे। ये विभाग (1) दीवाने बज़ारत, (2) दीवाने आरिज (3) दीवाने रसालत, और (4) दीवाने इंशा कहलाते थे। इनके अतिरिक्त बहुत ऊँचा समझा जाता था। कुछ लेखकों ने तो इन्हें मन्त्रियो की श्रेणी में भी रखा है। इससे ज्ञात होता है कि शेरशाह के आन्तरिक केन्द्र का शासन-तन्त्र ठीक वैसा ही था जैसा दिल्ली सल्तनत के गुलाम वंश के राजाओं के काल से लेकर तुगलक वंश के राजाओं के समय में रहा।

दीवाने वज़ारत

इसके प्रमुख को वजीर ही समझना चाहिए। वह वित्त और लगान का मन्त्री था और इसलिए साम्राज्य का आय और व्यय सम्बन्धी प्रबन्ध उसी की देखरेख में होता था। इसके साथ ही अन्य मन्त्रियों के कार्य की देखभाल करने का अधिकार भी उसे प्राप्त था। मालगुजारी विभाग की कार्य-पद्धति से पूर्णरूपेण परिचित होने के कारण शेरशाह इस विभाग में विशेष दिलचस्पी रखता था। अकबर के समय के इतिहासकारों के अधिकृत

लेखे के अनुसार शेरशाह प्रतिदिन राज्य के आय और व्यय सम्बन्धी चिट्ठे को देखता था, वित्त सम्बन्धी आवश्यक बातों की पूछताछ करता था और यह जानकारी भी रखता था किपरगनों से अभी क्या लेना शेष है।

दीवाने आरिज

आरिजे ममालिक के मातहत था। इस अधिकारी को आधुनिक सेना-सचिव के समकक्ष ही समझना चाहिए। वह सेना का प्रधान सेनापति नहीं होता था, किन्तु इसकी भरती, इसके संगठन और इसके नियन्त्रण का कार्य उसी के सुपुर्द था। सैनिकों तथा सैनिक अाकारियों के वेतन-वितरण का प्रबन्ध भी उसे ही करना होता था और युद्धक्षेत्र में सेना की स्थिति की देखभाल करना भी उसे के सुपुर्द था। शेरशाह स्वयं भी सेना-विभाग में बहुत दिलचस्पी लेता था इसलिए दीवाने आरिज के काम की वह प्रायः देखभाल करता था और आवश्यकता पड़ने पर हस्तक्षेप भी करता था। तत्कालीन ऐतिहासिक वृत्त लेखकों के लेखें के अनुसार पता चलता है कि वह रंगरूटी की भरती के समय स्वयं उपस्थित रहता था, प्रत्येक सैनिक का वेतन निश्चित करता था और उनकी सुख सुविधा का ख्याल रखता था।

दीवाने मोहतसिव अथवा दीवाने रसालत

इस विभाग के मन्त्री को विदेश मन्त्री कहा जा सकता है। विदेशों से आने वाले और वहाँ भेजे जाने वाले दूत और राजदूतों से निकट सम्पर्क रखना इसका प्रमुख कर्तव्य था। कूटनीतिक पत्रव्यवहार भी इसे ही संभालना होता था और कभी-कभी दान-पुण्य का विभाग भी इसी को सँभालना पड़ता था।

दीवाने इंशा

चौथा मन्त्रि-विभाग दीवाने इंशा कहलाता था। इस विभाग के मन्त्री को शाही घोषणाओं एवं आज्ञा आदेशों को लिखना पड़ता था। गवर्नरों तथा स्थानीय अधिकारियें से भी पत्रव्यवहार करना इसका काम था और सरकारी रिकार्डों की व्यवस्था भी इसी को करनी पड़ती थी।

दूसरे अन्य विभाग, जिनकी गणना भी मन्त्रि-विभागों के समान होती थी, दीवाने काजा और दीवाने वरीद थे। प्रमुख काजी दीवाने काजा का प्रधान अधिकारी होता था। अभियोग की सुनवाई करने, उन पर विचार करने, चाहे वह पहली बार पेश हुए हों अथवा वे प्रान्तीय काजी की अदालत की अपीलें हों, के साथ ही सम्पूर्ण न्याय व्यवस्था की देखभाल भी उसी को करनी होती थी। वरीद ममालिक गुप्तचर विभाग का प्रधान होता था और प्रत्येक महत्वपूर्ण घटना का समाचार बादशाह तक पहुँचाना उसी का कार्य था। उसके नीचे संवाद लेखकों और गुप्तचरों का बड़ा दल रहता था जिन्हें नगरों, बाजारों तथा अन्य महत्वपूर्ण बस्तियों में तैनात कर दिया जाता था। शाही डाक लाने ले जाने के लिए विभिन्न स्थानों पर हरकारों का प्रबन्ध भी इसी को करना पड़ता था।[44]

राजमहल तथा उससे लगे हुए विभिन्न कारखानों का प्रबन्ध करने के लिए भी एक बड़ा अधिकारी अवश्य रहा होगा। उसके सुपुर्द बादशाह के वयक्तिगत गृह-प्रबन्ध काम था और उसे राजमहल के सैकड़ों नौकर-चाकरों पर निगाह रखनी पड़ती थी। बादशाह के निकट सम्पर्क में रहने के कारण उसकी मान-प्रतिष्ठा भी बहुत थी।

प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध

शेरशाह के राज्यकाल में साम्राज्य के शासन-प्रबन्धीय विभाजन के बारे में दो मत हैं। डॉ0 कानूनगो की राय है कि शेरशाह के राज्य में 'सरकारों ' से ऊँचे विभाजन नहीं थे। प्रान्त और प्रान्तीय गवर्नरों की सृष्टि तो अकबर ने की थी। डॉ0 सरन का इससे मतभेद है। उनकी राय है कि शेरशाह के समय में फौजी गवर्नरों की प्रथा थी और अकबर से बहुत पहले भारत में प्रान्तों का अस्तित्व था। इन मतों में से कोई भी मत पूरी तरह सही नहीं मालूम देता। सल्तनत काल में, यहाँ तक कि शेरशाह और उसके लड़के इस्लामशाह के राज्यकाल में भी प्रान्तों के समान ही शासन-प्रबन्ध की दृष्टि से विभाग मौजूद थे, किन्तु आय और सीमा-विस्तार की दृष्टि से ये एकसे नहीं थे। इन विभागों को सूबे अथवा प्रान्त कहकर नहीं पुकारा जाता था बल्कि इन्हें 'इक्ता' कहा जाता था और ये प्रमुख अधिकारियों के प्रबन्ध में रख दिये जाते थे। इनके अतिरिक्त बहुत सी ऐसी स्वतन्त्र हिन्दू रियासतें और राज्य थे, जिन्होंने दिल्ली के सुल्तानों की अधीनता स्वीकार कर ली थी। ऐसे राज्यों और इक्तों का न तो एकसा राजनीतिक दर्जा ही था और न इनमें समान शासन-प्रणाली ही व्यवहार में लायी जाती थी। किन्तु जहाँ दिल्ली के प्रारम्भिक सुल्तानों के राज्यकाल में सुल्तानों के ऊपर केन्द्रीय सरकार का नाममात्र का नियन्त्रण था, वहाँ शेरशाह के समय में यह नियन्त्रण कड़ा ओर वास्तविक था। उपर्युक्त बातों से यह पता चलताहै कि शेरशाह के समय में भी फौजी गवर्नरों की नियुक्तियाँ होती थी, उदाहरणार्थ, लाहौर, मालवा और अजमेर में गवर्नर नियुक्त किये गये थे।

इन प्रान्तों के प्रधान अधिकारी बड़ी-बड़ी सेनाओं के सेनापति भी थे। इसी समय में शेरशाह ने बंगाल मे एक नवीन प्रकार का प्रान्तीय शासन स्थापित किया था, जिसके अनुसार प्रान्त को कई 'सरकारों' में विभाजित कर दिया गया था और प्रत्येक 'सरकार' एक बड़े अफगान अधिकारी के सुपुर्द थी। सारे प्रान्त के उपर उसने एक नागरिक अधिकारी की नियुक्त की, जिसके नीचे एक छोटा सा सैनिक-दल भी होता था। इस अधिकारी का काम 'सरकारों' के अधिकारीयों के काम की देखभाल करना और उनके झगड़ों को निबटाना था। इस प्रकार की व्यवस्था को चालू करने का मुख्य उद्देश्य किसी राज-विद्रोह को खड़ा न होने देना था। प्रान्तों में गवर्नर होते थे और कुछ अन्य अधिकारी भी थे, जिन्होंने विभिन्न प्रान्तों में गवर्नरों के समान ही दर्जा पाया था। किन्तु इसको छोड़कर इनके शासन तन्त्र और प्रणाली में कोई समानता नहीं थी। विभिन्न प्रान्तों में नियुक्त किये गये अधिकारियों के पद, उनके नाम और उनकी संख्या जानने का हमारे पास कोई साधन-सूत्र नहीं है और न हमें यह मालूम है कि गवर्नर ही अपने सहयोगियों की नियुक्ति कर लेता था अथवा इनकी नियुक्ति शेरशाह द्वारा होती थी। असल बात यह है कि शेरशाह की प्रान्तीय शासन-व्यवस्था उसकी 'सरकारों' और 'परगनों' की व्यवस्था की भांति ही अच्छी तरह संगठित नहीं थी।

सरकारें (जिले)

प्रत्येक प्रान्त कई-कई सरकारों (जिलों) में विभाजित था। प्रत्येक सरकार में दो प्रमुख अधिकारी होते थे- शिकदार-शिकदारान (प्रमुख शिकदार) और मुन्सिफ-मुन्सिफान (प्रमुख मुंशी)। शिकदार-शिकदारान का पद बहुत ऊँचा

और महत्वपूर्ण समझा जाता था और उसके नीचे एक अच्छा सैनिक-दल रहता था। अपनी सरकार (जिले) में शान्ति और व्यवस्था की स्थापना करना तथा विद्रोही जमींदारों का दमन करना उसका कर्तव्य था। अपनी सरकार के अन्तर्गत परगना के शिकदारों के काम की देखभाल भी उसे ही करनी पड़ती थी। मुन्सिफ-मुन्सिफान मुख्य रूप से एक न्यायाधीश होता था। दीवानी मुकदमों का उसे ही करना पड़ता होगा। इन दोनों अधिकारियों के नीचे सहायता देने के लिए बड़े-बड़े दफ्तर, बीसियों क्लर्क और एकाउण्टेण्ट आदि भी रहते होंगे।

परगने

प्रत्येक सरकार में कई-कई परगने होते थे। ये परगने ही शासन की सबसे छोटी इकाई थी। शेरशाह ने प्रत्येक परगने में एक शिकदार, एक अमीन (मुन्सिफ), एक फोतदार (खजांची) और दो कारकुन (लेखक) नियुक्त किये थे। इनके अतिरिक्त एक कानूनगो भी होता था, जो अद्ध-सरकारी अधिकारी माना जाता था और परगनों के लगान सम्बन्धी मामलों की पूरी-पूरी जानकारी रखता था। शिकदार एक सैनिक अधिकारी होता था जिसके नीचे एक छोटा सा सैनिक दल रहता था। उसका मुख्य कर्तव्य शान्ति कायम रखना था किन्तु विद्रोहियों को दण्ड देने में उसे अमीन को सहायता भी करनी पड़ती थी। अमीन का काम भूमि की पैमाइश करवाना तथा लगान के बन्दोबस्त का प्रबन्ध करना होता था। फोतदार परगने का खजांची होता था। दोनों कारकून हिसाब-हिसाब लिखते थे-एक फारसी में तथा दूसरा हिन्दी में।[45]

शेरशाह ने बुद्धिमत्तापूर्वक ग्रामीण जनता के आत्मनिर्णय के अधिकार को माना था और गांव के पटवारी एवं चौकीदारों के द्वारा वह इनके

सम्बन्ध-सम्पर्क रखता था। गांव मे एक पंचायत होती थी, जिसके सदस्य गाँव के वयस्क और बुजुर्ग लोग होते थे। यह पंचायत गांव की सुरक्षा, प्रारम्भिक शिक्षा, सफाई, सिंचाई आदि बातों का प्रबन्ध करती थी। गांव वालों के आपसी झगड़े भी पंचायत द्वारा निबटाये जाते थे।

सेना

यद्यपि शेरशाह ने अपना जीवन एक नागरिक के रूप में ही आरम्भ किया था, तथापि एक श्रेष्ठ सैनिक-संगठन की स्थापना के महत्व को उसने भली प्रकार समझा था। अन्य अफगान राजाओं की भांति ही उसने भी सम्पूर्ण भारतवर्ष और अफगानिस्तान से अफगानों को बुलाया था और उनकी योग्यता एवं स्थिति के अनुसार उन्हें अपने यहाँ नियुक्त किया था। इसलिए उसकी सेना में अफगानों की संख्या अधिक थी। किन्तु अन्य जातियों के लोग, यहाँ तक कि हिन्दू भी, उसकी सेना में मौजूद थे। सामन्ती सेना के ढंग को नापसन्द करते हुए उसने अलाउद्दीन खलजी द्वारा व्यवहृत स्थायी सेना रखने की नीति अपनायी थी। इस सेना क वेतन आदि व्यय का भुगतान कुछ तो जागीरें देकर होता था और कुछ शाही खजाने से नकद रूपया देकर; किन्तु प्रत्येक दशा में सेना में योग्य और स्वयं शेरशाह द्वारा छांटे हुए अधिकारियों की ही नियुक्ति होती थी।

इतिहास-वृत्त लेखकों के लेखों से पता चलता है कि वह (शेरशाह) स्वयं सेना में बड़ी दिलचस्पी लेता था, रंगरूटों की वही भरती करता था और स्वयं अच्छी तरह देखभालकर योग्यतानुसार उनका वेतन निश्चित करता था। जिस सेना की भरती राजधानी में होती थी, उसी में

बादशाह की निजी देखरेख सम्भव हो सकती थी, प्रान्तीय राजधानी की सैनिक भरती के लिए उसने अपने अधिकारियों को आवश्यक आदेश देकर बिना उससे पूछे रंगरूटों को भरती करने की आज्ञा दे दी होगी। शेरशाह ने घोड़ों पर दाग लगाने की अलाउद्दीन की नीति को ही अपनाया था। सरकारी घोड़ों पर दाग लगाने का उद्देश्य यह था कि सैनिक-दल इन्हें बेच नहीं सकें और आवश्यकता पड़ने पर जब घोड़ों की मांग हो तो सरकारी घोड़ों की जगह मरियल टट्टू लाकर खडत्रे नहीं कर दिये जाएं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक सैनिक की हुलिया रजिस्टर में लिखी जाती थी जिससे युद्ध के समय अथवा सैनिक पर्यवेक्षण के समय अनुपस्थित सैनिकों की ओर से उनके साथी-संगी उनकी खानापूरी न करा दें। इन सुधारों के कारण सेना में प्रचलित बहुत से दोष-दुर्गुण दूर हो गये और अब यह एक शक्तिशाली सैनिक संगठन बन गया। एक सैनिक और उसके उपर के अधिकारी के मध्य अब केवल पारस्परिक प्रेम-भाव का ही सम्बन्ध नहीं रहा, बल्कि अनुशासन और नियन्त्रण पर आधारित सम्बन्ध ा अब अफसर और मातहत के सम्बन्ध में बदल गया। सैनिकों की तरक्की उनकी योग्यता अथवा सेवाओं पर ही निर्भर थी, कमाण्डिग अफसर की मरजी पर ही इस कार्य को नहीं छोड़ दिया गया था। हाँ, बादशाह सैनिकों के बारे में उनकी राय पर पूरा-पूरा ध्यान अवश्य देता था। यह समझना गलत होगा कि शेरशाह ने जागीर प्रथा समाप्त कर दी थी और सैनिकों एवं सैनिक अधि ाकारियों का वेतन नकद दिया जाता था। सैनिकों का वेतन तो प्राय: नकद ही दिया जाता था, किन्तु अफसर और सरदार तो पहले की भांति ही जागीरों का लाभ प्राप्त करते थे। फिर भी शेरशाह ने एक अच्छा सुधार यिका; अब

प्रतयेक सैनिक को उसका वेतन सीधा दिया जाने लगा, पहले की तरह कमाण्डित अफसर अथवा किसी सरदार द्वारा नहीं।

शेरशाह की सेना में अधिकतर घुड़सवार थे। पैदल सैनिक-दल भी था जिसे बन्दूकें दे दी गयी थी। उसका तोपखाना भी बहुत बड़ा था। इस दल के पास कई तरह के श्रेष्ठ तोपें थी। उसके बन्दूकधारियों का दल अपनी निपुणता के लिए प्रसिद्ध था। राजधानी में 1,50,000 घुड़सवार 25,000 पैदल सेना और 300 हाथी थे। इसके अतिरिक्त सम्पूर्ण राज्य में प्रमुख-प्रमुख स्थानों पर टुकड़ियाँ तैनात कर दी गयी थी। शेरशाह की सेना की कुल संख्या निश्चित रूप से नहीं बतायी जा सकती लेकिन इतना अवश्य समझ लेना चाहिए कि विविध प्रान्तों में नियुक्त सेनाओं की संख्या भी राजधानी की सैनिक संख्या के बराबर ही रही होगी। उन दिनों नियमित ट्रेनिंग और ड्रिल की व्यवस्था नहीं थी। सैनिक शिविर के अनुकूल नियन्त्रण अनुशासन रखने का भी लोगों को ज्ञान नहीं था। लेकिन शेरशाह ने अपनी सेना को कई भागों (डिवीजन) में विभाजित कर दिया था और प्रत्येक भाग एक अनुभवी एवं योग्य सेनापति के सुपुर्द था। सेना-संगठन, उसकी सामान-सज्जा और उसके नियन्त्रण में स्वयं दिलचस्पी लेने तथा उसके साथ निकट-सम्पर्क रखने के कारण सेना में भरती किये हुए निरे रंगरूट एक वर्ष में ही कुशल सैनिक बन जाते थे। यातायात और रसद-सामग्री का प्रबन्ध सैनिकों और सेनाध्यक्षों पर ही छोड़ दिया जाता था। वर्तमान काल की-सी व्यवस्था मध्ययुग में नहीं थी। बंजारे लोग जो सेना की भोजन-सामग्री तथा उसकी अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे, आसानी से मिल जाते थे, क्योंकि मध्ययुग की सेनाओं के साथ

तो व्यापारी भी चलते थे।[46]

वित्त-व्यवस्था

साम्राज्य की आय के बहुत से साधन थे। इन्हें दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है- 1. केन्द्रीय आय और 2. स्थानीय आय। स्थानीय आय कई प्रकार के करों द्वारा जो 'अबवाब' कहलाते थे, प्राप्त होती थी। ये कर उत्पादन और उपभोग के विभिन्न व्यापारी और पेशों तथा मुख्य रूप से आवागमन पर लगाये जाते थे। केन्द्रीय आय के स्रोत लावारिस सम्पत्ति, व्यापार, टकसाल, भेंट, नमक, चूंगी, जजिया, खम्स और जमीन पर लगाये गये कर थे। सरकार की ओर ये कच्चे और तैयार माल के आवागमन पर भी कर लगाया जाता था। शाही टकसाल भी आय का एक अच्छा साधन था। जि सम्पत्त्यिों पर किसी का हक नहीं रहता था अथवा किसी के मर जाने के बाद उसकी सम्पत्ति का कोई दावेदार नहीं होता था, तो वह धन-सम्पत्ति सरकार की हो जाती थी। सभी अधीनस्थ राजाओं, सरदारों, अधिकारियों और विदेशी यात्रियों को बादशाह को भेंट देनी पड़ती थी। ये बहुमूल्य भेंटे भी सरकार के लिए काफी लाभ के स्रोत थे। नमक-कर द्वारा भी काफी आय होती थी। जजिया भी जो हिन्दुओं से वसूल किया जाता था, सरकारी आय का एक अच्छा साधन था। खम्स अथवा लड़ाई में लूट का पाँवचा भाग सरकारी कोष में भेज दिया जाता था। इससे सरकार को बहुत बड़ी आय होती थी। सरकारी अम्य का सबसे बड़ा स्रोत अमीन पर लगाया हुआ था, जो लगान कहलाता था।

शेरशाह द्वारा की गयी लगान सम्बन्धी व्यवस्था सल्तनत काल की व्यवस्था से कहीं अच्छी थी और यही उसकी इतनी प्रसिद्धि का कारण है। बिहार में अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करते हुए लगान-प्रणाली का उसे प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त हुआ था। अपने राज्याभिषेक के पश्चात उसने उसी लगान-व्यवस्था को चालू किया, जिसे वह स्वयं सहसराम, खवासपुर और टांडा में अच्छी तरह तैयार करके परीक्षणोपरान्त देख चुका था। एक समान पद्धति पर सम्पूर्ण जमीन की पैमाइस की जाती थी ओर प्रत्येक गांव में खेती के योग्य भूमि का ब्यौरा रखा जाता था। पैदावार योग्य सारी जमीन तीन श्रेणियों में विभाजित कर दी गयी थी- अच्छी, साधारण और खराब। इन तीनों तरह की जमीनों पर की जाने वाली पैदावार निश्चित की जाती थी। इसको जोड़कर और तीन से भाग देकर प्रति बीघा जमीन की औसत पैदावार निकाल ली जाती थी। पैदावार का एक-तिहाई भाग सरकारी हिस्सा समझा जाता था। सरकारी लगान नकद अथवा जिन्स के रूप में, दोनों प्रकार से अदा किया जा सकता था, लेकिन नकद लगान लेना ही अधिक पसन्द किया जाता था। अनाज के प्रचलित भाव के अनुसार सरकारी हिस्सा नकद देना पड़ता था। प्रत्येक स्थान के लिए प्रत्येक प्रकार के अनाज के लिए पृथक-पृथक दरें थी। प्रत्येक स्थान की जमीन और उसकी पैदावार भिन्न होने के कारण जमीन की औसत पैदावार की एक सी दरें रखना असम्भव था।

इस प्रकार पैदावार के सरकारी हिस्से को नकदी में बदलने के लिए भिन्न-भिन्न दरें रही होंगी। सरकार प्रत्येक किसान को पट्टा देती थी, जिसमें सरकार की मांग अर्थात जो लगान अदा करना पड़ेगा, निर्धारित होती

थी। प्रत्येक किसान को कबूलियत (शर्तनामे) पर दस्तखत करने पड़ते थे, जिसका आशय होता था कि वह निर्धारित लगान देना स्वीकार करता है। इन दोनों पत्रकों में किसान के आकिार में जमीन का रकबा इत्यादि दर्ज रहता था। यह समझना कि शेरशाह ने अपने राज्य में सर्वत्र एकसमान लगान की दर निश्चित की थी, उचित नहीं है। सरकारी आलेखों से ज्ञात होता है कि मुल्तान में उसने जमीन की पैमाइश के अनुसार लागन निश्चित करने पर जोर नहीं दिया था। इसी तरह राजस्थान में भी जमीन की सर्वे (नाप) करना असम्भव था। इसलिए यह विचार करना उचित है कि लगान निश्चित करने की तीनों प्रणालियों को ही उसने यथापूर्वक चलने दिया होगा। ये तीनों प्रणालियाँ इस प्रकार थी- (1) गल्ला-बक्शी अथवा चटाई, 2. नश्क अथवा मुकताई या कनकूत, 3. नकदी अथवा जब्ती या जमई। बटाई का अभिप्राय पैदावार का किसान के साथ हिस्सा-बाँट करने से था। इस प्रकार सरकारी हिस्से को निर्धारित करने की परिपाटी अत्यन्त प्राचीन है और सभी कालों में प्रचलित एवं लोकप्रिय रही है। बटाई तीन प्रकार की होती है- 1. खेत-बटाई, 2. लाँक-चटाई, और 3. रास-बटाई। खेत-बटाई का अभिप्राय यह है कि खड़ी फसल से अथवा खेत बोने के तुरन्त बाद ही जमींदार का हिस्सा, खेत बाँटकर निर्धारित करना। लाँक-वटाई का अर्थ यह है कि खेत काटने के बाद किसान फसल को खलिहान में लाता है, जहाँ अनाज में से भूसा अलग निकाले बिना, उसका किसान और जमींदार में हिस्सा-बाँट हो जाता है। रास-बटाई से अभिप्राय यह है कि जब अनाज से भूसा अलग कर लिया जाय तब हिस्सा निश्चित कर लिया जाय।[47] नश्क अथवा कनकृत से मतलब जमीन की मोटे

तौर पर पैदावार आँकने से है।

लगान निश्चित करने की यह प्रणाली किसान के लिए बड़ी झंझटपूर्ण और अलाभकारी है। नकदी, जमई अथ्वा जब्ती से आशय किसान और जमींदार अथवा सरकार के मध्य उस समझौते से है जिसके अनुसार तीन वर्ष या उससे अधिक समय तक प्रति बीघा प्रतिवर्ष के हिसाब से लगान निश्चित हो जाता है, चाहे खेत में कित्नी ही पैदावार हो अथवा न हो। इसकी दर जमीन की उपज-शक्ति और उसकी स्थिति पर निर्भर रहती है। किसान अपनी जमीन पर एक से अधिक फसल भी तैयार कर सकता है। साथ ही सूखा पड़ने, अधिक दृष्टि होने अथवा अन्य किसी प्राकृतिक प्रकोप के कारण जी हानि उसे उठानी पड़ती है, उसके लिए उसे माफी नहीं मिल सकती और न समझौते की अवधि में सरकार लगान ही बढ़ा सकती है। इन तीनों प्रणालियों में से नकदी अथवा जमई को ही किसान अधिक पसन्द करते हैं और कनकूत बिलकूल पसन्द नहीं करते। लगान के उपर सरकार किसान से जमीन का सर्वे करने वालों का मेहनताना भी वसूल करती थी। ये अतिरिक्त चार्ज जो जरीवाना (सर्वे करने वाले की फीस) और महासिलाना (कर एकत्र करने वाले की फीस) कहलाते थे, प्रत्येक को अदा किये हुए लगान पर 2½% 5% तक देने पड़ते थे। इसके अतिरिक्त प्रत्येक किसान को सम्पूर्ण लगान पर 2½ कर और देना पड़ता था। इसे बीमा फण्ड की तरह का ही समझना चाहिए। यह कर अनाज के रूप में ही लिया जाता था। इस प्रकार जो खाद्य पदार्थ सरकारी खत्तियों में जमा होता था, उसे दुर्भिक्ष तथा अन्य प्राकृतिक प्रकोपों के अवसर पर सस्ते भाव पर जनता को बेच दिया

जाता था।

कृषकों की भलाई का शेरशाह ने पूरा-पूरा ध्यान रखा था। फीरोज तुगलक को छोड़कर मध्ययुगीन भारत के किसी अन्य शासन ने यहाँ कि किसानों का इतना ख्याल नहीं रखा, जितना इस अफगान बादशाह ने रखा था। उसका विश्वास था कि कृषकों का हित-साधन करने से सरकारको सदैव लाभ पहुँचता है। अपने अधिकारियों को उसने आज्ञा दी थी कि लगान निश्चित करते समय तो वे नरम रहें लेकिन वसूली के समय किसी प्रकार की रिआयत करने की जरूरत नहीं है। जो लोग कृषकों को सताते थे, उन्हें दण्ड देने से वह कभी नहीं चूका। सेनाओं के आने-जाने के समय यदि खड़ी फसलों को किसी प्रकार की हानि पहुँचती थी, तो वह इसका मुआवजा देने के लिए सदैव तैयार रहता था।

इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य तीन तरह की जमीन की औसत पैदावार एक-तिहाई वसूल करना था। तीसरी श्रेणी की जमीन से ज्यादा कर वसूल किया जाता था। किन्तु जैसा मोरलैण्ड ने लिखा है, इस प्रकार की असमानता शायद "फसलों की बदल द्वारा ठीक हो सकती थी।" दूसरे, सरकार द्वारा पैदावार पर एक-तिहाई वसूली के साथ सर्वे करने वाले की फीस, लगान वसूल करने वालों की फीस और 2½% की अतिरिक्त अन्न वसूली अधिक जँचती थी। तीसरे, वार्षिक बन्दोबस्त होने के कारण किसानों तथा साथ ही सरकारियों को भी बड़ी असुविधा रहती होगी। चौथे, यह समझ लेना भी उचित नहीं है कि मालगुजारी विभाग में सभी प्रकार का भ्रष्टाचार एकदम समाप्त हो गया था।

इस विभाग के कर्मचारियों की आमदनी अन्य विभागों के कर्मचारियों की आमदनी से कहीं अधिक रहती थी और इसी कारण शेरशाह इनकी बदली हर दूसरे-तीसरे साल कर देता था जिससे "आमीलदारी के लाभ और सुविधाओं को ज्यादा से ज्यादा लोग भेग सकें।" पाँचवे, जागीर-प्रथा अभी भी प्रचलित थी और इस बात पर मुश्किल से ही विश्वास किया जा सकता है कि जागीरदार अपनी जागीरों का प्रबन्ध गुमाश्तों द्वारा नहीं कराते थे। राज्य के प्रत्येक भाग में जागीरें होने के कारण यह स्वाभाविक है कि जागीरी क्षेत्रों के किसानों को हानि उठानी पड़ती होगी।

लेकिन, सब मिलाकर यह कहा जा सकता है कि उस समय काश्तकारों को अधिक कष्ट नहीं था, क्योंकि शेरशाह स्वयं उनकी भलाई और उन्नति का ध्यान रखता था तथा उन लोगों को कठोर दण्ड देता था जो किसी भी रूप में इन्हें तंग करते अथवा तकलीफ पहुँचाते थे। उसने बीच के मुखियाओं के अस्तित्व को यदि बिलकुल मेट नहीं दिया, तो कम से कम उनके अधिकारों को तो समाप्त ही कर दिया था। वास्तव में उसने प्रत्येक किसान और सरकार के मध्य सीधा। सम्बन्ध स्थापित करने की व्यवस्था की थी। उसकी मालगुजारी व्यवस्था को रैय्यतवारी कहा जाता है, जमींदारी नहीं।

व्यय की मुख्य मदें शाही घराने के खर्च और नागरिक तथा सैनिक संस्थाओं के विविध खर्चे थे। आय का एक बहुत बड़ा भाग इमारतें, सड़कें, सरायें तथा अन्य चीजों के निर्माण में व्यय किया जाता था। अपने सम्पूर्ण राज्यकाल में निरन्तर युद्धों में संलग्न रहने के कारण शेरशाह ने इनमें (युद्धों में) भी काफी व्यय किया होगा। दान पर चलने वाली संस्थाओं को

भी शाही खजाने से काफी सहायता मिलती होगी। केवल क्षेत्र अथवा लंगर (charity kitchen) के लिए ही, जैसा कि हमने अन्यत्र भी जिक्र किया है, खजाने से 18,25000 रूपये वार्षिक दिया जाता था।

मुद्रा-व्यवस्था

शेरशाह का दूसरा बड़ा काम मुद्रा सम्बन्धी सुधारों का श्रीगणेश करना था। राज्य-प्राप्ति के पश्चात उसे ज्ञान हुआ कि धातु की कमी, प्रचलित सिक्कों की घिसावट और खोटापन तथा विभिन्न धातुओं के सिक्कों के बीच कोई निश्चित अनुपात न होने के कारण मुद्रा-प्रणाली एकदम बिगड़ चुकी है। एक दूसरी कठिनाई यह भी थी कि सभी युगों के सिक्के-गत शासकों के सिक्के भी-उन दिनों चल रहे थे। शेरशाह ने चाँदी के बहुत से नये सिक्के निकलवाये जो 'दाम' कहलाते थे। चाँदी के रूपये और ताँबे के दाम के आधे, चौथाई, आठवें और सोलहवें भाग के सिक्के भी निकलवाये थे। इसके बाद उसने सब प्रकार के पुराने सिक्कों तथा मिश्रित धातु की मुद्रा-प्रणाली को समाप्त कर दिया। चाँदी और ताँबे के सिक्कों में उसने अनुपात निश्चित कर दिया। चाँदी का रूपया 180 ग्रेन का था जिसमें 175 ग्रेन विशुद्ध चाँदी थी। यदि शेरशाह की अंकित छाप का ध्यान न रखें, तो हम कह सकते हैं कि उसका सिक्का मुगलकाल में भी चलता था और 1835 ई0 तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा भी चालू माना गया। इतिहासकार बी0 ए0 स्मिथ ने ठीक ही लिखा है कि ''यह रूपया वर्तमान ब्रिटिश मुद्रा-प्रणाली का आधार है।'' शेरशाह का नाम, उसकी पदवी और टकसाल का स्थान भी अरबी लिपि में सिक्कों के उपर अंकित रहता था। कुछ सिक्कों पर नागरी लिपि में भी

शेरशाह का नाम अंकित रहता था। कुछ सिक्के ऐसे भी थे जिन पर बादशाह के नाम के अतिरिक्त प्रथम चार खलीफाओं के नाम भी अंकित रहते थे।[48] विशुद्ध धातु के सोने के सिक्के भी विभिन्न तोल के- 1664 ग्रेन 167 ग्रेन और 168.5 ग्रेन-ढ़ाले जाते थे।

रूपया और दाम में 1 और 64 का अनुपात था। सोने और चाँदी के भिन्न-भिन्न सिक्कों के बीच स्थायी आधार पर अनुपात स्थिर किया गया था। मुद्रा सम्बन्धी ये सुधार बड़े लाभदायक और सुविधाजनक सिद्ध हुए। इनसे जनसाधारण, विशेषकर व्यापारी-वर्ग, की अनेक असुविधाएं दूर हो गयीं। आधुनिक मुद्राशास्त्रियों ने शेरशाह के इन सुधारों की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उदाहरणतः एउवर्ड टॉमस ने लिखा है कि "शेरशाह के राज्यकाल ने भारतीय मुद्रा इतिहास में एक प्रमुख स्थान केवल टकसालों के किये गये सुधारों द्वारा ही प्राप्त नहीं किया, बल्कि पूर्वकालीन राजाओं की मुद्रा-व्यवस्था के उत्तरोत्तर ह्रास को रोककर उन सुधारों में से बहुतों को जारी करते हुए प्राप्त किया जिन्हें आने वाले मुगल शासकों ने अपना बताया।"

व्यापार वाणिज्य

शेरशाह ने उन बहुत से महसूलों को जिन्हें प्रत्येक प्रान्त और जिले की सीमा पर तथा प्रत्येक घाट और प्रत्येक प्रमुख मार्ग पर वसूल किया जाता था, हटाकर व्यापार और वाणिज्य को बहुत प्रोत्साहन दिया। उसने यह तय कर दिया कि बिक्री के लिए आने-जाने वाली वस्तुओं पर केवल दो चुंगियाँ लगायी जायेंगी। एक चूंगी तो तब वसूल की जाती थी जबकि व्यापारिक वस्तुएँ उसके राज्य की सीमा में पूर्वी बंगाल के सोनारगाँव नामक

स्थान अथवा पंजाब के रोहतासगढ़ या अन्य किसी प्रान्त की सीमा से प्रवेश करती थी और दूसरी चूंगी इन वस्तुओं के बिक्री के स्थान पर लगायी जाती थी। यह चुंगी कितनी लगती थी, इसका कोई निश्चित पता नहीं है। ऐसा अनुमान है कि यह महसूल वस्तु के मूल्य का 2½ प्रतिशत होता था। राज्य के अन्दर चुंगी वसूल करने के शेष सभी स्थान उसने बन्द कर दिये थे। इन सुधारों से देश के अन्दर व्यापार-वाणिज्य को बहुत प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और यथेष्ट व्यापारिक समृद्धि हुई।

न्याय-व्यवस्था

शेरशाह मध्ययुग का अत्यन्त न्यायप्रिय शासक समझा जाता है। अपनी प्रजा की भलाई करते रहने के उसके व्यक्तिगत गुण औरविशेषताओं पर ही उसकी प्रतिष्ठा आधारित नहीं थी, बल्कि एक श्रेष्ठ न्याय-व्यवस्था की स्थापना द्वारा भी उसने लोगों के दिलों में ऊँचा स्थान प्राप्त किया था। सुदीर्घकाल से प्रचलित प्रथा के अनुसार वह साधारण मुकदमे भी सुनता था और उनकी अपीलें भी सुनता था। बुधवार के दिन संध्या समय उसकी कचहरी लगती थी। उसके नीचे प्रमुख काजी होता था, जो न्याय विभाग का प्रधान था और न्याय-व्यवस्था के सुप्रबन्ध की जिम्मेदारी भी इसी के उपर होती थी। प्रमुख काजी की कचहरी मुख्य रूप से अपील सुनवाई की कचहरी थी, किन्तु पहले-पहल के मुकदमों के भी यहाँ फैसले किये जाते थे। प्रत्येक जिले में और सम्भवत: प्रत्येक प्रमुख नगर में काजी होता था। प्रमुख मुन्सिफ के उपर जिले में दीवानी न्याय-व्यवस्था का सुचारू रूप से प्रबन्ध काजी फौजदारी के मुकदमे करता था और मुन्सिफ तथा अमीन दीवानी के मुकदमे। एक अन्य

न्याय अधिकारी भी था, जो मीरआदिल कहलाता था।

शेरशाह की न्याय-व्यवस्था उच्च आदर्शों पर अवलम्बित थी। निर्धन और निर्बलों को अनाचार एवं अन्याय से बचाने में वह विशेष रूचि लेता था। अधिकतर वह इस सिद्धान्त का पालन करता था कि निर्धन और निकृष्ट जनों की अपेक्षा सरकारी अफसरों और सम्मान-प्रापत व्यक्तियों के प्रति ही अधिक कठोरता का व्यवहार किया जाय। यहाँ तक कि न्याय-सम्पादन के समय वह अपने निकट सम्बन्धियों को भी कोई महत्व नहीं देता था। इस सम्बन्ध में लिखे हुए एक चुटकुले से ज्ञात होता है कि एक सुनार की पत्नी पर अपने घर में स्नान करते हुए पान का पत्ता फेंकने के अपराध में शेरशाह ने अपने भतीजे को दण्ड दिया था। जब शहजादा अपने हाथी पर घर के पास से गुजर रहा था, उसी समय यह घटना घटी थी। सरदारों द्वारा उक्त दण्ड का विरोध किये जाने पर भी शेरशाह अपने न्यायपूर्ण निर्णय से विचलित नहीं हुआ। शेरशाह के सतर्क और निष्पक्ष मालवा के गवर्नर शुजातखाँ ने अन्यायपूर्वक 2,000 सैनिकों की जागीरों के एक भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। जब शेरशाह ने यह बात सुनी तो उसने उचित दण्ड की आज्ञा निकाल दी, यद्यपि इसी बीच जागीरें वापस देकर शुजातखाँ ने अपनी भूल का सुधार कर लिया था। हम पहले ही लिख चुके हैं कि किसानों की भलई के निमित्त शेरशाह विशेष रूप से उदार था। युद्धकाल में वह सेना द्वारा रौंदी हुई फसलों की क्षतिपूर्ति भी करता था। न्यायप्रिय बादशाह होने के नाते शेरशाह की पूर्ति उसकी मृत्यु तथा उसके वंश के पतनोपरान्त भी बनी रही। तबकाते अकबरी के लेखक निजामुद्दीन अहमद ने सोलहवी शताब्दी के अन्तिम

वर्षों में लिखा था कि शेरशाह के शासनकाल में कोई भी सौदागर रेगिस्तान में यात्रा करते हुए सो सकता था, और लुटेरों द्वारा माल-असबाब के लूटे जाने का उसे कोई भय नहीं था। शेरशाह के भय और न्याय-प्रेम के कारण चोर और लुटेरे तक सौदागरां के माल की निगरानी करते थे।

पुलिस

शेरशाह के राज्यकाल में पुलिस का कोई अलग विभाग नहीं था। सेना को दुहरे कर्तव्यों का पालन करना पड़ता था। विदेशी आक्रमणों और आन्तरिक विद्रोहों से देश की रक्षा तथा मनुष्य-मात्र के बीच शान्ति स्थापना का कार्य सेना को ही करना पड़ता था। प्रमुख शिकदार का कर्तव्य था कि वह सरकार में शान्ति और व्यवस्था कायम रखे। असल में वह अपने अधिकार-क्षेत्र में शान्ति-संरक्षक था। परगने के शिकदार पर भी यही कार्यभार था। इन अफसरों को अपने-अपने क्षेत्रों के चोरों, लुटेरों और बदमाशों पर कड़ी नजर रखनी पड़ती थी और अपराधियों को दण्ड भी देना पड़ता था। जहाँ तक ग्रामों का सम्बन्ध था, शेरशाह ने स्थानीय उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का प्रयोग किया था और इस प्रकार, गाँव में होने वाले अपराधों की जिम्मेदारी वहाँ के मुखिया पर रहती थी। मुखिया को समय दिया जाता था कि वह अपराधी को पेश करे अथवा चुराये या लूटे गये माल की क्षतिपूर्ति करे। यदि वह इस कार्य में सफल नहीं होता तो उसे मृत्युदण्ड दिया जाता था। यदि कुछ गाँवों की एक सरहद पर कोई अपराध किया जाता था, तो उन गाँवों से सम्बन्धित मुखियो की जिम्मेदारी होती थी कि वे अपराध की छानबीन करें और क्षतिपूर्ति का प्रबन्ध करें।[49] यह पद्धति ग्रामीण मनोविज्ञान

के सही ज्ञान तथा मध्यकालीन जनता की दशा पर आधारित थी। आमतौरपर तो मुखिया लोग अपने गाँव के बदमाशों को अच्छी तरह जानते थे और शायद ही कोई अपराध होता था जिसकी जानकारी उन्हें नही होती थी; किन्तु अपराधी को खोज निकालने की असफलता पर मृत्युदण्ड देना हमारी समझ में बहुत ही कठोर नियम था। डा0 कानूनगो ने इस नियम की पुष्टि की है क्योंकि मध्यकाल के लिए यह अत्यन्त उपयुक्त था।

मध्यकाल के प्रायः सभी इतिहासकारों ने शेरशाह के पुलिस-शासन की प्रशंसा ही की है। अब्बा सरवानी ने लिखा है, ''शेरशाह के राज्यकाल में राहगीर अपनी चीज-बस्तों की निगरानी रखने की परेशानी से मुक्त थे। रेगिस्तान में भी उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। बस्ती हो या विजन स्थान, वे कहीं भी निर्भय होकर पड़ाव डाल देते थे। वे अपना माल खुली जगह में भी छोड़ देते थे। जानवरों को चरने के लिए खुला छोड़ देते थे और निश्चित भाव से चैन की नींद सोते थे, मानो वे अपने घर में ही हों। जमींदार लोग उनके माल की चौकसी रखते थे क्योंकि उन्हें डर रहता था कि कहीं कोई दुर्घटना हो गयी तो गिरफ्तारी का दण्ड उन्हीं को भुगतना पड़ेगा। शेरशाह के राज्य में निर्बल और वृद्धा स्त्री तक अपने सिर पर स्वर्णाभूषणों की पोटली रखकर यात्रा के लिए निकल सकती थी, किन्तु चोर और लुटेरे उसके पास नहीं फटक सकते थे, क्योंकि शेरशाह के दण्ड का आतंक उन पर सवार रहता था।'' (इलियट, भाग 4, पृ0 432-33)

नगरों की पुलिस-व्यवस्था के विषय में कुछ पता नहीं चलता। मुगलकालीन कोतवाल की हैसियत का एक हाकिम प्रत्येक महत्वपूर्ण नगर में

शान्तिस्थापनार्थ तथा अनुशासनहीन व्यक्तियों को नियन्त्रित रखने के लिए अवश्य ही रहा होगा। राजधानी में पुलिस की समुचित व्यवस्था रही होगी। इस सम्बन्ध में कोई विस्तृत जानकारी नहीं है।

सड़कें और सरायें

शेरशाह ने कई बड़ी-बड़ी सड़कों का निर्माण कराया। प्राचीन हिन्दू राजाओं के चरण-चिन्हों पर चलकर उसने बहुत सी सड़के बनवायी ताकि राज्य के अनेक भागों का सम्बन्ध राजधानी से जुड़ सके। उसकी चार सड़कें बहुत प्रसिद्ध हैं। पहली सड़क पूरबी बंगाल में सोनारगाँव से आरम्भ होकर आगरा दिल्ली और लाहौर होती हुई सिन्धु नदी पर समाप्त हुई। यह सड़क 1500 कोस लम्बी थी और सड़क-ए-आजम नाम से पुकारी जाती थी। आजकल इसी का नाम ग्राण्ड ट्रंक रोड है। दूसरी सड़क आगरा से बुरहानपुर गयी थी। तीसरी आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तक गयी थी और चौथी लाहौर से मुल्तान तक गयी थी, ये सभी सड़कें विशेष योजना के साथ तैयार की गयी थी और देश के महत्वपूर्ण नगरों को अपने मार्ग में जोड़ती हुयी चली गयी थी। ये सड़कें अत्यन्त प्राचीन थी। शेरशाह ने इन्हें स्वयं नहीं बनवाया था बल्कि इनको ठीक अवस्था में रखने का प्रयत्न किया था। सड़कों के दोनों ओर शेरशाह ने फलों के वृक्ष लगवाये। सड़कों के किनारे हिन्दू और मुसलमानों के लिए अलग-अलग कक्षों सहित 1700 कारवाँ सरायें बनायी गयी थी। डाक अथवा सूचना विभाग के कर्मचारियों के लिए, अश्व-पड़ावों की भी व्यवस्था की गयी थी। हर सराय में एक कुआँ और एक मस्जिद थी, जिसमें एक इमाम और मुअज्जिन भी थे। प्रत्येक सराय पर चोरी को रोकने और

शान्ति स्थापित रखने के निमित्त एक पुलिस अफसर (शिकदार) नियुक्त रहता था।[50]

ये सरायें विशेष रूप से डाक विभाग के कर्मचारियों और हरकारों के लिए जो कि शाही डाक ले जाते थे, विश्रामशालाओं का प्रयोजन पूरा करती थी। इन कर्मचारियों के लिए यहाँ भोजन-सामग्री की व्यवस्था रहती थी और क्योंकि इस वर्ग में हिन्दू और मुस्लिम दोनों ही सम्मिलित थे, अतएव उनके लिए भोजन का पृथक-पृथक प्रबन्ध रहता था। सरायों के आस-पास की कुछ भूमि सराय के खर्च की पूर्ति के लिए दे दी गयी थी। डॉ0 कानूनगो के शब्दों में से सरायें "साम्राज्यरूपी शरीर की धमनियाँ थी" और ये सड़कें व सरायें "शेरशाह के शासन की सफल्ता के लिए इसलिए और आवश्यक थी क्योंकि प्राय: अधिकारियों का स्थान-परिवर्तन, व्यवसाय-संचालन और सैन्य-दलों का निरन्तर आना-जाना बना रहता था।" सड़कें और सरायें केवल सैन्य-दलों के यातायात के लिए ही उपयुक्त नहीं थी, बल्कि ये डाक-विभाग अथवा डाक-चौकियों का काम भी करती थी। वे राज्य के सुदूर भागों के समाचार सरकार तक पहुँचाती थी। यह पद्धति इस देश के लिए नयी नहीं थी बल्कि शेरशाह ने इसको फिर से संचालित किया था और इसमें आवश्यक सुधार भी किये थे।

गुप्तचर विभाग

शेरशाह ने अलाउद्दीन खलजी की डाक-चौकी और गुप्तचर-पद्धति को ही पुन: संचालित किया था। उसने उक्त विभाग के अध्यक्ष पद दरोगा-ए-डाक चौकी की नियुक्ति की थी। उसके अन्तर्गत समाचार लेखकों

और समाचार-वाहाकों की नियुक्ति की गयी थी, जो साम्राज्य के प्रत्येक भाग की प्रमुख घटनाओं का संकलन करते थे। हम ऊप लिख चुके हैं सरायों पर नियुक्त हरकारे शाही डाक पहुँचाने का काम करते थे। शेरशाह अपने सूचना विभाग द्वारा राज्य के प्रत्येक भाग से परिचित रहता था। बाजार की वस्तुओं के मूल्यों की दैनिक रिपोर्ट बादशाह तक पहुँचती थी। समाचार-वाहक और गुप्तचर समस्त प्रमुा नगरों और बाजारों में नियुक्त थे और इनको आदेश प्राप्त थे कि जो भी सूचना शाहंशाह के सामने पेश होनी आवश्यह हो वह तुरन्त दरबार में भेद दी जाय। यह विभगा ऐसी कुशलता से कार्य करता था कि प्रान्त में नियुक्त सैनिकों के असन्तोष की सूचनाएं और जमींदार तथा बड़े जागीरदारों की विद्रोहपूर्ण चेष्टाओं का पता उन क्षेत्रों के जानकारों से पूर्व ही शांहशाह को चल जाता था। शुजातखाँ द्वारा 2,000 सैनिकों की जागीरों का एक भगा हड़पने का मामला और उन सैनिकों का असन्तोष शुजातखाँ की जानकारी से पूर्व ही गुप्तचरों द्वारा शेरशाह को मालूम हो चुका था। शेरशाह की शासन-व्यवस्था की सफलता का बहुत कुछ श्रेय उसकी गुप्तचर प्रणाली को प्राप्त है।[51]

<u>शेरशाह का चरित्र</u>

<u>उसका दैनिक कार्यक्रम</u>

उत्तरी भारत के मुसलमान शासकों में शेरशाह ही ऐसा था, जो दिल्ली के राजदरबार से कोई विशेष सम्बन्ध न रखते हुए भी इतने ऊँचे राजपद तक पहुँच गया। उसने अपना जीवन-कार्य अपने पिता की जागीर के प्रबन्धक के रूप में आरम्भ किया था। किन्तु अपनी योग्यता के बल-बूते की

वह हिन्दुस्तान का सम्राट बन बैठा। राज्यारोहण के समय भारतवर्ष के किसी भी शासक को शासन सम्बन्धी विभिन्न विभागों की इतनी अच्छी जानकारी नहीं थी, जितनी उसे थी। शेरशाह 68 साल की उम्र में राजा बना। एक बार कहते हैं, उसने यह कहा था कि ईश्वर ने जीवन के संध्या-काल में मुझे राजपद प्रदान किया है। किन्तु देखने की बात तो यह है कि वृद्धावस्था उसके उत्साह और उसकी आकांक्षाओं को ठण्डा नहीं कर सकी, बल्कि जिस शारीरिक और मानसिक स्फूर्ति का उसने प्रदर्शन किया वह पच्चीस साल के युवा के युवा के लिए स्पृहणीय हो सकता है। इस राय पर सभी इतिहासकार एकमत हैं कि शेरशाह सोलह घण्टे प्रतिदिन राजकाज में लगता था। अशोक, चन्द्रगुप्त मौर्य अथवा अकबर की भाँति उसका भी यही आदर्श वाक्य था कि महान व्यक्ति को सदैव चैतन्य रहना आवश्यक है। अब्बास सरवानी और रिजकुल्ला मुश्ताकी दोनों ने ही लिखा है कि "रात के तीसरे पहर ही निद्रा त्यागकर वह उठ बैठता था। स्नान और नमाज आदि से निवृत्त होकर वह राजकाज में लग जाता था। सबसे पहले विभिन्न विभागों के सचिव उसके पास आते थे और वे अपने-अपने विभागों के कामों की रिपोर्ट उसे पढ़कर सुनाते थे। चार घण्टे तक वह देश के मामलों की रिपोर्ट और सरकारी कार्यालयों अथवा संस्थाओं की रिपोर्ट सुनता था। जो आज्ञाएँ वह देता था, उन्हें लिख़ लिया जाता था। तत्पश्चात उनके अनुसार कार्यवाही करने के लिए उन्हें भेज दिया जाता था, आगे उस पर किसी प्रकार की बहस की जरूरत नहीं थी। इस प्रकार वह सुबह होने तक व्यस्त रहता था।" (वाक्रयात मुश्ताक; ईलियट द्वारा अनूदित, भाग 4, पृ0 550) प्रात: काल की प्रार्थना के पश्चात्

वह अपनी सेना का निरीक्षण करने के लिए चला जाता था। उसके सामने सेना की कवायद होती थी, सैनिकों की हाजिरी ली जाती थी और नये रंगरूटों की भरती होती थी। उनका हुलिया रजिस्टर में दर्ज किया जाता था। घोड़ों को दागा जाता था। इसके पश्चात वह नाश्ता करता था। नाश्ता करने के पश्चात् दरबार लगता था और वहाँ वह दोपहर तक राजकाज का काम करता था। दरबार में उसका मुख्य काम सरदारों, अधीनस्थ राजाओं और विदेशी दरबारों के राजदूतों से भेंट करना होता था।[52] विभिन्न परगनों से आये हुए कर और लगानों के धन का भी वह निरीक्षण करता था और आय-व्यय के हिसाब किताब की जाँच करता था। इसके बाद वह दोपहर के बाद की नमाज पड़ता था फिर आराम करने चला जाता था। जब तक कोई आवश्यक कार्य, जिसमें उसकी व्यक्तिगत देखरेख आवश्यक होती थी, सामने न आ जाता तब तक वह संध्या समय कुरान पढ़ने और विद्वानों का सत्संग करने में व्यतीत करता था। यह उसके जीवन का कार्यक्रम था। चाहे वह राजधानी में हो अथवा किसी सैनिक कार्यवाही में संलग्न हो, इस कार्यक्रम में मुश्किल से ही कोई हेर-फेर करना पड़ता था।

व्यक्ति के रूप में

वैभव की गोद में उत्पन्न न होने और निरन्तर कठिनाइयों के बीच आगे बढ़ने के कारण शेरशाह में किसी अभिजात पुरूष की-सी संस्कृति और व्यक्तिगत आकर्षण नहीं था। समकालीन फारसी इतिहास-लेखक हसनअलीखाँ ने अपनी पुस्तक 'तारीर-ए-दौलत शेरशाह' में लिखा है कि जवानी में शेरशाह का नैतिक चरित्र एक भ्रष्ट युवक जैसा था। उसे एक आज्ञाकारी पुत्र भी नहीं

कह सकते क्योंकि पिता से उसकी बहुत अनबन रहती थी। कारण यह था कि शेरशाह का पिता उसकी सौतेली माँ से अधिक प्रेम करता था। अपनी माँ के प्रति उसका कैसा भाव था, इस बारे में अधिक जानकारी नहीं है। किन्तु ऐसा अनुमान है कि माँ-बेटे के बीच यथेष्ट हार्दिक प्रेमभाव रहा होगा क्योंकि दोनों ही अपने अभिभावक के पक्षपातपूर्ण दुर्व्यवहार के समान दुखी थी। यद्यपि मुगल सम्राट बहुपत्नीक थे तथापि वे अपनी सभी पत्नियों से ऐसा प्रेम करते थे जिससे उनका नाम इतिहास में प्रसिद्ध हो गया है। किन्तु शेरशाह में यह गुण प्रतीत नहीं होता है। इस बात का भी कोई सबूत नहीं मिलता कि वह अपने बच्चों के प्रति भी विशेष प्रेम रखता था।[53] ऐसा प्रतीत होता है कि उसका उपयोगितावादी दृष्टिकोण किसी से भी अधिक लगाव रखने में बाधक था।

यद्यपि शेरशाह एक सुशिक्षित व्यक्ति था, अरबी और फारसी का अच्छा ज्ञाता था, इतिहास से भी उसे शौक था, तथापि उसे एक विद्वान नहीं कहा जा सकता। इतिहास और साहित्य का अध्ययन उसके निकट अपने में साध्य नहीं था। इनकी व्यावहारिक उपयोगिता के लिए ही उसने इन्हें अपनाया था। वह प्रतिदिन कुरान इसलिए पढ़ता था क्योंकि एक धार्मिक मुसलमान के लिए इसका पढ़ना जरूरी है। जिस प्रकार दिल्ली के अन्य तुर्क-अफगान शासक विद्वानों के प्रशंसक और संरक्षक रहे, वह भी इनका आदर-सत्कार और संरक्षण करता था। किन्तु इसके राज्यकाल में किसी भी विद्वान ने इतिहास, राजनीति, अर्थशास्त्र अथवा धर्मशास्त्र पर कोई विशिष्ट रचना तैयार नहीं की। आधुनिक इतिहास के विद्वानों ने शेरशाह द्वारा विद्या को

संरक्षण दिये जाने की बात की प्रशंसा की हैं। किन्तु प्रशंसा करने से पहले उन्होंने यह जानने की कोशिश नहीं की कि विद्या के इस प्रकार के संरक्षण द्वारा विद्या के प्रचार ने और उच्चकोटि की रचनाएँ तैयार होने में[4] कहाँ तक सहायता प्राप्त हुई। उसकी व्यक्तिगत विशेषताओं में सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि वह एक महान निर्माता था और स्थापत्य-कला की उसकी शैली पूर्व-सुल्तानों की शैलियों से अधिक उन्नत थी।

<u>सैनिक के रूप में</u>

जैसा बताया जा चुका है, शेरशाह व्यवसाय से ही सैनिक नहीं था, किन्तु एक सैनिक कमाण्डर का पुत्र होने के कारण तथा उन दिनों की आवश्यकतानुसार आत्मरक्षा के लिए अस्त्र-शस्त्रों का उपयोग जानने के विचार से शैशवावस्था से ही उसने सैनिक-शिक्षा प्राप्त करनी आरम्भ कर दी होगी। अपने पिता की जागीर का प्रबन्ध करते समय विद्रोही जमीदारों के विरूद्ध उसने जो अभियान किये थे, उनसे ज्ञात होता है कि एक श्रेष्ठ सैनिक के गुण और विशेषतएँ उसके अन्दर थी और सैनिक-कार्य को वह अच्छी तरह समझता भी था। एक सैनिक के रूप में उसके अन्दर अमित साहस, अपूर्व शक्ति और असाधारण धैर्य था। एक जनरल के रूप में भी उसने प्रत्येक सैनिक कार्यवाही में अपनी श्रेष्ठ प्रतिभा और चातुर्य का परिचय दिया था। किसी सैनिक अभियान के समय उसे जहाँ-जहाँ ठहरना पड़ता था, वहाँ वह व्यूह रचना करता था और अपने आस-पास खन्दकें खुदवाता था जिससे किसी सम्भावित अचानक आक्रमण से पूर्व सुरक्षा रहे। उसने अपने शत्रु पर कभी सामने से आक्रमण नहीं किया। जो सैनिक चाले वह प्रायः व्यवहार में लाता था वे थी

शत्रु को बे-खबर रखना, उस पर अचानक हमला बोल देना, उसे झाँसा देकर किसी छिपे हुए मार्ग की ओर से ले जाना और वहाँ उस पर कई ओर से आक्रमण करना।

उसकी सैनिक कार्यवाहियाँ बड़ी शीघ्रता से संचालित होती थी और वह हमेशा इस ताक में रहता था कि शत्रु की सैनिक तथा मौलिक अवस्था से यथासम्भव लाभ उठया जाय। राजपूतों की भाँति वह एक ही लड़ाई के परिणाम पर अपना सब कुछ निछावर नहीं कर देता था। हाँ, एक बार जोधपुर के मालदेव के साथ लड़ाई में वह यह भी कर बैठा। किन्तु यहाँ भी वह एक चतुर चाल से साफ निकल आया। तुर्कों और अफगानों की भाँति वह भी विजय करने के विचार से युद्ध करता था और उसका यह विश्वास था कि अपने ध्येय की प्राप्ति के लिए बुरे-भले सभी साधन व्यवहार में लाने चाहिए।[54] सैनिक अभियानों की कठिनाइयों और अभावों को तथा भविष्य के सुख-दुखों को अपने सैनिकों के साथ भोगने के लिए वह सदा तैयार रहता था। वह अपने सैनिकों से अलग-अलग नहीं रहता था बल्कि उनके साथ घनिष्ठता रखता था।

चौसा की लड़ाई के पूर्व जब हुमायूँ के दूत उससे मिलने गये थे तो उन्होंने शेरशाह की बाँहे चढ़ाकर एक खाई खोदते हुए पाया। एक नेता में जो गुण और विशेषतएँ होनी चाहिए, वे उसमें थी। किसी नेता के आकर्षक व्यक्तित्व की तरह उसका व्यक्तित्व भी काफी आकर्षक था। उसके सैनिक भी उसके प्रति स्व, मिभक्ति और सेवा-भाव रखते थे।

शेरशाह के चरित्र में सबसे महत्वपूर्ण विशेषता थी न्याय के प्रति उसका श्रद्धा भाव। वह कहा करता था, ''न्याय करना धर्म है; यह बात मुसलमान तथा अन्य धर्मावलम्बी शासकों के लिए बराबर मान्य है।'' वादी-प्रतिवादी के विषय में अमूक बात में सत्य क्या है, इसकी छानबीन करना वह अपना कर्तव्य समझता था। सबसके लिए सदैव ही उसने एकसी न्याय-नीति बरती। अत्याचार करने वालों के प्रति, फिर चाहे वे उसके सगे-सम्बन्धी अथवा साथी सरदार ही क्यों न हों, उसने कभी रू-रिआयत नहीं की। आगरे में एक सुनार की पत्नी के प्रति शेरशाह के भतीजे ने जो बुरा भाव प्रदर्शित किया था और उसे शेरशाह ने जो दण्ड दिया था, उसका जिक्र हम पहले कर चुके हैं। यह हो सकता है कि यह बात अक्षरशः सत्य न हो, लेकिन फिर भी जनता का वह विश्वास की शेरशाह न्याय-कर्तव्य पालन करने में, फिर चाहे उसे अपने सगे-सम्बन्धियों को ही सजा क्यों न देनी पड़े, अत्यन्त कठोर था।

प्राचीन काल के राजाओं की भाँति ही शेरशाह भी दरिद्रों और अपाहिजों के प्रति अत्यन्त सुहृदय व्यवहार करता था। वह बहुत सा रूपया दान करना था। ज्ञात हुआ है कि वह एक रजिस्टर रखता था। जिसमें गरीब लोगों के नाम-पते लिखे जाते थे और इन लोगों के जीवन-निर्वाह का उचित प्रबन्ध किया जाता था। शेरशाह ने 'दान का लंगर' अपनी राजधानी में स्थापित किया, जिस पर पाँच सौ तोला स्वर्ण प्रतिदिन व्यय किया जाता था। उसके दरबार में जो भी जाता था उसे भोजन दिया जाता था। केवल इस प्रकार के दान में प्रतिवर्ष 18,25000 रूपये व्यय होते थे। छाया देने वाले और

फलदार वृक्षों से ढ़की हुई सड़कें और यात्रियों की सुविधा के लिए बनवायी गयी सरायों का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। इस प्रकार से जनोपयोगी कार्य उसने अपनी बहुसंख्यक प्रजा की सुविधा के विचार से ही किये थे। शाही फौजों के आने-जाने तथा शाही डाक जल्दी लाने और पहुँचाने में भी इनसे बहुत सहायता मिलती थी।

शेरशाह का उत्कर्ष और उसकी सफलताएँ ऐसी चकाचौंध करने वाली थी कि अधिकांश इतिहास लेखक उसके चरित्र के दूसरे पहलू को देखने में असमर्थ रहे हैं। सामान्य रूप से लोग यह अनुभव नहीं करते थे कि वह बड़ा ही चलता हुआ राजनीतिज्ञ था और अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए वह चालबाजियों और धोखाधड़ियों को प्रायः व्यवहार में लाता था। चुनार का दुर्ग उसने छल-छद्य से ही अपने अधिकार में किया था। अपनी वचनबद्धता को धता बताकर ही उसने रोहतासगढ़ पर अपना कब्जा कर लिया था। औरंगजेब की तरह वह भी छलपूर्ण नीति से अपने काम निकालता था। अपने प्रतिद्वन्द्वी मालदेव को उसने जाली पत्र तैयार करवाकर और उसके सरदारों में फूट डलवाकर पराजित किया था। एक राजनीतिक की हैसियत से शेरशाह के उत्कर्ष का कारण केवल उसकी योग्यता ही नहीं किन्तु उसकी चालाकी तथा सिद्धान्तहीनता भी है। शेरशाह मध्यकालीन भारत के शासकों में एक विशेष स्थान रखता है। उसकी तुलना मध्यकालीन भारत के महान सत्ताधिकारी अलाउद्दीन खलजी से की जा सकती है। शासक-प्रबन्धक और विजेता के रूप में अलाउद्दीन उससे निश्चय ही बढ़ा-चढ़ा था, किन्तु रचनात्मक राजनीतिज्ञता में वह उससे घटिया था। शेरशाह की संस्थाएँ जनोपयोगी थी

और उनके द्वारा निर्माण करने वालों का नाम भारतीय इतिहास में अमर हो गया। अकबर के साथ शेरशाह की तुलना करना अनुपयुक्त है क्योंकि एक व्यक्ति के रूप में अथवा एक शासक के रूप में अकबर उससे कहीं अधिक श्रेष्ठ था।[55]

यह कहना तो अत्युक्तिपूर्ण ही होगा कि शेरशाह की वह प्रथम मुसलमान सम्राट था जिसने अकबर महान के समान ही विरूद्ध मतावलम्बियों को एकता के सूत्र में बाँधकर भारत राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न किया था। इस बात का कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है कि शेरशाह भारत में एक राष्ट्र स्थापित करना चाहता था। सच बात तो यह है कि वह जानता ही नहीं था कि राष्ट्र का अर्थ क्या है। यह तर्क ठीक नहीं है कि चूँकि सिकन्दर लोदी के राज्य का वातावरण अभी तक विद्यमान था, अतः जजिया और गौहत्या क उन्मूलन का प्रयोग उस समय अनुपयुक्त था। यह स्मरण रखने योग्य है कि शेरशाह के सौ वर्ष पहले काश्मीर के जैन-उल-आबदीन (1420-1470 ई0) नामक सम्राट ने अपने धर्मान्ध तथा मूर्ति-विनाशक पिता की मृत्यु के बाद जजिया तथा गौहत्या को हटा दिया था, अतः कृतज्ञ जनता ने उसे काश्मीरी अकबर की उपाधि के विभूषित किया था। सच बात तो यह है कि शेरशाह ने भारत राष्ट्र के निर्माण का कभी स्वप्न भी नहीं देखा था। यह कहना अकबर के साथ अन्याय करना होगा कि उसके राज्याभिषेक के समय की अपेक्षा उसकी मृत्यु के समय हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्ध अधिक बिगड़े हुए थे अतः अकबर की नीति हानिकारक तथा अन्यायपूर्ण थी। यह सभी जानते हैं कि जब सत्य-अहिंसा तथा हिन्दू-मुस्लिम एकता के पुजारी महात्मा गांधी

के नेतृत्व में स्वतन्त्रता का आन्दोलन चल रहा था उस समय हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्ध अच्छे नहीं थे। इस समय की अपेक्षा तो उस समय ही इन दोनों के समबन्ध अच्छे नहीं थे। इस समय की अपेक्षा तो उस समय ही इन दोनों के सम्बन्ध अच्छे थे जब ब्रिटिश सत्ता अपनी चरमसीमा पर थी और देश में निराशा तथा भय का वातावरण छाया हुआ था। किन्तु इतिहास का कोई भी पक्षपात-रहित विद्यार्थी ऐसा नहीं होगा जो इसके लिए महात्मा गांधी को दोषी ठहराये।

हिन्दू-मुसलमानों के सम्बन्धों के अच्छे न होने का उत्तरदायित्व मुसलमानों पर है क्योंकि ये लोग अधिक साम्प्रदायिक, अधिक हड़प्पू और अधिक झगड़ालू हैं और सबसे परे वे भारत की अपेक्षा मुस्लिम देशों से अधिक प्रेम करते हैं। मुसलमान जाति जब तक अपनी पुरानी प्रभुता रखने में या नये तौर पर अपनी प्रभुता स्थापित करने में समर्थ रहती है तब तक वह समझौते में विश्वास नहीं करती है। शेरशाह राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की अपेक्षा उच्चकोटि की स्वार्थ-भावना से अधिक प्रेरित था किन्तु कुछ आधुनिक इतिहासकारों ने उसको इसके विरूद्ध समझ लिया है। इस बात का कोई प्रमाण नहीं मिला है कि अकबर के अतिरिक्त कोई भी भारतीय मुसलमान शासक ऐसा रहा होगा जिसमें इस देश की राष्ट्रीयता तथा देशभक्ति की भावना भरी हो। इसके अतिरिक्त एक बात और है कि भारत शेरशाह की मातृभुमि नहीं थी और हम देखते हैं कि दूसरे अफगान सम्राटों के समान उसने भी अपने देशवासियों को अफगानिस्तान से बुलाया था और केवल अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए ही नहीं अपितु कर्तव्य-भावना से प्रेरित होकर भी देश की भूमि को

उनके बीच बाँट दिया था।

परिश्रम, कर्तव्यवपरायणता, अनेक सुधार तथा न्यायप्रियता के कारण शेरशाह का नाम भारतीय इतिहास में प्रसिद्ध है। अकबर महान को छोड़कर किसी भी मध्यकालीन भारतीय सम्राट को इतना अधिक जन-कल्याण करने का श्रेय प्राप्त नहीं है। मनुष्यों के नेता, संस्थाओं के निर्माता, प्रशासक अथवा प्रवक्ता के रूप में वह अपने पूर्ववर्ती सम्राटों से श्रेष्ठ था। यद्यपि कुछ अफगान लेखकों तथा आधुनिक इतिहासकारों ने शेरशाह की प्रशंसा की है[56] तो भी उसका प्रशासन पूर्ण नहीं था, अतः वह आलोचना के परे नहीं है। फिर भी यह सर्वमान्य है कि उसने प्रजा के हित-साधन का यथासम्भव प्रयत्न किया था। लेखक वूल्जले हेग की इस सम्पत्ति से सहमत नहीं है कि "वह भारत के मुसलमान सम्राटों में सबसे महान था।" हाँ, इतिहास में उसका स्थान अवश्य ही बहुत ऊँचा है। उसका स्थान अकबर के दूसरे नम्बर पर है और डॉ0 कानूनगो ने ठीक ही लिखा है कि इतिहास में अकबर का स्थान शेरशाह के स्थान से अधिक ऊँचा है।

इस्लामशाह (1545-1553)

प्रारम्भिक जीवन

इस्लामशाह का असली नाम जलालखाँ था और वह शेरशाह का दूसरा लड़का था। राज्यारोहण के समय वह एक सुशिक्षित व्यक्ति और फारसी का अच्छा कवि समझा जाता था। इससे अनुमान है कि प्रारम्भिक वर्षो में उसे काफी उच्च शिक्षा दी गयी होगी। किन्तु मुख्य रूप से तो वह एक

सैनिक ही था। राजपद प्राप्त करने से पूर्व ही उसने अपनी उत्कृष्ट सैनिक योग्यता का कई अवसरों पर अच्छा परिचय दिया था। 1531 ई0 में चुनारगढ़ की उसने इस वीरता से रक्षा की थी कि मुगल सम्राट हुमायूँ उससे अत्यधिक प्रभावित हुआ था और जब दोनों पक्षों मे सुलह हो गयी तथा शेरशाह ने मुगल सम्राट के समक्ष अफगानी सैनिक-दल की सेवाएँ अपित की तो सम्राट ने इस सैनिक दल का चार्ज जलालखाँ को ही सँभालने का आग्रह किया। 1537 ई0 में गौड़ के घेरे में उसने प्रमुख भाग लिया और उसके बाद उसे बंगाल कें प्रवेश-द्वार तेलियागढ़ी की रक्षा करने के लिए भेज दिया गया, जहाँ उसने मुगल सेना को करारी हार दी। 1539 और 1540 ई0 में चौसा और कन्नौज के युद्ध-क्षेत्रों में शेरशाह की सेना की मुख्य टुकड़ी का नेतृत्व उसे सौंपा गया था। इन दोनों युद्ध-क्षेत्रों में ही उसने अपूर्व पराक्रम और उत्कृष्ट सैनिक योग्यता का परिचय दिया। रायसीन और जोधपुर के शासकों के ऊपर किये गये आक्रमणों में भी उसने अपने पिता के साथ सहयोग किया था। जब शेरशाह काजिंजर के घेरे में व्यस्त था, तो उस समय जलालखाँ को ही रीवा-विजय करने के लिए भेजा गया था, लेकिन शेरशाह की आकस्मिक मृत्यु के कारण यह कार्य सम्पन्न नहीं हो सका।

राज्यारोहण के पूर्व इस्लामशाह के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी कार्यो का हमें ठीक प्रकार ज्ञान नहीं है। लेकिन यह निश्चित है कि उसके पिता ने साम्राज्य की सुव्यवस्था और सुधार-योजनाओं को कार्यान्वित करने में उससे भी सहयोग सहायता ली होगी और इसलिए 1545 ई0 से पूर्व ही उसने प्रबन्ध सम्बन्धी यथेष्ट ज्ञान और अनुभव प्राप्त कर लिया होगा।

राज्यारोहण और आदिलखाँ से संघर्ष

जब शेरशाह की 22 मई, 1545 ई0 को कालिंजर में बुरी तरह जल जाने से मृत्यु हो गयी, तो उसका ज्येष्ठ पुत्र आदिलखाँ रणथम्भौर में था और कनिष्ठ पुत्र जलालखाँ कालिंजर से 85 मील उत्तर-पूरब में स्थित रीवा में था। यद्यपि शेरशाह ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को ही अपना उत्तराधिकारी नामजद किया था तथापि उसके सरदारों ने जलालखाँ को उसके लिए उपयुक्त समझा, क्योंकि जहाँ आदिलखाँ-आराम पसन्द और भोग विलासी था[57], वहाँ जलालखाँ परिश्रमी और अस्त्र-शस्त्र तथा सैन्य संचालन में कुशल था। साथ ही बादशाह की मृत्यु के समय कालिंजर के अधिक निकट भी वही था और यह विचार गया था कि वर्तमान स्थिति में राजपद अधिक समय खाली नहीं रखा जा सकता; इसीलिए ईसाखाँ हाजिब के नेतृत्व में सरदारों ने उसी को सम्राट बनाना निश्चित किया। फलस्वरूप जलालखाँ के पास शीघ्र ही वह सन्देश लेकर एक दूत भेज दिया गया कि आप यथाशीघ्र यहाँ पधारिए और अपने पिता का स्थान ग्रहण कीजिए। जलालखाँ 27 मई, 1545 ई0 को कालिंजर आ पहुँचा और उसी दिन उसका राज्याभिषेक उत्पन्न हो गया और उसने इस्लामशाह की पदवी धारण कर ली।

राजपद-प्राप्ति के पश्चात ही उसने कालिंजर के चन्देल शासक कीरतसिंह और उसके 70 प्रमुख अनुयायियों को मौत के घाट उतार दिया। अपने राज्याभिषेक के बाद वह आगरा पहुँचा। अपनी सेना को खुश रखने और उसका सहयोग समर्थन प्राप्त करने की दृष्टि से उसने सैनिकों और सैनिक कर्मचारियों को दो मास का वेतन नकद बाँट दिया। इसमें एक माह का वेतन

सबको पुरस्कारस्वरूप दिया गया था। उसके पश्चात उसने अपनी निजी सेना के 60000 सैनिकों की तरक्की कर दी, जिससे साधारण सैनिक अफसर बन गये और जो अफसर थे उन्होंने अमीर का दर्जा प्राप्त कर लिया। इस्लामशाह के इस अविचारपूर्ण कार्य से पुराना अमीर-वर्ग बहुत असन्तुष्ट हुआ। इन असन्तुष्ट अमीरों में से कुछ आदिलशाह से गुप्त रूप से जा मिले।

अध्याय-2

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. हुमायूँनामा- गुलबदन बेगम, पृ0 34
2. तारीख-ए-शेरशाही- अब्बास खां सारवानी- पृ040
3. तारीख-ए-शेरशाही- अब्बास खां सारवानी- पृ042
4. तारीखे हिन्दुस्तान-जमाउल्ला: दिल्ली 1875- पृ0 16
5. भारतीय मध्ययुग का इतिहास, ईश्वरी प्रसाद- पृ0 117
6. तबकात-ए दौलत-ए-शेरशाही, हसन अली खां पृ0 19
7. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डा0 के एल0 खुराना, पृ0 59
8. मुगलों का प्रान्तीय शासन, परमात्माशरण, पृ0 83
9. मध्यकालीन भारतीय इतिहास, वी0एस0, भार्गव, पृ0 209
10. मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, डा0 के0एस0 श्रीवास्तव और डा0 झारखण्डे चौबे, पृ0 317
11. मध्यकालीन भारतीय सामाजिक आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं, डा0 घनश्याम दास, पृ0 213
12. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, डा0 आशीर्वाद लाल श्रीवास्तव, पृ0 312
13. पंजाब में उर्दू: शेरानी महमूद, लाहौर- 1928, पृ0 417
14. मुगल शासन पद्धति; मदुनाभ सरकार, पृ0 315
15. मध्यकालीन भारत: एल.पी. शर्मा-पृ0 221
16. मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विास; डा0 रामनाथ, पृ0 212

17. मध्ययुग का इतिहास; ईश्वरी प्रसाद, पृ0–117

18. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति; गौरी शंकर हीराचन्द्र ओझा, इलाहाबाद, 1951, पृ0 319

19. यवन इतिहासकारों का भारत वर्णन; प्रो0 भगवती प्रसाद पांथरी, पृ0 421

20. प्राचीन काल से 1757 ई0 तक, भारतीय इतिहास, वी0एस0 भार्गव, पृ0 280

21. सिन्ध का इतिहास: तारीखे-ए-सिन्ध: मीर मुहम्मद मासूम, पृ0 412

22. मेवाड़, मुगल सम्बन्ध, गोपीनाथ शर्मा: पृ0 113

23. मध्यकालीन भारत: इरफान हबीब: पृ0 223

24. तारीख-ए-शेरशाही, अब्बास खां सारवानी: पृ0 27

25. तारीख-ए-शेरशाही अब्बास खां सारावानी, पृ0 27

26. तारीख-ए-फिरोजशाही, जिआउद्दीन बरनी, पृ0 261

27. तारीख-ए-शेरशाही, अब्बास खां सारवानी, पृ0 86

28. मुगलकालीन भू-राजस्व प्रशासन, नोमन अहमद सिद्धिकी, पृ0 280

29. भारत की सामाजिक एक्यू आर्थिक संरचना एक्म संस्कृत के मूलतत्व: राधेशरण: पृ0 412

30. शाहजहां काल का इतिहास (पादशाहनामा तीन भाग); मुहम्मद अमीन कासविन, पृ0 211

31. तारीख-ए-बंगला (बंगाल का इतिहास लेखक सजीमुल्ला)पृ0-72

32. तारीख-ए-फीरोजमाही जियाउद्दीन बर्नी, पृ0 112

33. मुएजान-ए-अफगानी (निमायन उल्ला), पृ0-237

34. हुमायूंनामा गुस बेदन बेगम, पृ0 144

35. हुमायुनामा गुलबंदन बेगम, पृ0 54

36. तारीख-ए-शेरशाही (अब्बास खां सारवानी), पृ0 58

37. तज किरात-उल-बाकियात जोहेर आपताबची, पृ0 113

38. मीरअबू अतुरबली: (तारीख-ए-गुजरात), पृ0 207

39. खगी, सुजान राय खुलासात-उल-तवारीख, पृ0 125

40. हबीबन्दूरफान-मध्यकालीन भारत, पृ0 241

41. हबीब इरफान, मध्यकालीन भारत, पृ0 242

42. मध्यकालीन मास का इतिहास अशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृ0 112

43. हबीब इरफान मध्यकालीन भारत पृ0 140

44. सिद्दीकी, नोमेन अहमद, मुगलकालीन भू-राजस्व प्रशासन, पृ0 128

45. सिंह, ओमप्रकाश मुगलकालीन भारत का आर्थिक इतिहास, पृ0 196

46. मध्यकालीन भारत का इतिहास, आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, पृ0 51

47. तारीख-ए-शेरशाही, अब्बास खां सारवानी तथा मुन्तखब-उल-तबारीख अब्दुलकादिर बदायूंनी पृ0 102

48. H.N. Nelson Catalogue of the coins in the India, Muesum Calcutta, Vol-III, Peg. 115

49. S.H. Holivala : Historical Studies in Mughal Nume's Maties; Peg. 138

50. C.J. Roders: Mughal copper coins; Page. 141

51. M.L. Dames : Some Coins of the Mughal Emperors. Peg. 133

52. प्रसाद, ईश्वरी: मध्ययुग का इतिहास पृ0 172

53. मध्यकालीन भारतीय संस्कृति खुराना, के0एस0, पृ0 181

54. मुगलों का प्रान्तिय शासन, परमात्मा सरन पृ0 198

55. मध्यकालीन भारतीय इतिहास, भार्गव बी0एस0 पृ0 200

56. भारत का सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूल तत्व, राधेशरण, पृ0 113

57. मध्यकालीन भारत शर्मा स्त्न॰ पी0 पृ0 123

तृतीय अध्याय

15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी में भारत की आर्थिक दशा

अध्याय–तृतीय

15 वीं तथा 16 वीं शताब्दी में भारत की आर्थिक दशा

ग्रामीण समाज

एक भारतीय गाँव में कुछ झोपड़ियाँ, एक कुआँ एक तालाब और थोड़ी खुली जगह बगीचे के लिए होती थी।[1] कौटिल्य के अनुसार किसी गाँव में सौ परिवार से कम या पाँच सौ परिवार से अधिक नहीं होने चाहिए और उसकी एक प्राकृतिक सीमा पेड़ों, नदियों, पहाड़ियों और झोपड़ियों से घिरी हुई होनी चाहिए। गाँव में का मुख्य साधन खेती था। वहाँ शूद्रों का रहना आवश्यक था। गांव में जिस भूमि पर खेती नहीं की जा सकती थी उसका प्रयोग चारागाह की तरह होता था। गाँवों में अधिक लोग रहते थे, जैसा आजकल भी है।

मिनहाजूससिराज ने लिखा है कि गोंडवाना में लगभग 20 हजार गाँव थे।[2] ऐसा अनुमान किया जाता है कि मध्ययुग के भारत की आबादी 10 से 14 करोड़ थी,[3] डा0 ए0एल0 वाशम इस आँकड़े को ठीक समझते हैं, यद्यपि यह प्रमाण तर्क संगत प्रतीत नहीं होता है।[4] सल्तनत काल में ग्रामीण जीवन में मुसलमानों के आगमन से कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ। गाँव के लोग सदा से भूस्वामी की दया पर आश्रित थे। राजा हर्ष के बाद यह पद्धति रही कि भूमि, सैनिक तथा प्रशासनिक अधिकारियों को दी जाने लगी।[5]

इन जागीरदारों के अधिकार असीमित थे। वे खेतिहर दासों और श्रमिकों से बेगार लेते थे। प्राचीन भारत में किसानों को एक स्थान से दूसरे स्थान जाने को स्वतन्त्रता रहती थी, जबकि यूरोप में ठीक इसके विपरीत स्थित थी। वहाँ जमीन के मालिक खेतिहर दासों को खेती में कार्य करने के लिए विवश करते थे।[6] बाबर के अनुसार भारत में मध्ययुगीन भारत में गाँवों की व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। बाबर ने लिखा है, ''हिन्दुस्तान में गाँव और पुरवा और नगर एक क्षण में वीरान हो जाते हैं और फिर बस जाते हैं। यदि किसी बड़े नगर में से लोग भागते हैं तो वे इस प्रकार जाते हैं कि एक या डेढ़ दिन में वहाँ उनका रहने का कोई चिन्ह भी नहीं रहता।[7]

मध्ययुग में राजा केवल युद्ध करता है पर शासन नहीं करता। वास्तविक शासन तो जागीरदार और जमींदार करते हैं, जो एक प्रशासनिक अधिकारी की तरह नहीं बल्कि स्वतन्त्र शासक की तरह आचरण करते हैं।[8] डॉ0 लल्लन जी गोपाल के अनुसार मध्ययुग में उत्तर भारत के कुछ स्थानों में खेतिहर दासों और जागीरदारी प्रथा थी। डा0 आर0 एस0 शर्मा के अनुसार उस समय गांवों की उसमें रहने वाली आबादी के साथ जागीरदारों को दिया जाता था।[9] जागीरदारों का कृषकों के साथ साथ सम्बन्ध की विस्तृत जानकारी नहीं मिलती। ऐसा अनुमान किया जाता है कि कृषकों की वही स्थिति रही होगी जो बारहवीं और तेरहवीं सदी में यूरोप के खेतिहर दासों की थी।[10]

कभी-कभी क्षेत्रीय और राजवंशीय संघर्ष भयंकर युद्ध में बदल जाते थे, जिससे कि दोनों दल क्षत-विक्षत की नीति का अनुसरण करते थे, जिसके कारण गाँव और नगर नष्ट हो जाते थे।[11] कल्हण ने कश्मीर में इस तरह के युद्धों का विवरण दिया है।[12] ऐसी परिस्थिति में जागीरदार क्रूर और भ्रष्ट हो जाते थे। प्राचीन भारत में राजा को श्रमिकों से बेगार लने का अधिकार था। डा0 आर0 एस0 शर्मा ने लिखा है कि उड़ीसा में श्रमिकों की कमी के कारण वहाँ के रहने वाले लोगों से बेगार ली जाती थी।[13] कौटिल्य के अनुसार राजा को राज्य में रहने वाले लोगों से बेगार ली जाती थी।[14] कौटिल्य के अनुसार राजा को राज्य में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति से राज्य की भलाई के लिए बेगार लेने का अधिकार था। परन्तु उत्तरी भारत के सभी क्षेत्रों में जागीरदारी और खेतिहर दासों की प्रथा प्रचलित नहीं थी। राजस्थान, आसाम और उड़ीसा में कहीं-कहीं कुछ दृष्टान्त मिलते हैं जिससे पता चलता है कि खेतिहर दास कृषि-कार्य के लिए होते थे। भारत के दूसरे भागों में जागीरदारी की प्रथा इसलिये नहीं थी कि राजा की शक्ति का पूर्णत: ह्रास नहीं हुआ था और भारत का दूसरे देशों से व्यापारिक सम्बन्ध बना रहा। कश्मीर में बेगार को रूद्यभारोघि, कहा जाता था जिससे नकद या वस्तु के रूप में सरकार को भुगतान करने पर मुक्ति मिल जाती थी।

निर्धन व्यक्तियों का शोषण जागीरदार, सरदारी कर्मचारी, व्यापारी और महाजन करते थे। व्यापारियों का वाह्य व्यवहार निर्धनों के प्रति मृदु

था, परन्तु वह वास्तव में उनकी सारी सम्पत्ति छीन लेना चाहते थे।[15] जब भी अकाल, बाढ़ या अन्य दैवी आपदायें आती थी तो व्यापारी अधिक से अधिक निर्धनों का शोषण करके लाभ उठाने का प्रयास करते थे।[16] ये व्यापारी नाप तौल में भ्रष्ट तरीके अपनाते थे। आश्वयक वस्तुओं की जामाखोरी करते थे।[17] ब्राह्मण भी भ्रष्ट होते थे और लोगों को धोखा देते थे।[18]

अलबरूनी के विवरण से यह नहीं पता चलता कि हिन्दुओं की आर्थिक दशा खराब थी। दूसरे समकालीन लेखक जैसे इब्नबतूता, शिहाबुद्दीन, अब्बास अहमद (मसालिकुल आबसार के लेखक) अमीर खुसरों, शम्शसिराज अफीफ और जियाउद्दीन बर्नी कहते हैं कि हिन्दू सम्पन्न थे। इब्नबतूता ने विस्तार से लिखा है कि किसान एक फसल काटने के बाद उसी खेत में दूसरी फसल बो देते थे, क्योंकि उनकी भूमि बड़ी उपजाऊ थी। चावल की उपज वर्ष में तीन बार होती थी। शम्शसिराज अफीफ ने उड़ीसा के लोगों की समृद्धि का विवरण दिया है। उसने लिखा है कि वहाँ अनाज और फल बहुतायत में होता था, जानवरों की संख्या इतनी अधिक थी कि कोई उसे लेना नहीं चाहता था।

जियाउद्दीन बर्नी अपनी इस प्रसन्नता को छिपाने की कोशिश नहीं करता कि अलाउद्दीन ने हिन्दुओं को निर्धन बनाने के लिए कई नियम बनाये थे। मुसलमानों के आक्रमण के कारण बहुत से नगरों के लोग सुरक्षार्थ भाग

कर गाँवों में आ गये, जहाँ उन्हें मुसलमानों के अत्याचार से मुक्ति मिली।[19] वे लोग भी जिनकी उपस्थिति नगरों में उनके उद्यमों के विचार से आवश्यक थी, भागकर पड़ोस के गाँव में चले गये। प्राचीन और मध्ययुगीन भारत में भू-राजस्व राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। इस युग में ग्रामीण समाज उन वस्तुओं की उत्पत्ति करता था जिनकी आवश्यकता क्षेत्रीय लोगों को अधिक थी। डॉ0 के0 एम0 अशरफ का कहना है कि "मध्ययुग में अधिक उत्पत्ति के लिये तरीकों में सुधार करना या समान वितरण की नीति राज्य सरकार की नहीं थी। राज्य का उद्देश्य था कि लोगों का जीवन स्तर निम्न रहे और वे आर्थिक संकट में फँसे रहे। यही कारण था कि मुस्लिम शासकों को प्रशासनिक कार्यों में बड़ी सुविधा हुई।[20]

सल्तनत काल में मुस्लिम शासकों ने ग्रामीण लोगों की समृद्धि के लिये कोई कार्य नहीं किया। अलाउद्दीन ने दक्षिण को विजय कर वहाँ का धन लूटा, गाँवों में काम करने वाले सरकारी कर्मचारी खूत, मुकद्दम और चौधरी के विशेषाधिकारों को समाप्त कर दिया और उनके उपर कर लगाये। उसके इस कार्य से गाँवों के लोगों को उनके आर्थिक जीवन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ा, जिसका उल्लेख विदेशियों ने अपने विवरण में किया है।[21] गयासुद्दीन तुगलक के समय में भी गाँव के लोगों की दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। सुल्तान का निर्देश था कि गाँव वालों के पास केवल इतनी सम्पत्ति होनी चाहिए जिससे वे किसी प्रकार अपना जीवन निर्वाह कर सकें और वे

अभिमानी न बन जायें और न इतने निर्धन हो जायें कि गांव में खेती करना छोड़कर अन्यत्र कहीं चले जाएं। मुहम्मद तुगलक ने किसानों पर बहुत कर लगाये, जिसको वे अदा न कर सके और जंगलों में भाग गये, जहाँ उनका शिकार जंगली जानवरों की तरह किया गया।[22] उसने अधिक उपज के लिये किसानों को सरकारी सुविधा प्रदान करने के उद्देश्य से एक पृथक विभाग दीवाने अमीरे को ही खोला। इस विभाग का यह भी काम था कि बन्जर भूमि को खेती योग्य बनाया जाय।[23] परन्तु अनुकूल परिस्थितियाँ न होने के कारण सुल्तान को इस कार्य में सफलता नहीं मिली।

फीरोज तुगलक किसानों के प्रति उदार था, उसने खेती की उपज बढ़ाने के लिये कार्य किया।[24] तैमूर के आक्रमण से भू-राजस्व व्यवस्था पूर्णतया समाप्त हो गई और उसके चले जाने के बाद करों का निर्धारण मनमानी ढ़ंग से किया गया, जिससे ग्रामीण समाज को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।[25] फलस्वरूप किसाने इक्तादार या हिन्दू सरदार की दया पर निर्भर रहने लगे।[26]

भारतीय ग्रामीण समाज की जानकारी बाबरनामा और बर्नी, अफीफ और अब्दुल्ला के विवरणों से मिलती है। बाबरनामा के अनुसार गाँवों के लोग चौदहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी में आराम का जीवन व्यतीत करते थे, क्योंकि उनकी उपजाऊ भूमि में काफी उपज होती थी।[27] देश में वर्षा अधिक होती थी। इसके अतिरिक्त लोग सिंचाई के लिये कृत्रिम साधनों का

प्रयोग करते थे। बर्नी, अफीफ और अब्दुल्ला ने तुगलुक काल में वस्तुओं के मूल्य में गिरावट के विषय में लिखा है। गाँवों के लोग अपनी इच्छानुसार आसानी से एक स्थान छोड़कर दूसरे स्थान चले जा सकते थे।[28] वे विपत्ति के समय घने जंगलों में सुरक्षित रूप से रह सकते थे।[29] डा० के० एस० लाल ने लिखा हे कि यही कारण था कि मुस्लिम आक्रमणकारी गाँवों में अपना शासन स्थापित नहीं कर सके और ग्रामीण समाज पर मुस्लिम प्रशासन का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। यदि कभी मुस्लिम आक्रमण का कोई खतरा गाँवों पर आता था तो ग्रामीण लोग भागकर दूसरे स्थानों को चले जाते थे और खतरा टल जाने पर फिर वह अपने पुराने स्थान पर आ जाते थे।[30]

समकालीन लेखकों ने ग्रामीण जनता की समृद्धि के विषय में जो अपना विवरण दिया है वह ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाता। गाँवों के लोग अपने भू-स्वामी की दया पर आश्रित रहते थे। उनका जीवन ऐसी परिस्थिति में बहुत ही कष्ट का रहा होगा। किसानों को अपनी उपज का अधिक भाग अपने भू-स्वामी को दे देना पड़ता था और उनके पास उनकी आवश्यकता से अधिक अनाज नहीं रहने दिया जाता था ऐसी परिस्थिति में किसानों को अपने श्रम का कोई लाभ नहीं मिलता था। अलाउद्दीन खिल्जी के बाजार नियन्त्रण के विष्ज्ञय में बर्नी व्यंगात्मक ढ़ंग से कहता है कि वस्तुओं का मूल्य इतना कम था कि 'ऊँट एक दाम में मिलता था लेकिन प्रश्न यह था कि दाम कहाँ से आवे।'

मुगलों के आने के बाद गाँवों की स्थिति खराब होने लगी। डॉ० इरफान हबीब ने लिखा है कि इसका एकमात्र कारण यह था कि मुगल प्रशासन ने करों में फिर उत्तरोत्तर वृद्धि करने की नीति अपनाई।[31] मुगल काल में थट्टा (सिंध) के किसानों को अपनी उपज का आधा भाग कर के रूप में दे देना पड़ता था। अकबर के समय में कश्मीर में भूमि कर की दर 1/3, थी, लेकिन वास्तविक रूप में उपज का 2/3 भाग वसूल किया जाता था। सन् 1629 में गुजरात के किसानों से उपज का 3/4 भाग कर के रूप में वसूल किया जाता था।[32] दक्षिण में किसानों की स्थिति बहुत खराब थी। नूनिज के अनुसार वहाँ किसानों को केवल उपज का 1/10 भाग उनके पास रहने दिया जाता था और शेष राज्य को दे देना पड़ता था।[33] यही कारण था कि दक्षिण के किसान राज्य द्वारा किये गये अत्याचारों से अब उब कर अपने घरों को छोड़कर पड़ोसी राज्य में चले जाते थे।[34] औरंगजेब के समय में जागीरदारों को निर्देश दिया गया कि किसानों से उपज का आधा भाग वसूल किया जाय, परन्तु वास्तव में इससे अधिक वसूली की गई। इस प्रकार मुगलों के समय ग्रामीण समाज की स्थिति खराब हो गई। सत्रहवीं सदी के किसानों की स्थिति के विषय में डॉ० ताराचंद ने लिखा है कि मुगल राज्य का उद्देय 'आर्थिक कर' वसूल करना था, जिससे किसानों के पास उनकी आवश्यकता से अधिक कुछ भी न बचे।[35]

सल्तनत काल में करों की वसूली बड़ी कड़ाई के साथ की जाती थी। अलाउद्दीन ने बकाया कर की पूर्ण रकम वसूल करने के लिए एक पृथक विभाग खोला, जिसका नाम दीवाने मुस्तखराज था। यदि सरकारी कर्मचारी अर्मिल कर्किन किसानों से कर की वसूली में उदारता दिखाते तो उनको दण्डित किया जाता था। इब्नबतूता ने लिखा है कि मुहम्मद तुगलक करों की वसूली सख्ती से करता था।[36] मुगल शासकों ने भी करों की वसूली कड़ाई से की। यह प्रचलित पद्धति थी कि जो किसान भाग जाते थे उनकी बकाया रकम उनके पड़ोसियों से वसूल की जाती थी। यह भी कहा जाता है कि मुस्लिम शासकों ने अधिक अन्न की उपज के लिये उपाय किये, क्योंकि यह राज्य की आय का प्रमुख स्रोत था। मुस्लिम शासकों ने वस्तुओं के मूल्य कम करने के लिये जो नियम बनाये उससे ग्रामीण समाज को अधिक हानि हुई। कृषकों का अधिक अनाज पैदा करने का उत्साह समाप्त हो गया। इससे उनका जीवन स्तर गिर गया और वे जीवन के प्रति नीरस और उदासीन हो गये।[37] वस्तुओं के मूल्य में गिरावट फीरोज तुगलूक और सिकन्दर लोदी के समय में भी बनी रही।[38] मुगल काल में चीजों की कीमत बढ़ गई, इससे भी ग्रामीण समाज को क्षति पहुँची।

इसके अतिरिक्त मध्य युग में गाँव के लोगों को मुस्लिम शासकों के निर्देश पर सैनिकों ने लूटा।[39] चूंकि उस समय सेना में खाद्यान्न की पूर्ति और वितरण की समुचित व्यवस्था नहीं थी, इसीलिए सिपाहियों को अपने लिये

खाने और घोड़ों के लिये चारे की व्यवस्था स्व्यं करनी पड़ती थी इससे गाँव के लोगों की बड़ी क्षति हुई। जब भी राज्य सरकार जागीरदारों पर अधिक कर लगाती थ्री वे इसे किसानों से अतिरिक्त कर के रूप में वसूल कर लेते थे। इस प्रकार किसानों पर कर का अधिक बोझ था। बर्नियर ने लिखा है कि मुगल प्रशासन ने इस भय से कि कहीं किसानों का समर्थन राज्य को न मिले, उनको स्थिति सुधारने का प्रयास किया और करों में वृद्धि की।[40] सल्तनत काल में भी इसी तरह की व्यवस्था रही होगी। बाबर ने किसानों की दयनीय दशा का वर्णन करते हुए 'लंगोटी' और 'खिचड़ी' शब्दों का उल्लेख किया है, जिसका प्रयोग गाँव के लोग करते थे।[41]

गाँव के लोगों को निर्धन बनाने की नीति आलउद्दीन खल्जी ने प्रारम्भ की और बाद के मुस्लिम शासकों ने इसको अपनाया।[42] देश में दालें, गेहूँ, बाजरा, जौ, चावल, मटर, गन्ना तेल के बीज और रूई प्रमुख फसलें थी। अनाज भण्डार गृह (खत्ती) में रखा जाता था। फलों में आम, अंगूर, केला, अनार, खरबूजा, सेव, आड़, सन्तरे मुख्य थे। नारियल समुद्र तट के क्षेत्रों में पाया जाता था। दिल्ली के सुल्तान अच्छे फलों की पैदावार बढ़ाने में रूचि लेते थे। फीरोज तुगलक ने 12 सौ बाग दिल्ली के समीप लगवाये, जिससे राज्य की वार्षिक आय 1 लाख 80 हजार टका बढ़ गई।[43] सिकन्दर लोदी ने जोधपुर के अनारों की प्रशंसा की। उसका कहना था कि ईरान में भी ऐसे अनार मिलना मुश्किल था।[44] आसान में चन्दन और अन्य सुगन्धित लकड़ी

पैदा की जाती थी। गुजराती मिर्च, अदरक और दूसरे मसालों की उपज के लिए प्रसिद्ध था।[45]

गाँव के जो लोग खेती नहीं करते थे। वे दूसरे उद्योग-धन्धों में लगे थे। जो अधिकतर खेतों की उपज पर आधारित थे जैसे रस्सी, टोकरी, गुड़, तेल, इत्र बनाना आदि। डॉ० अशरफ का कथन है कि वे उद्योग परम्परागत वंशानुगत थे।[46] उनके औजार और काम करने का तरीका अपरिष्कृत था और उत्पादन बहुत कम था। इन उद्योग धन्धों में तैयार किया हुआ माल बहुत अच्छा होता थ जो कारीगरों की कुशलता और अनुभव का परिचायक था। परन्तु उनको इस अच्छे उत्पादन के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं मिला। इन कुशल कारीगरों का सामाजिक प्रतिबन्धों और सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार का सामना करना पड़ा, जिससे ग्रामीण शिल्पकारों की प्रगति न हो सकी।[47] कहा जाता है कि इस्लाम के सम्पर्क में आने से कारीगरों के सामाजिक प्रतिबन्ध बहुत अधिक कम हो गये थे। लेकिन ज्यों-ज्यों समय बीतता गया यह परिवर्तन उनके समाज से विलीन हो गया और वे जाति प्रथा में विश्वास करने वाले रूढ़िवादी और संकुचित विचारधारा के हो गये।[48]

गाँवों के अधिकतर उद्योगों में गुड़, सुगन्धित वस्तुएं, मदिरा आदि का बनाना था जो खेतों की उपज पर आधारित था। गाँवों में लोहार, जुलाहे, सुनार, धनुष बनाने वाले और संगीत सम्बन्धी यंत्र बनाने वाले होते थे।[49] कुछ लोग टोकरी, रस्सी, मिट्टी के बर्तन और चमड़े का मोट बनाने का भी

काम करते थे। किसान अपने परिवार के साथ अपने खेत में कठिन परिश्रम करता था उसकी उपज का अधिक भाग करों की अदायगी में चला जाता था, जिससे उसका जीवन ऋणों में बीतता था। यही स्थिति गाँव में रहने वाले दूसरे वर्गो की भी थी। मोरलैण्ड का कहना है कि साधारण किसान की स्थिति ब्रिटिश कालीन भारत के किसान की स्थिति से बहुत खराब थी।[50] मोरलैण्ड की अंग्रेजी शासन के प्रति निष्ठा के बावजूद उसका कथन बहुत ठीक मालूम पड़ता है।

एक यूरोपीय विद्वान का कहना है कि जहाँगीर के समय में किसानों की स्थिति बहुत खराब थी। उनके घर में केवल दुःखों और विपत्तियों को स्थान था।[51] कश्मीर के लोग मोटा चावल खाते थे।[52] बिहार के ग्रामीण केसारी दाल खाने को बाध्य होते थे, जिससे लोग रोग-ग्रसित हो जाते थे।[53] मालवा के लोगों को गेहूँ के आटे की व्यवस्था करना बहुत कठिन था इसीलिए वे ज्वार के आटे का प्रयोग करते थे।[54] गाँवों के लोग भोजन में अनाज के अलावा सब्जी खाते थे। उड़ीसा, सिंध और कश्मीर में मछली खाई जाती थी।[55] मांस का सेवन बहुत कम किया जाता था। जिस स्थान पर मुस्लिम गवर्नर होता था वहाँ माँस की दूकानें थी, परन्तु जहाँ केवल हिन्दू बनियाँ रहते थे, वहाँ मांस की दुकाने नहीं थी। मुगल काल में घी का प्रयोग अधिक था। आगरा, बंगाल और पश्चिमी भारत में पौष्टिक खाद्य के रूप में यह प्रयोग में लाया जाता था।[56]

ट्रेवर्नियर का कहना है कि छोटे से छोटे गाँवों में शक्कर या शर्बन बहुतायत से देखने में मिलती थी।[57] इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि गाँव के लोग गुड़ का प्रयोग साधारणतः अधिक करते थे। मोरलैण्ड ने लिखा है कि अकबर के समय में नमक का उपयोग ग्रामवासी कम करते थे, क्योंकि गेहूँ की अपेक्षा वह बहुत महँगा था।[58] बंगाल और आसाम में नमक की बहुत कमी थी, गाँवों के लोग नमक के स्थान पर एक कड़वी वस्तु, जो केले के छाल से निकाली जाती थी, प्रयोग में लाते थे।[59] मसाले भी अपेक्षाकृत महँगे थे। इसका प्रयोग समुद्र तट पर रहने वाले लोग अधिक करते थे।[60]

मुगल काल में ग्रामीण जनता निर्धनता की विषय में यूरोपीय विद्वानों ने प्रकाश डाला है। आगरा में लोग इतने निर्धन थे कि अधिकतर लोग नंगे रहते थे। ये केवल गुप्तांगों पर एक कपड़े का टुकड़ा लपेटे रहते थे। फिच ने बनारस के विषय में लिखा है कि जाड़े में लोग ऊनी कपड़े के स्थान पर रूई की बण्डियाँ पहनते थे।[61] बंगाल के विषय में अबुल फज्ल ने लिखा है कि अधिकांश स्त्री पुरूष नंगे रहते थे, वे लूंगी के सिवा कोई वस्त्र नहीं पहनते थे।[62] उड़ीसा में स्त्रियाँ केवल गुप्तांगों को पेड़ के पत्तों से ढ़ंके रहती थी और नंगी रहती थी। कश्मीर में लोग रूई के कपड़ों का प्रयोग नहीं करते थे। वे ऊनी कपड़े (पट्ट) पहना करते थे जिन्हें वे कभी धोते नहीं थे। उसको तीन या चार वर्षो तक पहनते थे जब तक वे फट न जाएं।

समकालीन लेखकों के विवरणों से पता चलता है कि गाँव के लोग त्योहार के मनाने, धार्मिक कृत्यों, तीर्थयात्राओं, विवाहों और अत्येष्टि आदि संस्कारों में बहुत अधिक व्यय करते थे। इस कारण वे सदैव ऋण में रहते थे। एक यूरोपीयन विद्वान ने गुजरात का दृष्टान्त देते हुए लिखा है कि अच्छी फसल के बावजूद वहाँ रहने वाले लोगों ने अपना संचित धन त्योहारों के मनाने में खर्च कर दिया, जिसके लिए ईश्वर ने उन्हें भीषण अकाल (1630-32) की स्थिति से दण्डित किया।[63]

डॉ0 इरफान हबीब ने लिखा है कि गांवों की उपज नगरों में भेजी जाती थी, जिससे वहाँ के लोग लाभान्वित होते थे। लेकिन इसके बदले में गांव के लोगों को नगरों से कोई लाभ नहीं मिलता था।[64] मुगल काल में ग्रामीण जनता को तीन वर्गों में विभक्त किया जा सकता है- 1. जमींदार, महाजन और गल्ले के व्यापारी। 2. धनी कृषक और 3. खेतिहर किसान, जो अधिक संख्या में होते थे। इसके अतिरिक्त श्रमिक होते थे, जो खेतों में काम करते थे, यद्यपि उनके पास अपने खेत होते थे। वे खेतों में काम करते थे और अपनी मजदूरी लेते थे, जैसे चमार, धानुक आदि। ये लोग अजमेर में 'थोरी' और दूसरे स्थानों में बालाहार के नाम से पुकारे जाते थे। इनका काम बोझा ढ़ोना और पथ-दिग्दर्शक का कार्य करना था।[65] यदि किसी किसान के पास अधिक खेत होते थे तो उसे भूमि विहीन श्रमिकों की सहायता लेनी पड़ती थी। ये श्रमिक समाज में दलित वर्ग के होते थे।[66]

डॉ0 इरफान हबीब के अनुसार मुगल काल में प्रत्येक गांव एक आर्थिक और सामाजिक ईकाई था। वहाँ एक ही जाति के लोग रहते थे। एक गांव में किसान एक ही जाति के होते थे, यद्यपि किसानों में कई जातियों के लोग होते थे।[67] दोआब में बहुत से गांव अलग-अलग जातियों के थे, जैसे ठाकुर, जाट, अहीर, गूजर आदि। एक गांव में एक ही भाईचारे के लोग रहते थे, जिससे उनका संगठन बहुत शक्तिशाली था।[68] कुछ लोग गाँव के भाईचारे में नहीं थे और न उस गांवों में रहते थे। परन्तु उस गांव के खेतों में काम करते थे। ऐसे लोगों को 'पेंकारत' कहा जाता था। खेतों पर सामूहिक रूप से किसी वर्ग विशेष का अधिकार नहीं था। किसान का अधिकार केवल व्यक्तिगत था।[69] ज्यों-ज्यों अमीर और गरीब किसानों के बीच की खाई बढ़ती गई, गांवों में भाईचारा और आपसी मेल समाप्त हो गया। ऐसा अनुमान है कि धनी वर्ग के किसान निर्धनों पर अपना प्रभुत्व जमाये थे।

गाँवों का मुखिया उत्तर भारत में 'मुकद्दम' और दक्ष्जिण भारत में 'पटेल' के नाम से जाना जाता था। किसी-किसी गांव में एक से अधिक मुखिया होते थे। ऐसे दृष्टान्त मिले हैं जहाँ एक गांव में सात मुखिया थे। गांव का मुखिया स्वयं एक किसान होता था, लेकिन जब पदों का क्रय-विक्रय होने लगा तो एक नगर का रहने वाला भी गांव का मुखिया हो सकता था।[70] उसे सरकारी अधिकारी नहीं कहा जा सकता, लेकिन कर्तव्यों के पालन न करने पर उसे हटा दिया जाता था। कालान्तर में ग्रामवासियों और मुखिया के बीच

मतभेद बढ़ गया। मुखिया गाँव पर अपने अधिकार जताने लगा और जमींदार के सदृश अपने अधिकारों का प्रयोग करने लगा। गाँव में पटवारी होता था, जो गांव की जमीन और लगान वसूली का हिसाब रखता था वह 'हिन्दवी' और क्षेत्रीय भाषा में हिसाब रखता था। अबुल फजल के अनुसार पटवारी गांव वालों का कर्मचारी था, लेकिन राज्य सरकार की तरफ से उसको कुछ मिलता था। अकबर के समय में उसका गाँव की लगान की वसूली का 1 प्रतिशत कमीशन दिया जाता था।[71] ऐसे दृष्टान्त मिलते हैं कि पटवारी गांव के लोगों को सताता और आतंकित करता था।[72]

जमींदार

मुगल काल में जमींदार एक अधीन सरदार होता था। उसका केन्द्र द्वारा सीधे शासित प्रदेश में कोई स्थान नहीं था।[73] डॉ0 परमात्मा शरण भी इस विचार से सहमत है, लेकिन वे यह नहीं मानते कि मुगल साम्राज्य में प्रत्येक पर जमींदार थे। तथ्यों के विश्लेषण से पता चलता है कि[74] जमींदार केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश मे भी हाते थे। 16 वीं और 17 वीं शताब्दी के सरकारी कागजात से पता चलता है कि पूरे मुगल साम्राज्य में जमींदार होते थे। आगरा, देहली, पंजाब और अजमेर केन्द्र द्वारा शासित प्रदेश थे। इन प्रान्तों में जमींदार का उल्लेख मिलता है।

जमींदार का शाब्दिक अर्थ है भूमि पर अधिकार रखने वाला। 14 वीं सदी में बर्नी और अफीफ ने जमींदार शब्द का प्रयोग अपने विवरणों में किया

है।[75] अबुल फज्ल ने जमींदार के लिए 'बूमि' शब्द का प्रयोग यिका है। परन्तु धीरे-धीरे जमींदार शब्द का प्रयोग अधिक किया जाने लगा। सत्रहवीं सदी जमींदार के लिए तालूका या तालुकादार शब्द का प्रयोग जमींदारी और जमींदार के लिए किया जाने लगा।[76] जमींदार के लिए 'मालिक' शब्द का भी प्रयोग किया जाने लगा और दस्तावेज में मिल्कियत (मालिक के अधिकार) शब्द को इस्तेमाल किया जाने लगा।[77] जमींदारी गांव से सम्बन्धित थी न कि खेत से। इसका सम्बन्ध मुगल काल में किसानों से पृथक ग्रामीण वर्ग से था। सम्पूर्ण मुगल साम्राज्य में 'रैयती' और 'जमींदारी' गांवों का विभाजन था। दूर के प्रान्त गुजरात में भी भूमि 'रैयती' गांव और जमींदार के तालुका में बंटी हुई थी। जमींदार अपने गांव या तालूका की आय, जिसे 'बांठ' कहते थे, अपने पास रख लेता था और रैयती गांव की आमदनी राजकोष में जमा करता था। परन्तु कुछ समय बाद जमींदार रैयती गांव पर भी अतिरिक्त कर (खिराज) लगाने लगे और अपना प्रभूत्व जमाने लगे।

यदि सभी गांव 'रैयती' हो या 'जमींदारी-' हो तो अनुमान लगाया जा सकता है कि जमींदारों और किसानों के अधिकार भूमि पर अलग अलग रहे होंगे। इससे तात्पर्य यह है कि जहाँ जमींदार के अधिकार होंगे वहाँ किसानों के अधिकार नहीं होंगे और जहाँ किसानो के अधिकार होंगे वहाँ जमीदारों के अधिकार नहीं होगें। जमींदार का अपनी जमीन पर पूरा अधिकार था। वह अपनी स्वेच्छा से जिसको चाहे खेती करने के लिए दे सकता था।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि किसानों को बेदखल करने का जमींदार का अधिकार वैधानिक था। परन्तु बहुत सी बंजर भूमि के रहते हुए जमींदार किसानों को अपने खेतों पर बनाये रखना चाहते रहे होंगे न कि उन्हें हटाना।[78] यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि जमींदारों ने किसानों को बलपूर्वक अपने खेतों पर बनाये रखा होगा। कुछ ऐसे दृष्टान्त मिले हैं कि जमींदारों ने किसानों से बन्धपत्र लिखवाया, जिसके अन्तर्गत उन्हें जमींदारों के खेतों पर काम करना अनिवार्य था। जमींदारी अधिकार का उद्देश्य भूमि रखने वालों को आय का एक स्रोत प्रदान करना था।

बंगाल में जमींदार राज्य की तरफ से पूरे गांव का कर निर्धारित कर देते थे और वे अलग-अलग किसानों से परम्परा के अनुसार कर वसूल करते थे। उस समय राज्य सरकार अधिक से अधिक कर किसानों से वसूल करना चाहती थी। जब जमींदारों का अधिकार उस गांव की आय पर स्वीकार किया गया तो उसे 'मालिकाना' कहा जाता था।[79] 'मालिकाना' उस समय जमींदारों को दिया जाता था। जबकि उस क्षेत्र की लगान वसूली का कार्य राज्य प्रशासन स्वयं करता था और जमींदार के अधिकारों को स्वीकार नहीं किया जाता था। मालिकाना आय का 10 प्रतिशत भाग दिया जाता था। साधारणतः यह धन जमींदार को नकद दिया जाता था, परन्तु कभी-कभी इसके बदले भूमि भी दी जाती थी। इस निर्धारित आय के अतिरिक्त जमींदार अपने क्षेत्र में किसानों से तरह-तरह के कर वसूल करते थे, जैसे 'दस्तार

शुमारी' (पगड़ियों का गिनना), विवाह और मृत्यु कर, गृह कर (खाना शुमारी) आदि। जमींदार कुछ वर्गों के लोगों से बेगार लेता था।[80] बलाहार थोरी, धानुक और चमार को अपने जमींदार के लिये पथ प्रदर्शक और बोझा ढ़ोने का काम करना पड़ता था। इतना ही नहीं, जमींदार की जाति के जितने भी लोग उस तरहफ से गुजरे उनके लिये भी बेगार करनी पड़ेगी। जमींदार को अतिरिक्त लाभ उस क्षेत्र की वार्षिक आय का 1/4 भाग निर्धारित किया गया, जिसे 'सायर चौथ' कहते थे।

जमींदार की आय का भाग स्वेच्छा से बढ़ाया नहीं जा सकता था। भूमि की उपज पर जमींदार का हिस्सा प्रशासकीय आदेश और परम्परा के अनुसार निर्धारित किया जाता था। जमींदार को भले ही 'मालिक' और उसके अधिकार को मिल्कियत कहा जाय, उसे अपनी मर्जी से किसानों से कर वसूल करने का अधिकार नहीं था और न वह अपने अन्तर्गत भूमि का अपने को उसका मालिक समझ सकता था और न उसे वह अपने उपनिवेश की संज्ञा दे सकता था।[81] यह महत्वपूर्ण बात है कि जमींदारी जमींदार की व्यक्तिगत सम्पत्ति की तरह थी। उसके उत्तराधिकारी उसे ग्रहण कर सकते थे लेकिन जमींदारी के अन्तर्गत भूमि जमींदार की व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं थी।[82]

मुगल साम्राज्य में जमींदारी को वंशानुगत बनाने के लिये एक विधान था।[83] मुगल काल में जमींदारों की उत्तराधिकार सम्बन्धी समस्याओं को तय करने के लिए हिन्दू और मुस्लिम कानूनों को आधार माना जाता

था।[84] जमींदारी अविभाज्य इकाई नहीं समझी जाती थी। ऐसे दृष्टान्त मिले हैं कि जमींदारी का विभाजन कई दावेदारों के बीच किया गया।[85] इस प्रकार जमींदारी के विभाजन से कभी दावेदार को गांव की भूमि का केवल एक छोटा भाग ही मिल पाता था। जमींदारी के क्रय और विक्रय का सिद्धान्त 18 वीं शताब्दी के मुगल राजस्व विभाग के कागजात से पता चलता है। परन्तु ऐसा पता चलता है कि यह पद्धति अकबर के समय से प्रारम्भ हुई और औरंगजेब के समय में इसका स्वरूप विस्तृत हो गया था।[86] कभी जमींदारी पट्टे (इजारा) पर एक निश्चित समय के लिये दूसरों को दे दी जाती थी। पट्टेदार को लगान वसूल करने का पूरा अधिकार मिल जाता था, कभी-कभी अवधि पूरी हो जाने के बाद भी पट्टेदार को किसानों से तकाबी वसूल करने का अधिकार मिल जाता था।

बहुत सी जातियों के बीच क्षेत्रीय विभाजन के फलस्वरूप जमींदारी की प्रथा प्रचलित हुई। इस प्रथा का विकास क्रमबद्ध नहीं रहा, एक वर्ग किसी क्षेत्र पर कभी अधिकार कर लेता था लेकिन उस क्षेत्र से उस वर्ग के सभी लोगों को हटाना उसके लिये असम्भव हो जाता था जिनका प्रभुत्व पहले वहाँ था। ऐसी परिस्थिति में प्रथम वर्ग के लोग उस क्षेत्र में पृथक अपना गढ़ बना लेते थे।[87]

बाबर ने लिखा है कि साल्ट रेंज की जमींदारी तीन जातियों में बंटी हुई थी जुद, जन्जुहा और गक्खर, जो वहाँ के किसानों से लगान वसूल

करते थे। उनके पासएक जोड़ा बैल और एक घर होता था।[88] जमींदार संगठित होते थे और सेना भी रखते थे। अबुल फज्ल ने आंकड़े प्रस्तुत किये हें और लिखा है कि मुगल साम्राज्य में जमींदारों की सेना 44 लाख थी। जमींदार अपनी सम्पत्ति को सुरक्षित रखने के लिए किले बनाने लगे। कभी-कभी एक ही गाँव में किले के बनाने और अपहर्ता द्वारा उसे नष्ट किये जाने का विवरण मिलता है। इस तरह के झगड़ों के सम्बन्ध में प्रशासन को बराबर शिकाय़त मिलती थी। इससे पता चलता है कि मुगल प्रशासन जमींदारों को उनकी सुरक्षा के लिये किले बनवाने की अनुमति देता था ये किले न केवल कुछ प्रान्तों में ही बनाये जाते थे, बल्कि राजधानी के समीप के क्षेत्रों में भी बनाये जाते थे।[89] ये किले जमींदारों की शक्ति के प्रतीक थे। चूंकि जमींदारों के अधिकार में जाति की प्रमुख भूमिका थी इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि जमींदार अपनी ही जाति से सेना में विश्वसनीय सैनिकों का चुनाव करता था।

सत्रहवीं सदी के लेखकों ने इस प्रकार के जमींदारों की सेना के लिए 'उलूस' शब्द का प्रयोग किया है इसकी उत्पत्ति मंगोलिया और सेन्ट्रल एशिया में हुई।[90] भारत में इसका प्रयोग मुगल सम्राटों की केन्द्रीय सेना के लिये नहीं किया गया। इसका प्रयोग जमींदारों को सेना के लिए किया गया, जैसे कछवाहा, राठोर, गोंड बलूच का 'उलूस'।[91] मारवाड़ क्षेत्र में कहीं सैंघल राजपूतों की जमींदारी थी। इससे पता चलता है कि अशान्त क्षेत्र के जमींदारों

के लिए सेना (उलूस) का रखना आवश्यक था। 'उलूस' शब्द के अत्यधिक प्रयोग से 'उलूस' के अन्तर्गत दूसरी जाति के सिपाहियों की सेना में कोई अन्तर नहीं रह गया। डॉ0 इरफान हबीब का कहना है कि 44 लाख जमींदारों के सैनिक, जिसका उलूस आइने अकबरी में किया गया है, सभी जमींदारों के जाति के नहीं थे। ऐसा अनुमान किया जाता है कि जमींदारों की सेना में अधिकतर गांव के लोग (गंवार) होते थे, जिनका प्रयोग जमींदार क्षेत्रीय संघर्षो या अधिकारियों के विरूद्ध करता था।[92] फरीद (आगे चलकर शेरशाह) ने अपने पिता की जागीर बिहार में विद्रोही जमींदारों के विरूद्ध कड़ी कार्यवाही की। ऐसा समझा जाता है कि जिस गांव पर फरीद ने आक्रमण किया, उसने वहाँ के सभी लोगों को जान से मार डाला। वहाँ नये किसानों को बसाया। उसने ऐसा इसीलिए किया कि सभी पुराने किसान या तो वहाँ के जमींदार की सेना के सिपाही थे या उन्होंने उसका समर्थन किया।[93]

एक वर्ग के रूप में जमींदार आपस में विभाजित थे। वे जाति और क्षेत्रीय बन्धनों में बंधे हुए थे। यही कारण था कि वे संगठित न हो सके और मध्ययुगीन भारत में साम्राज्य निर्माण के कार्य में योगदान न दे सके। फलस्वरूप विदेशी भारत पर बार-बार आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित हुए।[94]

नागरिक जीवन

भारत सदैव से ग्राम प्रधान देश रहा है। कालान्तर में कुछ

छोटे-छोटे नगरों का उदय हुआ। प्राचीन काल में पाटिलपुत्र और कन्नौज नगरों का विकास हुआ जिनका योगदान प्राचीन भारतीय संस्कृति के विकास में रहा। 12 वीं सदी के बाद लाहौर और आस-पास के क्षेत्रों का विकास हुआ। नगरों के विकास में परिस्थितियाँ अनुकूल रही। मुसलमानों के शक्तिशाली केन्द्रीय शासन व्यवस्था और जनसंख्या के एक स्थान पर केन्द्रित होने से नगरों के विकास में अधिक सहायता मिली। नगरों की समृद्धि के लिये गांवों का उन्नतिशील होना आवश्यक था। गांवों की उपज का उपभोग नगरों में रहने वाले करते थे। यदि नगरों में खाद्यान्नों की पूर्ति न होती तो नगरों का विकास सम्भव नहीं था। गांव बिना नगर के सदियों तक समृद्धिशाली रह सकते थे, लेकिन गांवों के बिना नगर की उन्नति नहीं कर सकते थे। मध्य युग की अर्थव्यवस्था में रूई के उत्पादन का प्रमुख स्थान रहा है जैसा कि आधुनिक युग में स्टील का है।[95]

इस्लामी विधान के अनुसार एक नये नगर का निर्माण केवल एक सैनिक चौकी, एक मस्जिद जिसमें 40 नमाजी हो और एक केन्द्रीय बाजार व्यवस्था कर देने से किया जा सकता था। नगर के विकास होने पर उसकी सुरक्षा के लिये एक किला बनवा दिया जाता था। जिसमें एक फौजदार या कोतवाल की नियुक्ति की जाती थी। डॉ0 हमीदा खातून इस मत से सहमत नहीं हैं कि मुस्लिम प्रशासन का उद्देश्य नगरों की प्रधानता स्थापित करना और गांवों की अवहेलना करना था।[96]

मध्ययुग में मुस्लिम शासकों ने नगरों की प्रगति के लिये शिक्षण संस्थाएं मकतब मदरसे खोले। जैसे-जैसे नगरों की उन्नति होती जाती थी उनमें मदरसों की संख्या बढ़ती जाती थी। इस संस्थाओं में अनुभवी शिक्षकों की नियुक्ति की जाती थी। ये संस्थाएं सरकारी अनुदान (मद्देमाश) द्वारा चलायी जाती थी।

डॉ0 मोहम्मद इरफान हबीब ने भारत पर मुसलमानों के अधिकार करने के बाद नगरों में क्रान्ति के एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उनका कहना है कि नगर में रहने वाले श्रमिकों की दशा अत्यन्त शोचनीय थी। वे निम्न वर्ग के थे, इसीलिए उन्हें हेय दृष्टि से देखा जाता था और वे नगरों के बाहर रखे जाते थे। ऊँची जाति के हिन्दुओं ने उन्हें पद्दलित कर दिया था।[97] जिस समय मुसलमानों ने भारत पर आक्रमण किया इन श्रमिकों ने मुसलमानों का साथ दिया और इन्हीं के समर्थन से शिहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी की विजय हुई। भारत में मुस्लिम राज्य के स्थापित हो जाने के बाद इन श्रमिकों को स्वतन्त्रता मिली और सामाजिक प्रतिबन्धों से मुक्त हो गये। उन्हें नगरों में रहने की मुस्लिम प्रशासन द्वारा अनुमति मिल गई। प्रो0 हबीब ने अपने सिद्धान्त को स्पष्ट करने के लिए अलबरूनी को उद्धृत किया है। अलबरूनी ने लिखा है कि श्रमिक संघ गांव और नगर के बाहर रहता था। इन श्रमिकों का आपस में खान-पान और मेल था।[98] प्रो0 निजामी ने भी इसी विचार को स्वीकार किया है उनका कहना है कि मुसलमानों के राज्य

स्थापित होने से प्राचीन नगर की योजना समाप्त हो गई। नगरों के द्वार श्रमिकों, चाण्डालों के लिये खोल दिये गये। नगर की सीमा में सभी वर्गों के लोग रहने लगे।[99] नगर में सभी वर्गों के लोगों को मुस्लिम प्रशासन में लाभ हुआ और उन्हें सभी प्रकार की सुविधायें मिली। डॉ0 युसुफ हुसेन ने लिखा है कि प्रशासन की आर्थिक नीति का मूल आधार सभी लोगों को आर्थिक क्षेत्र में स्वतन्त्र विकास के लिए अवसर प्रदान करना था।[100]

उपर्युक्त विचार ऐतिहासिक तथ्यों से मेल नहीं खाते। डॉ0 बुद्ध प्रकाश ने ठीक ही लिखा है कि इन विद्वानों ने भारतीय श्रमिकों की स्थिति पर अपने विचार बिना मूल स्रोतों की जानकारी के प्रकट किये हैं श्रमिकों की स्थिति और नगरों के स्वरूप का वर्णन संस्कृत साहित्य में मिलता है।[101] शिल्पकार और श्रमिकों के नगरों में रहने की व्यवस्था थी। मुल्तान, सोमनाथ, बनारस और मथुरा जैसे नगरों के कारण हुआ।[102] प्रमुख मार्गों के किनारे बसे हुए नगर शीघ्र ही व्यापारिक केन्द्र बन गये।

सल्तनत काल

डॉ0 के0 एस0 लाल के अनुसार मध्यकालीन भारत में नगर बहुत कम थे। मुस्लिम शासकों द्वारा स्थापित सभी नगर बने नहीं रहे।[103] कुछ नगरों ने कोई प्रगति नहीं की।[104] कुछ नगरों की उन्नति के लिए कई शासकों ने प्रयास किया, परन्तु वे विफल हुये। कुछ नगर थोड़े समय तक बने रहे और बाद में वे विलीन हो गये।[105]

उस समय दिल्ली कई नगरों से मिलकर बनी थी और प्रत्येक नगर का अलग-अलग नाम था। सभी वर्गों के लोगों के लिए अलग स्थान निर्धारित थे, सभी आवश्यक सुविधाएं, जैसे- स्नानगृह, आटा चक्की, बाजार आदि उपलब्ध थी।[106] मकान अधिकतर पत्थर और ईट के बनाये जाते थे जिसमें छत लकड़ी के और फर्श संगरमरमर के होते थे। अधिकतर इमारतें एक मंजिल की होती थी। कुछ इमारत दो मंजिल की भी होती थी। डा0 के0 एम0 अशरफ ने लिखा है कि नगर में दो प्रमुख सड़कें एक दूसरे को समकोण पर मिलती थी। सड़कों के दोनों ओर बाजार और दुकानें थी।[107]

नदियों पर उन स्थानों पर पुल बनाये जाते थे जो शहरों के समीप होते थे, जिससे नगरों की सुन्दरता बढ़ जाती थी।[108] राजधानी में मुस्लिम शासक के अतिरिक्त सूफी सन्त, हिन्दू योगी, उलेमा, अभिजात वर्ग और अन्य नागरिक रहते थे। अभिजात वर्ग के मकानों की बनावट देखने से पता चलता था कि उनकी सुरक्षा मुस्लिम शासक के महल से कहीं अधिक थी।[109]

हिन्दू अभिजात वर्ग सुन्दर मकानों में रहते थे, जिसके दरवाजों पर चित्रकारी और सजावट का काम अधिक था। बंगाल में अभिजात वर्ग के मकान में एक तालाब, एक बगीचा, एक छायादार कुंज और खुली जगह की व्यवस्था रहती थी।[110] उड़ीसा में अभिजात वर्ग के मकान में सुन्दर बाग होते थे, जिसमें फलों से लदे वृक्ष होते थे और खेती करने के लिए भूमि होती

थी। गुजरात में नये ढंग के मकान अभिजात वर्ग के लिए बनाये जाते थे। इस काल में कैम्बे, चम्पानेर, अहमदाबाद, प्रमुख नगर बनाये गये, जहाँ धनी लोग रहते थे। मारवाड़ी व्यापारियों ने भी बहुत लम्बे चौड़े मकान बनवाये जिनमें तालाब, बाग, तरह-तरह के फलों के वृक्ष होते थे। इन मकानों की सुन्दरता के बावजूद फरिश्ता ने इनकी बनावट की कटु आलोचना की हे। उसने लिखा है कि नगर नीरस होते थे और मकान बन्दीगृह की तरह दिखलाई देते थे।[111]

मध्ययुग में मध्यम श्रेणी नहीं थी। धनी व्यापारी निर्धन लोगों की तरह रहना पसन्द करते थे। उन्हें डर था कि उनकी शान शौकत देखकर अभिजात वर्ग के लोग कहीं उनसे रूष्ट न हो जायें।[112] समकालीन लेखकों ने धनी और निर्धन लोगों के जीवन स्तर का वर्णन किया है। हिन्दुओं का जीवन स्तर मुसलमानों के भारत आगमन के बाद गिर गया। हिन्दु राज्य समाप्त हो गये। मन्दिर नष्ट किये गये, जिससे ब्राह्मणों की स्थिति गिर गई। दरबारों में राजगुरू और मन्दिरों में पुरोहित के पद समाप्त हो गये। क्षत्रिय जो हिन्दू राजाओं की सेना में सैनिक होते थे, दूसरे उद्यमों में लग गये। चौदहवीं सदी में क्षत्रियों की स्थिति मे सुधार हुआ। तैमूर के आक्रमण के बाद वे जमींदार और राजा कहे जाने लगे।

वैश्य खेती और व्यापार में लगे रहे।[113] सिंधियों ने व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया, उन्हें जियाउद्दीन बर्नी ने मुल्तानी

व्यापारी कहा है। पन्द्रहवीं सदी में व्यापार की वृद्धि हुई, जिससे वैश्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ और वे धनी हो गये।[114] हिन्दू समाज में बहुत से निम्न श्रेणी के लोग, शराब बनाने वाले, सोनार, लोहार, बढ़ई, दर्जी, तमोली, माली, नाई, संगीतज्ञ और गड़रिये थे। समकालीन इतिहासकारों ने श्रमिकों और शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति के विषय में प्रकाश नहीं डाला है क्योंकि इस विषय में उनकी रूचि नहीं थी।[115] पश्चिम के इस्लामी देशों में शिल्पकारों को अधिक प्रोत्साहन दिया जाता था। उनके रहने के लिए अलग मुहल्ला की व्यवस्था की जाती थी।[116]

17 वीं सदी के नागरिक जीवन की कुछ जानकारी बर्नियर के विवरण से मिलती है, जो उसने दिल्ली के विषय में लिखा है। उसके अनुसार दिल्ली में कई बड़े-बड़े कारखाने थे जिनमें शिल्पकार कार्य करते थे। जगह-जगह पर विशाल कक्ष थे जहाँ पच्चीकारी करने वाले, सुनार, चित्रकार, लकड़ी पर वार्निश करने वाले, दर्जी और मोची काम करते थे।[117] ऐसा प्रतीत होता है कि ये कारखाने फीरोज तुगलुक और अकबर द्वारा बनवाये गये कारखानों के सदृश्य थे। यह सम्भव है कि वहाँ दस्तकारी का काम भी होता रहा होगा, यद्यपि समकालीन लेखक इस विषय में मौन है।

बर्नियर ने कोलबर्ट को एक पत्र लिखकर अपना मत व्यक्त किया है कि ''कोई भी कारीगर मन से कार्य नहीं कर सकता था क्योंकि वह आर्थिक कठिनाइयों में फँसा हुआ था यदि वह धनी भी था तो भी वह

निर्धनता का दिखावा करता था। कारीगर का उद्देश्य सुन्दर वस्तुओं का उत्पादन करना नहीं था। वह केवल सस्ते मूल्य की वस्तु के उत्पादन पर ध्यान देता था।[118] बर्नियर ने लिखा है कि हस्तकला के पतन का मुख्य कारण यह था कि शिल्पकारों से शक्ति के आधार पर कार्य लिया जाता था। उन्हें शारीरिक दण्ड भी दिया जाता था। शिल्पकार केवल दण्ड के भय से या अत्यन्त आवश्यकता होने पर अपना कार्य करता था। वह जानता था कि यदि वह सुन्दर वस्तु बनायेगा तो इससे उनको कोई लाभ नहीं मिलेगा, बल्कि सारा लाभ व्यापारी को होगा। शायद सल्तनत काल में श्रमिकों की आर्थिक स्थिति उसी तरह रही होगी जैसा बर्नियर ने सत्रहवीं सदी की स्थिति का वर्णन किया है।

दलालों ने शिल्पकारों का आर्थिक शोषण किया। शिल्पकार अपनी वस्तुओं को बेचने के लिये दलालों पर निर्भर रहते थे, जिसका दलाल अनुचित लाभ उठाते थे। शिल्पकारों को राज्य द्वारा लगाये करों का भुगतान करने में कठिनाई पड़ती थी इससे उत्पादन पर बुरा प्रभाव पड़ता। फीरोज तुगलुक ने व्यापार को बढ़ावा देने के उद्देश्य से करों में कमी की।[119] लेकिन सुल्तान के आदेश पूरे साम्राज्य में लागू हो गये थे। यह स्पष्ट नहीं है कि अबुल फज्ल के अनुसार अकबर ने दस्तकारी की वस्तुओं से कर हटा दिया, जिससे शिल्पकारों को आर्थिक लाभ हो।[120] नगरों में शिल्पकारों की मजदूरी बहुत कम थी, जिसके कारण वे अपने जीवन का निर्वाह बड़ी कठिनाई से कर

पाते थे। मोरलैण्ड ने अकबर के समय खेतिहर श्रमिक की स्थिति के विषय में लिखा है कि वह एक प्रकार का दास था। उसको केवल उतनी मजदूरी मिलती थी, जिससे कि वह अपने को और अपने परिवार को किसी प्रकार जीवित रख सके। नगर के श्रमिक वे होते थे जिन्होंने दैवी-विपत्तियों या अनिश्चित् परिस्थितियों के कारण खेती करना छोड़ दिया था।[121]

सल्तनत काल में कपड़ा, धातु, पत्थर का काम, चीनी, नील और कागज के प्रमुख उद्योग थे।[122] साधारणतः छोटे नगरों के उत्पादन कर्ता बड़े नगरों के व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित करते थे और देश और विदेश में वस्तुओं को भेजने की व्यवस्था करते थे। धनी व्यापारी कभी-कभी उत्पादन की अपनी इकाई स्थापित करते थे और शिल्पकारों से अपने निरीक्षण में माल तैयार करवाते थे। ऐसे कारखाने दिल्ली में राज्य के नियन्त्रण में कार्य करते थे।[123] इन कारखानों में चार हजार रेशम तैयार करने वाले श्रमिक काम करते थे। इन कारखानों में वे सभी चीजें तैयार होती थी जिनकी खपत राज महल में होती थी।

इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि मुहम्मद तुगलक प्रतिवर्ष अभिजात वर्ग के लागों को 4 लाख के बहुमूल्य वस्त्र वितरित करता था, जो अधिकतर चीन, इराक और सिकन्दरियां से मगाये जाते थे। मुहम्मद तुगलक के समय में चार हजार शिल्पकार जरी के काम के लिए नियुक्त थे, जो राज महल और अभिजात वर्ग की स्त्रियों के लिए किमखाब तैयार करते

थे। ये कारखाने, अलाउद्दीन के समय को छोड़ कर स्वतन्त्र रूप से कार्य करते थे और राज्य ने इन्हें नियन्त्रित करने का कोई प्रयास नहीं किया। अलाउद्दीन ने कारखानों को नियन्त्रित करने के लिए जो नियम बनाये उनका उद्देश्य आर्थिक की अपेक्षा राजनैतिक अधिक था। इस कारण इन कारखानों की वास्तविक स्थिति की सही जानकारी नहीं की जा सकती। कपड़े के उद्योग में रूई, रेशम और ऊन सम्मिलित थे, जिनकी काफी प्रगति हुई।

गुजरात और बंगाल में रूई के कपड़े बनाने के कारखाने थे। गरीब लोग मोटे कपड़े पहनते थे और अमीर लोग रेशम, मलमल, मखमल और किमखाब जैसे बढ़िया कपड़े पहनते थे। अमीर खुसरो ने अच्छे कपड़े बनाने वाले कारीगरों की प्रशंसा की है। बर्नी ने लिखा है कि बढ़िया किस्म के कपड़ों की कमी थी। अलाउद्दीन ने उसकी बिक्री पर नियंत्रण लगाया।[124] दिल्ली और आस-पास के नगरों में बढ़िया कपड़ों का अधिक भण्डार था, जैसा मलफूजाते तैमूरी से पता चलता है।[125] बंगाल और गुजरात से कपड़े विदेशों को भेजे जाते थे। कैम्बे सभी तरह के कपड़ों का केन्द्र था। कपड़ों को रंगने की कला में काफी प्रगति हुई। लोग गहरे रंगों के शौकीन थे। यह साड़ियों और मलमल को विविध रंगों में रंगवाते थे।[126] कपड़े के अतिरिक्त तरह-तरह की दरियाँ, गलीचे, कालीन, गद्दे, चांदरे आदि भी बनाई जाती थी।[127]

नगरों में धातु के कारखाने भी थे। कारीगर तलवार और दूसरे शस्त्र प्राचीन काल से बनाते थे। मुहम्मद बिन कासिम ने भारत में मंजनीक्स का प्रयोग पहली बार किया। थोड़े ही समय में यह शस्त्र हिन्दू और मुस्लिम शासकों द्वारा बनवाया जाने लगा। हिन्दू शासकों ने अपनी सेना में इसका प्रयोग करने के लिए मुसलमानों की नियुक्ति की।[128] भारतीय कारीगर धातु की वस्तुएँ, जेसे लोहा, पीतल, चाँदी, जस्ता, अभ्रक और मिश्रित धातु के शस्त्र बनाने में कुशल थे। डॉ0 बुद्ध प्रकाश ने लिखा है कि कारीगरों की धातु के कार्य में कुशलता का पता चलता है। 239 लोहे की बीम (जिसकी नाप 17" X 6" X 4" अथवा 17' X 5" X 6" है) जो पुरी, कोणार्क और भुवनेश्वर के मन्दिरों में लगी हुई है, इसमें कारीगरों की आध्यात्मिक कुशलता का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त घर में 50 फीट ऊँचा प्रसिद्ध परमारों का लौह स्तम्भ है। बंगाल में लोहे के बन्दूक, चाकू, कैचियाँ, कटारें और प्याले बनाये जाते थे। दिल्ली के सुल्तानों को बहुमूल्य धातु के बर्तनों का बड़ा शौक था। पच्चीकारी के कार्य में दक्ष शिल्पकार साम्राज्यक भिन्न-भिन्न भागों में पाये जाते थे।[129] इस उद्योग की प्रगति अकबर के समय में अधिक हुई। शिल्पकारों ने विविध रंगों के दस मन के झाड़फनूस बनाये।[130] इसके अतिरिक्त हजारों कुशल कारीगर ईट और पत्थर के काम में लगे हुए थे।

अमीर खुसरों ने भारत के राज और पत्थर तराशने वालों की प्रशंसा की है। उसका कहना है कि सम्पूर्ण इस्लामी जगत में ऐसे कारीगरों की बराबरी करने वाले कारीगर नहीं थे।[131] असंख्य भवनों में, मन्दिरों और किलों में, पत्थर की मूर्तियों में यह कला दिखायी देती है। कश्मीर में एक राजा ने हजारों मठ और इमारतें बनवाई थी।[132] मिनाहाजुससीराज ने मथुरा के मन्दिरों और महलों के पत्थर के काम की प्रशंसा की है। उसने लखनौती में भी इस कला की प्रशंसा की है।[133] उसेन कामरूप के विशाल मन्दिर का हवाला दिया है, जिसे बख्त्यिार खल्जी ने देखा था।[134] अलबरूनी ने भारतीय शिल्प और स्थापत्य कला की सराहना की है।[135] अलाउद्दीन खल्जी ने 7 हजार कारीगरों को इमारतों के निर्माण के लिए निुक्त किया।[136] फीरोज तुगलुक ने 4 हजार गुलामों को अन्य कारीगरों के अलावा इस काम में लगाया।[137] बाबर ने आगरा में 680 और दूसरे स्थानों में 1391 राजगीर इमारतें के बनवाने में लगाया।[138] हिन्दू राजाओं ने भी भवन निर्माण कला को प्रोत्साहन दिया। माउंट आबू का दिलवाड़ा मन्दिर, ग्वालियर और चित्तौड़ की भव्य इमारतें इस कला के उत्कृष्ट नमूने हैं।

बहुत से शिल्पकार मूंगे[139] और हाथी दाँतों के काम में प्रवीण थे। वे कृत्रिम मोती[140] और कृत्रिम पक्षी, पौधे और फूल बनाते थे। लकड़ी के काम में भी दक्ष कारीगर थे जो दरवाजे, कुर्सियाँ, खिलौने, पलंग आदि बनाते थे। इब्नखुर्दादबाह बेंत, बाँस और पत्तियों के उद्योगों का विवरण दिया

है। शुक्रनीतिसार और युक्ति कल्पतरू में शीशे के उद्योग के विषय में विवरण मिलता है।[141] इसके अतिरिक्त कागज, चीनी और चमड़े के उद्योग थे। बंगाल और गुजरात में कागज के उद्योग की प्रगति हुई। बंगाल का सफेद कागज हिरन के चमड़े की तरह चिकना था।[142] गुजरात में बने कागज की मांग अधिक थी।[143] अमीर खुसरो ने कागज के उद्योग का विस्तृत विवरण दिया है। उसने लिखा है कि दिल्ली में एक नये तरह का कागज, जिसको 'शमी' कहा जाता था, प्रयोग में लाया जाता था। दिल्ली में पुस्तकों की मण्डी लगती थी। बर्नी ने लिखा है इसके प्रयोग में किफायत की जाती थी।

मध्य युग में अच्छी तरह की चीनी, जिसका नाम काण्ड (खण्ड) था, उसका उत्पादन किया जाता था। बंगाल में अच्छे किस्म की चीनी बनाई जाती थी। यहाँ से दूसरे देशों को चीनी भेजी जाती थी।[144] चमड़े के उद्योग की भी इस युग में प्रगति हुई। इसका प्रयोग तलवार की म्यान, किताबों के आवरण, जूते, घोड़ों के साज और लगाम एवं बाहर भेजने के लिए चीनी के बोरे बनाने में होता था।[145] चमड़े के उद्योग की जानकारी प्राचीन काल से ही थी। ऋग्वेद में चमड़े के झोले और बर्तनों का उल्लेख मिलता है, जिसमें दूध, दही और मदिरा रखे जाते थे। मुसलमानों के भारत में आने के बाद चमड़े के साज भी बनने लगे।[146] चमार अपने को एक दल के रूप में संगठित किया। सुल्तान मुहम्मद तुगलक 10 हजार घोड़े प्रतिवर्ष अपने अभिजात वर्ग के लोगों को देता था, जो अधिकतर साज और लगाम से

सुरक्षित रहते थे। गुजरात में लाल और नीले रंग के चमड़े की चटाइयाँ बनाई जाती थी, जिन पर सुन्दर चिड़ियों और जानवरों के चित्र बनाये जाते थे। कारीगर कई तरह के चमड़े प्रयोग में लाते थे जैसे-बकरी, बैल, भैंस और गेंडा के चमड़े। गुजरात में चमड़े का इतना सामान तैयार किया जाता था कि प्रति वर्ष कई जहाज का माल अरब और दूसरे देशों को भेजा जाता था।[147]

डॉ0 के एम0 अशरफ ने लिखा है कि औद्योगिक श्रमिकों की स्थिति ग्रामीण शिल्पकारों के समान थी। उनको भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। औद्योगिक श्रमिक संघ जातिगत और वंशानुगत होता था। उनके यन्त्र और काम करने के तरीके भद्द होते थे, जिससे अधिक उत्पादन नहीं होता था, यद्यपि उनके द्वारा तैयार किया हुआ माल अच्छा होता था।[148] राजकीय कारखानों को छोड़कर औद्योगिक श्रमिकों को कोई संरक्षण नहीं मिलता था।

कुशल कारीगरों द्वारा तैयार माल बहुत अच्छा होता था। परन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया उनकी कला संकीर्ण दृष्टिकोण और श्रमिक संघों की पद्धति के कारण समाप्त होती गयी।[149]

मुगल सम्राटों ने अधिक उत्पादन की तरफ विशेष ध्यान दिया। उन्होंने नगरों की प्रगति के लिए गांवों का समृद्धिशाली होना आवश्यक समझा। उन्होंने किसानों को अधिक उपज के लिये प्रोत्साहन दिया। नागरिक उद्योगों में काम आने वाले कच्चे माल की अधिक उपज के लिये किसानों को विशेष

छूट दी गई। अफीम और कपास जैसी बहुमूल्य फसलों की खेती के लिये किसानों को प्रोत्साहन दिया गया, जिसको विदेशों को भेजकर धन प्राप्त किया जा सके और कच्चे माल को उद्योग को दिया जा सके। मुगल काल की यह विशेषता थी कि कृषि क्षेत्र में अधिक उत्पादन को औद्योगिक समृद्धि का आधार बनाया गया।[150] मुगलों के पहले दिल्ली के सुल्तानों बलवन, गयासुद्दीन तुगलुक और मुहम्मद तुगलुक ने भी ऐसा करने का प्रयास किया, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिली।[151] डॉ0 हमीदा खातून के अनुसार मुगल सम्राटों ने साम्राज्य के हित में बहुमूल्य फसलों की उपज के लिये किसानों की सुविधाएं दी। मुगल प्रशासन नहीं चाहता था कि अत्यधिक खाद्यान्न उत्पादन के मूल्य में गिरावट आ जाय और किसानों को उनके श्रम का वास्तविक लाभ न मिले। इसीलिये मुगलों की नीति आर्थिक सन्तुलन बनाये रखने की थी। इसी उद्देश्य से कुछ वर्ग के किसानों को खाद्यान्न के बजाय बहुमूल्य फसलों की खेती करने के लिये कहा गया, जिससे नगर के कारखानों को कपास और अन्य कच्चा माल आसानी से उपलब्ध हो सके।

इस नीति के कारण प्रमुख फसलों में कपास की खेती देश के विभिन्न भागों में की जाने लगी। पास के गांवों से नगरों में रूई आने लगी, जिससे कपड़े का उत्पादन बढ़ा। मुगल काल में नगर उद्योगों के मुख्य केन्द्र थे।[152] सल्तनत-काल की तरह मुगल काल में भी कपड़ों को विभिन्न रंगों में रंगने की कला का विकास हुआ। छपाई और चित्रकारी का भी विकास

हुआ।[153] रंगाई में काम आने वाली वस्तुओं का भी उत्पादन बढ़ा।[215] रंगाई से किये गये कपड़ों की सुन्दरता बढ़ी और भारत के अतिरिक्त दूसरे देशों के बाजार में इन कपड़ों की मांग बढ़ी। कपड़े के अलावा रंगाई में काम आनी वाली अतिरिक्त नील को दूसरे देशों में भेजा जाता था।[154] सत्रहवीं सदी में नील की उपज आगरा, बयाना, पूर्वी अवध और सरावेज, अहमदाबाद क्षेत्र में अधिक होती थी।[155] गन्ना, अफीम और तेलहन की उपज की गणना प्रमुख फसलों में की जाती थी। यद्यपि इनकी उपज गाँवों में होती थी फिर भी नगर के व्यापारी विभिन्न विधियों द्वारा इनको मंडियों में भेजने लायक बनाते थे और सबसे अधिक लाभ नगरों में रहने वाले व्यापारियों को इन फसलों से होता था।

चीनी विदेशों को भी भेजी जाती थी। इसी तरह 16 वीं सदी में अफीम गुजरात के बन्दरगाहों से जहाजों द्वारा प्रतिवर्ष बाहर भेजी जाती थी।[156] ऐसा अनुमान किया जाता है कि बहुमूल्य वस्तु होने के कारण मुगल राज्य को इसके व्यापार से अधिक आय हुई होगी।

मुगल शासकों ने नगरों के पास बगीचे लगवाया, जिसमें तरह-तरह के फलों के वृक्ष लगाये। इससे राज्य को अधिक आय होती थी, इसके पहले फीरोज तुगलूक ने दिल्ली के समीप 1200 बाग लगवाये थे। जिससे 1,80,000 टंका की सालाना आमदनी हुई। बागों से गाँव और नगर दोनों में रहने वालों को लाभ होता था। बाग लगवाने से सभी भूमि का

उपयोग हो जाता। इससे कोई भूमि बेकार नहीं रहती थी।[157] अकबर ने सामान्य रूप से फलों के बाग लगाने के लिये 2¾ रूपया प्रति बीघा की दर से कर लगाया।[158] सम्राट जहांगीर ने इस नाम मात्र के दर को भी समाप्त कर दिया। बाबर को बागों का बहुत शौक था। अकबर के समय में बहुत से ईरानी और तूरानी बागवानी के जानकार लोगों को भारत में बसाया गया।[159] मुगल काल में बहुत से पश्चिम एशिया के फलों का उत्पादन भारत में किया गया। जैसे-खरबूजे, तरबूज, आड़, बादाम और अनार।[160] अबुलफज्ल ने लिखा है कि अनन्नास भी भारत मे पैदा किया जाने लगा। उसकी कीमत चार रूपया प्रति फल था।[161] शाहजहां के समय में अच्छी किस्म के खरबूजे पैदा किया गया।[162] कुछ समय बाद अहमदाबाद और थानेश्वर में फलों को सुरक्षित रखने का उद्योग स्थापित किया गया और फलों को बाहर भेजने की व्यवस्था की गई।[163] इसके अतिरिक्त सुगन्धित फूलों के पौधे अधिक संख्या में बागों में लगाये गये। इनका उपयोग सुगन्धित तेल, इत्र और लैप के बनाने में किया जाता था। धनी वर्ग के लोग इनका इस्तेमाल करते थे।[164] सुगन्धित तेलों के उद्योग के लिये आगरा, जौनपुर और गाजीपुर प्रसिद्ध केन्द्र थे।[165]

जंगलों का उपयोग मुगल काल में अच्छी लकड़ी बनाने में किया गया, जिसका उपयोग जहाज, गांव, गाड़ी आदि के बनाने में किया गया। कश्मीर, लाहौर, पश्चिमी समुद्र तट, इलाहाबाद और बंगाल के प्रमुख नगरों में

इस उद्योग का विकास हुआ। अबुल फज्ल ने लकड़ी की किस्मों की एक सूची आईने अकबरी में दी है। भिन्न-भिन्न किस्म की लकड़ी, जो आरा कोट बाजार में जिस मूल्य पर उपलब्ध थी, उनका विस्तृत विवरण दिया गया है।[166]

रेशम के उद्योग के लिये कश्मीर और बंगाल प्रसिद्ध थे। बंगाल के रेशम की बराबरी ईरान और सीरिया में बने रेशम नहीं कर सकते थे।[167] मिर्जा हैदर दोगलत ने कश्मीर के रेशम की सराहना की है।[168] अकबर यहाँ के रेशम से इतना प्रभावित था कि उसने यहां के रेशम पर राज्य का एकाधिकार स्थापित किया।[169] लाहौर में भी रेशम के उद्योग का विकास हुआ। बंगाल के रेशम की कई किस्में थी, जैसे निरस्तरी, देसी, हरायल और चाइनायल।[170] मालदा, राजशाही और मुर्शिदाबाद बढ़िया रेशम के लिए प्रसिद्ध थे।[171] कासिम बाजार में हालैण्ड के व्यापारियों ने रेशम का एक कारखाना खोल रखा था। जिसमें 700-800 कारीगर काम करते थे। इसी प्रकार अंग्रेजों ने भी एक रेशम का कारखाना उसी स्थान पर स्थापित किया।[172] सल्तनत काल की तरह 17 वीं सदी में महीन रेशमी धागे का सुन्दर काम किया जाता था।[173] परन्तु बर्नियर ने बंगाल के बने रेशम को घटिया किस्म का रेशम कहा है, इसी कारण दूसरे रेशमों की अपेक्षा उसका मूल्य कम था।[174]

मुगल काल में चमड़े के उद्योग का भी विकास हुआ। चमड़े से कई चीजें बनाई जाती थी, जैसे पानी का थैला[175], पानी की बालटी[176], तेल, घी[177], मदिरा[178] और इत्र रखने के लिए बर्तन। भैंस के खाल की ढ़ाल साधारणतया प्रयोग में लाई जाती थी।[179] गुजरात से अधिक मात्रा में तैयार किया चमड़ा विदेशों को भेजा जाता था।[180] कत्थई रंग के चमड़े के जूते बनाये जाते थे और बाहर भेजे जाते थे।[181] बढ़िया किस्म के चमड़े के मद्दे और चटाइयां बनाई जाती थी।[182] इसके लिए सिन्ध बहुत प्रसिद्ध था।[183] डॉ0 हमीदा खातून ने लिखा है कि हिन्दू चमड़े को निषिद्ध और हेय वस्तु समझते थे, लेकिन भारत के मुस्लिम शासकों ने इस उद्योग के विकास के लिए अधिक योगदान दिया।[184]

ऊन का उद्योग प्रमुख तौर से कश्मीर में था। वहाँ भेड़ और बकरी के बाल से उन तैयार किया जाता था। काबुल में बड़े-बड़े चारागाह भेड़ों के लिए होते थे। ऊन की कई किस्में थी, जिनका विस्तृत विवरण अबुल फजल ने आइने अकबरी में दिया है।[185] अकबर के कश्मीर पर अधिकार करने के पहले दुशाला बनाने का काम कश्मीर में होता था। अकबर ने इस उद्योग को प्रोत्साहित किया। उसने दुशाला में नये-नये रंगों के प्रयोग के लिए अपने सुझाव दिये।[186] उसके सुझाव कहाँ तक अमल में लाये गये इसकी विस्तृत जानकारी प्राप्त नहीं है। कश्मीर में लगभग 2 हजार कारखाने दुशाला बनाते थे। इसका प्रमुख केन्द्र श्रीनगर था। जहाँगीर के समय में सर टामस

रो भारत में आया था उसने भारतीय कारीगरों की बड़ी सराहना की।[187] काबुल से भी ऊन के उद्योग का विकास हुआ। जहाँ के बने सस्ते कम्बल आगरा के बाजार में बिकते थे। एक कम्बल की कीमत 10 दाम थी।[188] लाहौर में भी ऊन का कारखाना था, लेकिन यहाँ का बना सामान घटिया किस्म का था। यहाँ 100 कारखाने थे जो नकली रूई और दूसरे सूत मिलाकर नकली दुशाला बनाते थे। अजमेर और नागौर में ऊन के कारखाने थे। सिंघ में, अधिकतर कम्बल चटाइयाँ और सफेद लोई बनती थी।[189] स्पष्ट है कि मुगल साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों में ऊन के कई कारखाने थे। भारतीय भेड़ों के ऊन अच्छी किस्म के नहीं थे। इसके बने कपड़े घटिया होते थे। कश्मीरी और विदेशी ऊनी कपड़े अच्छी किस्म के होते थे।

मुगल काल में सोने और चाँदी की कमी थी, जो सिक्कों के मुख्य माध्यम थे। अकबर के समय लेन-देने में ताँबे के सिक्कों का प्रयोग किया गया। जिससे व्यापार को क्षति न पहुँचे। परन्तु ताँबे की खानों से ताँबे का उत्पादन आशा से कम था। अकबर ने ताँबे के सिक्के को चाँदी के सिक्के से सम्बद्ध किया।[190] सत्रहवीं सदी के मध्य में ताँबे की और कमी हो गई और दूसरे देशों से ताँबा मंगाने पर भी कमी पूरी नहीं हुई। इसके कारण ताँबे के दाम और चाँदी के रूपये के अनुपात में वृद्धि हुई। साम्राज्य में लोहे का उत्पादन सन्तोषजनक था। देश की सारी आवश्यकताओं की पूर्ति के बाद उसे दूसरे देशों को भेजा जाता था।[191]

अच्छे किस्म का नमक सारे मुगल राज्य में उपलब्ध था। यही कारण था कि बंगाल के घटिया किस्म के नमक को लोग प्रयोग में नहीं लाते थे। लाहौर और सांभर झील से नमक राज्य के दूसरे भागों में, भेजा जाता था।[192] कश्मीर में नमक नहीं होता था। वहाँ भी लाहौर से नमक भेजा जाता था।[193]

दिल्ली, आगरा, फतेहपुर सीकरी, राजपूताना और सिंघ के क्षेत्रों में लाल, पीले पत्थर और सफेद संगरमरमर इमारतों के निर्माण के काम में लाये जाते थे।[194] घटिया किस्म के पत्थर कश्मीर, ग्वालियर, चन्देरी, अहमदाबाद और आगरा में काम में लाये जाते थे।[195] साधारण और आलीशाना मकानों में अन्तर का पता पत्थरों के इस्तेमाल से लगाया जा सकता था। पत्थर की इमारतें बहुत टिकाउ और मजबूत होती थी। बहुत से किलों, नगरों की दीवारें, मदरसों, मसजिदों स्नानागारों और जन कल्याण सम्बन्धी इमारतों के बनवाने में पहले पत्थर की किस्म के विषय निर्णय लिया जाता था। कश्मीर और अहमदाबाद की सड़कों को पक्की करने में पत्थरों का प्रयोग किया गया।[196] मध्य युग में नगरों के विकास से यह आवश्यक था कि मजबूत इमारतें बनाई जायें, जिससे बार-बार मरम्मत की आवश्यकता न पड़े। मुगल काल में न केवल पत्थर के बल्कि ईट, लकड़ी और लोहे से भी मकान बनवाये जाते थे। नगरों के विकास के कारण बहुत सी इमारतें बनी। मध्य युग की इमारतों की विशेषता यह थी कि इनमें पत्थर और ईट

का प्रयोग किया गया था, जबकि प्राचीन काल में प्रायः मकान मिट्टी और फूस के बनते थे।

व्यापार और वाणिज्य

सल्तनत काल

प्राचीन काल से ही भारत का अन्तरदेशीय और अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार काफी विकसित था। खाद्यान्न मंडियों में लाया जाता था और वहाँ से देश के एक् भाग से दूसरे भाग को ले जाया जाता था। यातायात मजदूरों, बैलगाड़ियों, घोड़ों और डोलियों के द्वारा होता था।[197] नदियों के द्वारा उत्तर भारत में माल भेजना सुरक्षित समझा जाता था।[198] राज तरंगिणी में नदी द्वारा यातायात का उल्लेख मिलता है।[199] आसाम में भी नदियों के द्वारा माल भेजा जाता था।[200]

सड़कों के द्वारा दूर-दूर के नगरों और गांवों से सम्पर्क स्थापित होता था। इन सड़कों की देख भाल राज्य सरकार करती थी।[201] समुद्र के द्वारा माल भेजना असुरक्षित समझा जाता था। रास्ते में समुद्री डाकुओं और तूफान का भय था। इसके अतिरिक्त भूमि के मार्गो में ही विद्रोही अमीर माल को लूट लेते थे।[202] इसके बावजूद भी यदि व्यापारी एक जहाज माल विदेश से सफलतापूर्वक मंगा लेते थे तो उनका पहले का नुकशान पूरा हो जाता था।[203] सुल्तान और अभिजात वर्ग के लोग विलास की वस्तुओं का अधिक उपभोग करते थे। ये वस्तुएँ अधिकतर विदेशों से मँगाई जाती थी।

देश का भीतरी व्यापार उत्तर भारत में गुजराती (या मारवाड़ी) और दक्षिण में चेट्टी व्यापारियों के हाथ में था।[204] इसके अतिरिक्त भ्रमण करने वाले गल्ला व्यापारी थे, जिन्हें बंजारा कहा जाता था। किसी-किसी बंजारे के काफिले में 4 हजार बैल थे।[205] ऐसा प्रतीत होता है कि सम्पूर्ण देश व्यापारिक केन्द्रों और मंडियों से भरा हुआ था।[206] जेसे पौंद्रवर्धन, शेरगढ़, अनहिलवाड़, बनारस आदि। प्रायः बाजार मन्दिरों के समीप होते थे।[207] . मुल्तान, लाहौर, दिल्ली एवं और प्रान्तों की राजधानियाँ प्रमुख व्यापारिक केन्द्र थी जहाँ छोटे-छोटे फुटकर माल के विक्रेता सामान खरीदते थे। इन बाजारों में काफी भीड़ दिखायी देती थी। जानवरों के वार्षिक मेले प्रमुख केन्द्रों में लगते थे, जहाँ सभी तरह के जानवर-बैल, ऊँट, गाय, भैंस, घोड़े आदि बेचे और खरीदे जाते थे।[208] डॉ0 के0 एम0 अशरफ ने लिखा है कि व्यापारिक प्रतिष्ठानों के संचालन के लिए कोई सैद्धान्तिक नियमावली नहीं थी।[209] मुल्तानी और गुजराती व्यापारियों के हाथ में प्रमुख व्यापार था। विदेशी व्यापारियों में खुरासानी बहुत प्रभावशाली थे, जो सम्पूर्ण अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को नियंत्रित करते थे। समुद्र तट पर कुछ मुस्लिम व्यापारी थे।[210] बंजारे स्वतंत्र रूप से व्यापार नहीं करते थे। वे केवल माल को एक स्थान से दूसरे स्थान को ले जाने में व्यापारियें की सहायता करते थे कारण यह था कि उन्हें सभी मार्गो की जानकारी थी।[211] राजस्थान के भाट व्यापारियें को खतरनाक सड़कों को पार करने में सहायता प्रदान करते थे।[212]

दलाल बड़े-बड़े व्यापारियों और निर्माताओं से सम्पर्क स्थापित कराते थे। अपनी सेवाओं के बदले वे दोनों से कमीशन लेते थे। कभी-कभी छोटे निर्माताओं और व्यापारियों का शोषण करते थे। अलाउद्दीन खिल्जी ने दलाल वर्ग को समाप्त कर दिया, जिससे उसे बाजार नियंत्रण में बड़ी सहायता मिली। परन्तु फीरोज तुगलुक के समय में दलालों काफिर से प्रभुत्व स्थापित हो गया और उनकी कार्यवाइयों को प्रशासन द्वारा मान्यता दी गई। बड़े-बड़े व्यापारी प्रमुख केन्द्रों पर अपने प्रतिनिधि रखते थे, जो उनके हितों की देखभाल करते थे।[213] महाजन या साहू व्यापारियों को ऋण देते थे। ऐसा विचार है कि वे आधुनिक बैंकिंग प्रणाली के समान कार्य करते थे।[214] प्रशासन की तरफ से महाजनों के ब्याज सम्बन्धी कागजात के निरीक्षण की व्यवस्था थी।[215] अमीर खुसरों के अनुसार ब्याज की दर 10 प्रतिशत से 20 प्रतिशत प्रति वर्ष कम और अधिक धन पर थी। महाजन उच्चवर्ग के लोगों को भी ऋण देते थे, जो विलासकी वस्तुओं का उपभोग करते थे।[216] व्यापारी उपभोक्ताओं को मिलावट का सामान बेचकर और कम तौलकर धोखा देते थे। बर्नी ने लिखा है कि अलाउद्दीन के समय से हिन्दू व्यापारियों ने सारे व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया था और वे समृद्धिशाली हो गये थे।[217] अफीफ ने भी इस मत का समर्थन किया है। उसके अनुसार वे व्यापारी इतने धनी थे कि लड़की के विवाह में दहेज की व्यवस्था करना उनके लिए कोई समस्या नहीं थी।[218] अलाउद्दीन खिल्जी ने भ्रष्ट व्यापारियों

की कार्यवाइयों पर प्रतिबन्ध लगाया। उसने शहना मण्डी और गुप्तचरों के माध्यम से बाजार की अनियमितताओं को दूर किया। शमशुद्दीन, जो एक बड़ा विधि वेत्ता था, ने अलाउद्दीन के इस्लाम धर्म के प्रसार में योगदान न देने की निन्दा की, परन्तु व्यापार में भ्रष्ट तरीकों को समाप्त करने के लिये उसने सुल्तान की सराहना की।[219] हिन्दू व्यापारी विदेशी व्यापारियों के प्रति अपने व्यवहार में ईमानदार थे।[220] पन्द्रहवीं सदी में व्यापार की प्रगति के साथ-साथ अन्तरदेशीय व्यापार की भी काफी प्रगति हुई।

भारतीय व्यापारियों की समृद्धि के विषय में निकोलो कोन्टी ने लिखा है कि कोई व्यापारी इतने धनी थे कि उनके पास 40 हजार थे। जैन व्यापारी इतने धनी थे कि उन्होंने माउण्ट आबू (दिलवाड़ा) में जैन मन्दिर बनवाया और बहुत सा धन व्यय किया।[221]

भारत का भूमध्य सागर के देशों से व्यापारिक सम्बन्ध प्राचीन काल से था। इस्लाम के आगमन से भारत के अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार पर बहुत अधिक प्रभाव नहीं पड़ा। केवल हिन्दू व्यापारियों का स्थान मुस्लिम व्यापारियों ने ले लिया।[222] विद्वानों का विचार है कि इस्लामी राज्य के प्रसार से यूरोपीय व्यापार की क्षति हुई। ऐसा ही ईरान में हुआ। अरब व्यापारी प्रभावशाली हो गये और ईरानी व्यापारियों के हाथ से व्यापार चला गया।[223] इब्न असीन के अनुसार बनारस में सबुक्तगीन के समय से ही बहुत से मुसलमान व्यापारी थे।[224] अरब व्यापारी भारतीय माल को पूर्वी अफ्रीका,

मलायाद्वीप, चीन और प्रशान्त महासागर के देशों को ले जाते थे।[225] भूमि के रास्ते से खैबर दर्रे के द्वारा भारत का व्यापार मध्य एशिया, अफगानिस्तान और ईरान से होता था। कभी-कभी अनिश्चित राजनैतिक स्थिति के कारण व्यापारी मध्य एशिया के मार्ग को उपयुक्त नहीं समझते थे और वे अपना व्यापार आसाम, बर्मा और सिक्किम के रास्ते ले जाते थे।[226] दसवीं सदी में चीन से 300 धर्म प्रचारक इस मार्ग से भारत आये।[227] 16 वीं सदी के बौद्ध भिक्षु बुद्धगुप्त का कहना है कि उसने स्वयं यह मार्ग अपनाया था।[228] 8वीं सदी में अलमंसूर (754-775) और हारून अलरशीद (786-809) के समय में भारत और बगदाद का निकट सम्बन्ध था। भारतीय विद्वान बगदाद आमंत्रित किये जाते थे।[229] अलमसूदी ने लिखा है कि खुरासान जाने वाले काफिले का केन्द्र मुल्तान था।[230] अल इदरीसी के अनुसार काबुल के बने कपड़े चीन, खुरासान और सिंघ भेजे जाते थे। नेहरवालाका रहने वाला एक हिन्दू व्यापारी, बसा अमीर का गजनी में अच्छा व्यापार था। उसने वहाँ अपने प्रतिनिधि रखे थे जो उसके हितों की देख-भाल करते थे। मुइज़ुद्दीन मुहम्मद गोरी से लोगों ने प्रार्थना की कि उस हिन्दू व्यापारी की सम्पत्ति जब्त कर ली जाय, लेकिन उसने न्याय के आधार पर ऐसा नहीं किया।

मंगोलों के आक्रमण के कारण मध्य एशिया का रास्ता असुरक्षित समझा जाता था। इसीलिए व्यापारी 16 वीं सदी के मध्य तक समुद्र के मार्ग द्वारा अपना माल भेजते थे।[231] लेकिन पुर्तगालियों के आगमन से समुद्र का

मार्ग भी असुरक्षित हो गया। मुहम्मद तुगलूक के समय में विलास की वस्तुयें, जेसे रेशम, मखमल आदि विदेशों से भारत में आती थी, जिनका उपभोग अभिजात वर्ग के लोग करते थे। गुजरात में बहुमूल्य वस्तुओं का भण्डार था, जिसे यूरोपीय देशों से मंगाया जाता था।[232] ताँबा, चाँदी, तूतिया और सोना भी बाहर के देशों से भारत में मंगाये जाते थे। दक्षिण और राजस्थान में घोड़ों की बड़ी माँग थी, क्योंकि हिन्दू शासक अपनी सैन्य शक्ति बढ़ाना चाहते थे। इसीलिए घोड़ों के व्यापारियों को भारत से बहुत लाभ मिलता था।[233] मिनहाजुससीराज के अनुसार व्यापारी कामरूप और तिब्बत के मार्ग से होकर बंगाल में घोड़े का व्यापार करते थे। ऐसा अनुमान है कि लखनौती (बंगाल) पहुँचने तक घोड़ा को 35 पहाड़ी दर्रों से हो कर गुजरना पड़ता था। मिनहाज का कहना है कि कम से कम 1500 घोड़े प्रतिदिन बाजार में बेचे जाते थे। घोड़े समुद्र और भूमि दोनों मार्गो से यमन, किस, हेमिज, अदन और ईरान से भारत में लाये जाते थे।[234]

<u>समुद्री व्यापार</u>

भारत से अनाज और कपड़ा दूसरे देशों को भेजा जाता था। फारस की खाड़ी के देश भारत द्वारा भेजे हुए अनाज पर निर्भर रहते थे। प्रशान्त महासागर के देश, मलाया द्वीप और पूर्वी अफ्रीका के बाजार भारतीय माल से भरे रहते थे।[235] फारस की खाड़ी और दूसरे स्थानों में नाविकों की सुविधा के लिये प्रकाश गृह बनाये गये थे।[236] मसूदी ने लिखा है कि

अरब व्यापारियों का अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के क्षेत्र में प्रभुत्व बना रहा।

तारीखे फखरूद्दीन मुबारकशाही के अनुसार तुर्किस्तान के लोगऔर मंगोल लोग ऊँट, घोड़े, कस्तूरी और अस्त्र-शस्त्र का व्यापार करते थे। वे आस-पास के देशों को लूटते थे। मंगोलों के आक्रमण के बाद यह सम्भव है कि भूमि के रास्ते से व्यापार में प्रगति हुई।[242] बाबर और हुमायूँ के समय में असाधारण परिस्थितयों के कारण व्यापार को क्षति पहूँची, परन्तु अकबर के समय में शान्ति स्थापित होने के बाद दिल्ली मुल्तान और काबुल के बीच व्यापार में वृद्धि हुई।[243] वासफ के अनुसार भारत में प्रति वर्ष दस हजार घोड़े अरेबिया और तुर्किस्तान से भेजे जाते थे। डॉ० के० एम० अशरफ ने लिखा है कि तुर्किस्तान से अजाक के लोग भारत में भेजने के लिये एक विशेष नस्ल के घोड़े तैयार करते थे और रास्ते में घोड़ों को देख-भाल के लिये समुचित व्यवस्था करते थे।[244] इब्नबतूता के अनुसार व्यापारी 6 हजार या इससे अधिक के झुण्डों में घोड़ों को भारत भेजते थे। घोड़ों की निगरानी के लिये एक अधिकारी (कशी) प्रति 50 घोड़ों पर होता था।[245] सीमा चौकी पर पहुँचने पर व्यापारियों को 25 प्रतिशत हिसाब से चुंगी देनी पड़ती थी। मुहम्मद तुगलुक व्यापार में वृद्धि करना चाहता था, इसीलिए उसने चुंगी की दर में कमी कर दी। व्यापारियों से कहा गया कि वे सिंघ की चौकी पर 7 टँका प्रति घोड़े की दर से चुंगी अदा कर दें और मुल्तान में फिर चुंगी दें। भूमि के मार्ग से कितना व्यापार होता था इसका

और मुसलमानों के भोजन, जानवरों के चारे, पानी के लिए कुएँ और धार्मिक कृत्य के लिए मस्जिदों की व्यवस्था की। अकबर ने भी कोतवालों को निर्देश दिया कि वे सराएँ बनवाएँ।[249] सरायों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व प्रान्तीय गवर्नरों पर था।[250] मुगल सम्राटों ने नदियों पर पुल बनवाये। अकबर ने जौनपुर में गोमती पर और अटक में सिंध नदी पर पुल बनवाया।

अकबर ने व्यापारियों की सुविधा के लिये मार्ग पर लगने वाले सभी करों को समाप्त कर दिया।[251] यातायात का साधन हाथी, ऊँट, घोड़े, बैल, बैल-गाड़ियाँ, खच्चर और पालकियाँ थी। जेम्स टाड ने हैदराबाद (सिंघ), रोरी, भक्कर, शिकारपुर और उच्छ में बोझ से लदे हुए काफिलों का उल्लेख किया।[252] बैलें का प्रयोग साधारणतः सभी करते थे। बनजारे प्रायः इनका प्रयोग करते थे। बैल-गाड़ियाँ अधिकतर उत्तरी भारत में प्रयोग में लाई जाती थी।[253] डोलियों का प्रयोग केवल धनी वर्ग के लोग करते थे।

मुगल राज्य में नदियों द्वारा माल एक स्थान से दूसरे स्थान को भेजा जाता था।[254] सिंध नदी की कई धाराएं मुल्तान, लाहौर और कश्मीर को एक साथ मिलाती थी। आगरा में यमुना और चम्बल नदियों द्वारा व्यापार होता था। कभी-कभी आगरा से 180 नाँवो का बेड़ा माल से लाद कर दूसरे स्थानों को भेजा जाता था।[255] वहीं से अधिकतर नमक, शीशा, अफीम, लोहा, रूई, कालीन और अच्छे किस्म के कपड़े बंगाल को भेजे जाते थे।[256] मुगल सम्राट अकबर ने आगरा और बंगाल की परस्पर आर्थिक एवं व्यापारिक

निर्भरता को ध्यान में रखकर बंगाल को मुगल साम्राज्य में मिलाने का निश्चय किया।[257]

भारत और विदेशों के बीच व्यापार काबुल के रास्ते होता था। पुर्तगालियों का प्रभुत्व हिन्द महासागर में स्थापित हो जाने के बाद काबुल के मार्ग वाले व्यापार का महत्व बढ़ गया। कई सड़कें काबुल को बदखशाँ, वल्ख, कारागर, कन्धार और ईरान से जोड़ती थी।[258] ताजे फल फरगाना, बुखारा और बदखशाँ से काबुल मार्ग से भारत में आते थे। रेशम, लाल, चमड़ा, गुलाम और घोड़े बुखारा से इस मार्ग से भारत में भेजे जाते थे। ट्रेवर्नियर ने लिखा है कि प्रतिवर्ष 50 हजार रूपयों के घोड़ों का व्यापार काबुल के रास्ते से होता था।[259] ऐसा अनुमान किया जाता है कि अकबर के समय 56 लाख रूपये की आय बहुमूल्य धातु, सोने, चाँदी और ताँबे के रूप में व्यापार से होती थी।[260] सिंध नदी के पश्चिमी किनारे पर बसा थट्टा मुगल काल में एक बड़ा व्यापारिक केनद्र था। यहाँ के व्यापारी मुल्तान, लाहौर और आगरा की मण्डियों से सम्पर्क स्थापित कर के माल की खरीद और बिक्री करते थे।

गुजरात की भौगोलिक स्थिति के कारण यहाँ के नगर और बन्दरगाह व्यापार के बड़े केन्द्र थे। यहाँ खेतों में अनाज की कम उपज होती थी, इसीलिए यहाँ के लोग उद्योग-धन्धों में लगे हुए थे। बहुत से बड़े-बड़े व्यापारी, जो अन्तरदेशीय और विदेशों से व्यापार करते थे, यहाँ आलीशान

मकानों में रहते थे। प्राचीन समय से यहाँ के नगर पाटन, अनहिलवाड़ा, चम्पानेर, सिरोही और सिंधपुर, व्यापारिक दृष्टि से प्रसिद्ध थे।[261] यहाँ के प्रमुख बन्दरगाह ब्रोच, सोमना, द्वारका, कैम्बे और ड्यू थे। मुगल-काल में अहमदाबाद[262] की प्रगति हुई। सम्भवत: प्रान्तीय राजधानियों में अहमदाबाद सब से बड़ा नगर था।[263] यहाँ का व्यापार दो प्रकार का था- क्षेत्रीय व्यापार और विदेशी व्यापार। इस नगर में 20 बड़ी-बड़ी अनाज की मण्डिया थी। पास के गाँवों से अनाज लेकर यहाँ संग्रहीत किया जाता था। ऐसा समझा जाता है कि हिन्दू बनिया, जो अहमदाबाद में रहते थे अनाज का व्यापार करते थे।[264] यहाँ की साधारण तौल 'मन' थी, लेकिन प्रत्येक स्थान और वस्तु के लिए इसके वास्तविक वजन में अन्तर था।[265] यह नगर नील का प्रमुख बाजार था। ऐसा समझा जाता है कि 16 से 20 हजार मन नील प्रतिवर्ष यहाँ से दूसरे स्थानों को भेजी जाती थी।[266] यहाँ की नील बयाना की नील से घटिया किस्म की होती थी, जिसकी कीमत बढ़ती रहती थी। नील के व्यापार में आर्मोनिया, ईरान, यूरोप और गुजरात के बोहरा व्यापारी रूचि लेते थे। अहमदाबाद से शोरा और रेशमी कपड़ों का व्यापार बहुत अधिक होता था। यहाँ के कई किस्म के रेशम की आगरा के बाजारों में माँग थी।[267] यहाँ का बना कागज साम्राज्य के दूसरे भागों में भेजा जाता था।[268] इतिहासकारों का कहना है कि प्रति 20 दिन पर माल से लदा हुआ 200 गाड़ियों का काफिला यहाँ से कैम्बे जाता था।[269] सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में अहमदाबाद

में इतना धन आया कि यहाँ के महाजनों ने ऋण पर सूद की दर कम कर दी।[270] यहाँ के दलाल निर्माताओं और व्यापारियों में सम्पर्क स्थापित कराने में अधिक सक्रिय थे। वे अपने व्यवहारों और कार्यों में ईमानदार थे।[378]

समुद्री व्यापार

अरब भूगोल वेत्ता सिंध में देबल बन्दरगाह से परिचित थे, पर बाद में उसका नाम विलीन हो गया और वह दीदूल सिंध के नाम से जाना जाने लगा लेकिन इसका वास्तविक नाम लारी बन्दरगाह था। यह सिंध नदी के मुहाने पर समुद्र के किनारे स्थित था।[271] इसका थट्टा मुल्तान और लाहौर से सीधा सम्पर्क था।[272] यहाँ से रूई का माल, नील, ईरान और अरेबिया जाता था। अकबर ने थट्टा पर अधिकार कर लिया था। पुर्तगालियों के व्यापारिक प्रतिनिधियों ने मुगल प्रशासकीय अधिकारियों के साथ मित्रता स्थापित की। मोरलैण्ड का कहना है कि मानसून की दृष्टि से इस बन्दरगाह की स्थिति ठीक नहीं थी।

गुजरात के बन्दरगाह पहले की तरह मुगल काल में भी व्यापार के प्रमुख केन्द्र बने रहे। 16 वीं सदी के प्रारम्भ में हिन्द महासागर में आने वाले सभी जहाज कैम्बे में रूकते थे। लगभग 300 जहाज यहाँ पर आते थे और यहाँ से जाते थे। 1617-18 के नवम्बर और फरवरी महीनों में 380 जहाज कैम्बे से आते हुए दिखाई पड़े।[273] प्रतिवर्ष 30 से 40 जहाज रेशमी और सूती कपड़े से लदे कैम्बे से दूसरे देशों को जाते थे। नील, कागज, चमड़े

का सामान, कच्चा चमड़ा, अफीम, लोहा, चीनी, अदरक, रूई, हींग, बहुमूल्य पत्थर कैम्बे से बाहर भेजे जाते थे। सत्रहवीं सदी के प्रारम्भ में कैम्बे से 10 लाख टन माल प्रतिवर्ष भेजा जाता था।[274] यहाँ माल पर साढ़े तीन प्रतिशत चुंगी ली जाती थी।[275]

सूरत संसार के प्रमुख बन्दरगाहों में गिना जाता था। सूरत से मुसलमान यात्री हज के लिये जाते थे, इसीलिए मुगल सम्राटों ने यहाँ के विकास में रूचि दिखाई।[276] सूरत से साम्राज्य के उत्तर और दक्षिण भागों में माल आता और भेजा जाता था। यहाँ से अधिक मात्रा में रूई का सामान, गलीचे, नील, अफीम, लोहा, चीनी, मसाले और चन्दन विदेशों को भेजे जाते थे।[277] जो जहाज सूरत को लोटते थे उनमें सोना, चाँदी और ताँबा भरा रहता था। व्यापारिक माल बहुत कम रहता था।[278] अबुल फज्ल के अनुसार चुंगी साढ़े 2प्रतिशत ली जाती थी। फिन्च के अनुसार माल पर साढ़े 2 प्रतिशत, खाद्यान्न पर 3 प्रतिशत और धान पर 2 प्रतिशत चुंगी ली जाती थी।[279] पेल्सर्ट के अनुसार चुंगी साढ़े 3 प्रतिशत ली जाती थी।

कैम्बे और सूरत के बढ़ते हुए व्यापार को देखकर हिन्दू, मुस्लिम व्यापारी इन स्थानों में आकर बस गये। 17 वीं सदी में कैम्बे बन्दरगाह की अवनति होने लगी और उसका स्थान सूरत ने ले लिया। सराफ आधुनिक बैंक का कार्य करते थे। मुगल सम्राटों ने इन व्यापारिक केन्द्रों की सुरक्षा के लिए उपाय किए। सूरत का सम्पर्क बुरहानपुर से भी था। आगरा और सूरत के

बीच सारा यातायात बुहरानपुर होकर होता था। बुहरानपुर से आगरा को रूई भेजी जाती थी। बुहरानपुर में सभी आवश्यक वस्तुओं का भण्डार था। इस नगर में बन बजारों का काफिला (कभी-कभी डेढ़ मील लम्बा) सामान पहुँचाता था।[280]

उड़ीसा के समुद्र तटीय प्राँत में अंजेली और जलेसर दो छोटे बंदरगाह थे। यहाँ अंजेली मे पूर्वी द्वीप समूह और बंगाल से जहाज आकर रूकते थे और वापस जाते समय चावल और कपड़ा ले जाते थे।[281] बंगाल में सतगाँव प्रसिद्ध बंदरगाह था। यहाँ बहुत से बाजार थे और भारतीय और विदेशी व्यापारी रहते थे।[282] सन् 1535 के बाद सरस्वति नदी का बहाव बदल गया। इससे इस बंदरगाह की उपयोगिता समाप्त हो गई।[283] हुगली गंगा नदी के किनारे बसा था। प्रारम्भ में पुर्तगाली इसका उपयोग करते थे। 1579-80 में मुगल सम्राट के द्वारा उनको व्यापार करने की अनुमति दी गई थी। हुगली से पुर्तगाली जौनपुर के बने मोटे-गलीचे, इमरती और कुछ रेशमी कपड़े ले जाते थे। इसके अतिरिक्त यहाँ से सिले हुए गद्दे, शामियाना और खेमा लगाने का सामान ले जाते थे। 1638 में पुर्तगालियों ने 2 लाख रूपया का सामान एक व्यापारी से खरीदा, जिसमें कई रंग के रेशम, चीनी, घी, चावल, नील काली मिर्च और नमक सम्मिलित थे।

पहले दिल्ली के सुल्तानों ने समुद्र तट के नगरों की प्रशासनिक व्यवस्था के लिये एक अलग अधिकारी नियुक्त किया, जिसे 'अमीरे बहर'

कहा जाता था।[284] मुगल काल में इस अधिकारी को 'मीरे बहर' कहा जाता था। उसका कार्य जहाजो की निगरानी करना और बंदरगाहों के कार्य को सुचारू रूप से चलाना था। मीरे बहर का काम जहाजों का निर्माण करवाना भी था। मीरे बहर का कार्य अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को बढ़ावा देना था। पुर्तगालियों (फिरंगियों) को शान्तिपर्वूक हिन्द महासागर में व्यापार करने की अनुमति मुगल शासकों नें प्रदान की। पश्चिमी पुर्तगालियों को किले बनाने पर प्रतिबन्ध थे। उनके लिये यह अनिवार्य था कि एशियाई व्यापारियों को व्यापारिक सुविधाएँ और सुरक्षा प्रदान करें। यह व्यवस्था बहुत समय तक चलती रही क्योंकि पुर्तगालियों के विरूद्ध एशियाई व्यापारियों को कोई शिकायत मुगल प्रशासन को नहीं मिली। पूर्वी तट पर हुगली के बन्दरगाह को मुगलों ने पुर्तगालियो को व्यापार करने के लिए दे दिया, लेकिन यहाँ किले बनाने की अनुमति नहीं दी।[285]

यह उल्लेखनीय है कि किसी भी भारतीय राज्य ने समुद्र तट पर पुर्तगालियों से संघर्ष नहीं किया, क्योंकि उनकी कोई समुद्री शक्ति नहीं थी, अपने बन्दरगाहों से व्यापार द्वारा जो आय प्राप्त करते थे उसी से वे सन्तुष्ट थे। उन्होंने अपने बन्दरगाहों को सुरक्षित रखने का कोई प्रयास नहीं किया।[286] अकबर गुजरात से लाल सागर तक अपने जहाजों को भेजता था लेकिन वे जहाज पुर्तगालियों के अनुमति पत्र (लाइसेन्स) के अन्तर्गत जाते थे। दक्षिण में विजयनगर का सारा व्यापार 1542 ई0 के सन्धि के अनुसार पुर्तगालियों के

अधिकार में था। बीजापुर राज्य का पुर्तगालियों से संघर्ष भूमि पर होता था, लेकिन बीजापुर को यह आभास था कि पुर्तगालियों को वह समुद्र से भगा नहीं सकता। कालीकट के जमोरिन ने पुर्तगाली डाकुओं से सुरक्षा के लिए कई युद्ध किये। कुछ पुर्तगाली जमोरिन को कर देते थे लेकिन उसे अपनी सामुद्रिक शक्ति की कमजोरी का ज्ञान था। युद्ध में वह पुर्तगालियों की बराबरी नहीं कर सकता था।

मुगल काल में जैसा कि समकालीन इतिहासकारों के विवरण से पता चलता है, व्यापारिक माल भूमि मार्ग से बहुत कम जाता था। ये मार्ग बहुत कम थे। इस काल में दो प्रमुख भूमि मार्ग थे- काबुल और बहराइच।[287] यद्यपि कन्धार के मार्ग से व्यापार की सम्भावना था, परन्तु सदैव यह मुगलों और ईरानियों में सघर्ष का क्षेत्र रहा। मुगलों का अधिकार कन्धार पर थोड़े समय तक रहा, परन्तु व्यापारिक दृष्टि से इस मार्ग का कोई महत्व नहीं रहा। मुगल साम्राज्य और पश्मिी इस्लामी प्रदेश का व्यापारिक बन्धन बहुत प्रगढ़ था और काबुल के माध्यम से दोनों राज्यों के व्यापारिक माल का आदान प्रदान होता था।

इसका कारण यह था कि पश्चिमी मुस्लिम राज्यों में केवल भारतीय माल की ही खपत नहीं थी, बल्कि इन राज्यों का तैयार किया हुआ काफी माल मुगल राज्य में भेजा जाता था, जहाँ उसकी बहुत अधिक आवश्यकता थी, जैसे बहुमूल्य पत्थर। चूंकि भारतीय समुद्र पर पुर्तगालियों

की शत्रुतापूर्ण कारवाइयां थी, यह वैकल्पिक व्यापारिक मार्ग काबुल के दोनो तरफ इस्लामी राज्यों के लिए वरदान था। यही कारण था कि मुगल काबुल में शान्ति बनाये रखना चाहते थे और यहाँ की व्यापारिक उन्नति के लिए करों में काफी कमी कर दी गई। अकबर ने भी काबुल-लाहौर मार्ग को अधिक उपयोगी बनाने के लिए अनेक सुविधाएं दी, जिससे दोनों व्यापारिक केन्द्रों के बीच माल का आदान-प्रदान सुगमता से हो सके।

बहराइच का व्यापारिक मार्ग काबुल की तरह महत्वपूर्ण नहीं था, फिर भी मुगलों ने इस प्राचीन मार्ग का उपयोग पहाड़ी राज्यों और मुगल राज्य के बीच माल के आदान प्रदान के लिए किया। वास्तव में मुगल शासकों ने सभी सम्भावित व्यापारिक मार्गों के उपयोग करने की कोशिश की, न कि केवल कुछ महत्वपूर्ण मार्गों का उपयोग किया

उत्तर पूर्व में एक मार्ग चीन जाने के लिए था, लेकिन इसका उपयोग बहुत कम होता था। 1615 ई0 में सर टामस रो को बताया गया कि प्रति वर्ष एक काफिला आगरा से चीन को जाता था, परन्तु कुछ वर्ष पहले इस मार्ग का विश्‍वास के साथ उपयोग नहीं किया जा सकता था। ऐसा समझा जाता है कि ब्रह्मपुत्र की घाटी के रास्ते व्यापार होता था, परन्तु व्यापार बहुत कम था। ब्रह्मपुत्र से खैबर दर्रे को कोई व्यापारिक मार्ग नहीं था। अबुल फज्ल ने लिखा है कि उत्तर से बहुत सा माल भारत आता था, लेकिन समभवत: वह माल हिमालय का क्षेत्रीय उत्पादन रहा हो। भारत का तिब्बत

से व्यापार बहुत कम व्यापार होता था। काशगर से कश्मीर को कोई काफिला नहीं जाता था, परन्तु थोड़ा सा व्यापारिक माल कुलियों द्वारा ढ़ोया जाता था। व्यावहारिक दृष्टि से केवल दो प्रमुख मार्ग थे-लाहौर से काबुल और मुल्तान से कन्धार, जिसके विषय में उपर लिखा गया है।

अध्याय-3

सन्दर्भ

1. ए0एल0 बाशम, दि वण्डर दैट वाज इण्डिया, पृ0 190
2. तबकाते नासिरी, अंग्रेजी अनुवाद रेवर्टी, पृ0 587
3. प्राणनाथ, एस्टडी ऑफ दि इकनामिक कन्डीशन ऑफ इण्डिया, पृ0 122
4. ए0एल0 बाशम, आपसिट, पृ0 18
5. डा0 बृजनारायण शर्मा सोशल लाइफ इन नार्दन इण्डिया, पृ0 305
6. बुद्ध प्रकाश, सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ इण्डियन कल्चर आन दि इव ऑफ मुस्लिम इनवेजन, पृ0 5
7. एल0 गोपाल, इकनामिक लाइफ आफ नार्दन इण्डिया, पृ0 18
8. बाबरनामा, अनुवाद, ए0 एस0 बेवरिज, जिल्द 2, पृ0 488
9. आर्नोल्ड हैसर, ए0 सोशल हिस्ट्री ऑफ आर्ट, जिल्द 1, पृ0 183
10. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जिल्द 39, पृ0 310
11. ए0 लेनपुल, ओब्लीगेंशस ऑफ सोसाइटी इन दि ट्वेल्फ्थ्ज एण्ड थर्टीन्थ सेन्चूरीज, पृ0 13
12. बुद्ध प्रकाश, आपसिट, पृ0 9-10
13. राजतरंगिणी, 8, 1166, 1183, 1209-12
14. जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जिल्द 30, पृ0 310
15. क्षेमेन्द्र, कला विलास, 2, पृ0 12-13

16. क्षेमेन्द्र, देशोपदेश, 2, पृ0 34

17. उपमितभव प्रपंचकथा, पृ0 88, 427, 500, 554

18. राजतरंगिणी, 6, पृ0 11

19. बर्नी : किनकेड और परसनीस ए हिस्ट्री ऑफ दि मराठा पीपुल, जिल्द 1, पृ0 37; , पृ0 323; वासफ, पृ0 521-31; अब्दुरज्जाक, मतलाउस सदाचन, . इलियट, जिल्द

20. पुष्पा नियोगी, कन्ट्रीब्यूशन टु दि इकनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्थ इण्डिया काम टेन्थ टु टवेल्फथ सेन्चुरी ए0 डी0, पृ0 18

21. के0 एम0 अशरफ-लाइफ एण्ड कन्डीशंस आफ दि पीपुल आफ हिन्दुस्तान, पृ0 85-86

22. मोरलैण्ड- एशिया ऐट दि डेथ ऑफ अकबर, पृ0 268-69;

23. ईश्वरी प्रसाद, हिस्ट्री ऑफ करौना टर्क्स, पृ0 67-74

24. कुरेशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ देहली सल्तनत, पृ0 122

25. डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड, दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मोस्लेम इण्डिया, पृ0 59

26. के0 एस0 लाल, ट्वाइलाइट ऑफ दि देल्ही सल्तनत, पृ0 258

27. डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड, अेरियन सिस्टम, पृ0 60-67

28. बाबरनामा, अनुवाद बेवरिज, जिल्द 2, पृ0 519

29. बर्नी, पृ0 318-19; तारीखे दाऊदी, पृ0 223-24 उद्घृत के0 एस0 लाल, ट्वाइलाइट, पृ0 258; अलकल्लाशन्दी, सुभुल आशा, पृ0 56-57

30. बाबरनामा, अनुवाद बेवरिज, जिल्द 2, पृ0 487-88

31. ई0 बी0 हेवेल, दि हिस्ट्री ऑफ आर्यन रूल इन इण्डिया, पृ0 407-9

32. दि अग्रेरियन सिस्टम ऑफ मुगल इण्डिया, पृ0 249

33. के0 एस0 लाल स्टडीज, पृ0 191, मोरलैण्ड जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जिल्द 4, पृ0 78-79 और जिल्द 14, पृ0 64

34. आर0 सीवेल, ए फारगाटेन एम्पायर, पृ0 379, फुटनोट 2

35. एन0 वी0 रमनैय्या, दि थर्ड डायनेस्टी ऑफ विजय नगर, पृ0 244

36. सर जान स्ट्रैची, इंडिया इट्स एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड प्रोग्रेस, पृ0 126)

37. हिस्ट्री ऑफ फ्रीडम मूवमेण्ट इन इण्डिया, जिल्द 1, पृ0 121

38. इब्नबतूता, डेफ और सैंग, जिल्द 3, पृ0 295; देखिये बर्नी, पृ0 470

39. के0 एस0 लाल, हिस्ट्री खल्जीज, पृ0 290-01

40. अफीफ, पृ0 294, तबकातेअकबरी, जिल्द 1, पृ0 338, फरिश्ता जिल्द 1, पृ0 187

41. मलफूजाने तैमूरी, इलियट, जिल्द 3, पृ0 445; इलियट, जिल्द 4, पृ0 263)

42. बर्नियर, ट्रैवेल्स इन दि मोगल एमपायर, पृ0 288

43. बाबरनामा, जिल्द 2, पृ0 519

44. के0 एस0 लाल, स्टडीज, पृ0 199

45. अफीफ, पृ0 295-96; फीरोज तुगलुक ने एलोरा बाँध में 80 बाग और चित्तोड़ में 44 बाग लगाये। के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 89

46. अमीर खुसरो- इजाजे खुसरवी, जिल्द 4, पृ0 330

47. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 90

48. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द 1, 1935, पृ0 196-203

49. जे0 एन0 दास गुप्ता- बंगाल इन दि सिक्सटीन्थ सेन्चूरी, पृ0 158)

50. मलिक मुहम्मद जायसी, पद्मावत सम्पादित ग्रियर्सन, पृ0 19; एम0 ए0 मैकालिफ, दि सिख रिलीजन, जिल्द 1, पृ0 284

51. जे0सी0रेका लेख हिन्दू मेथड ऑफ मैन्यूफैक्चरिंग सिस्परिट्स, जर्नल ऑफ एशियाट्रिक सोसाइटी बंगाल, 1906

52. अहमद शाह दि बीजक ऑफ कबीर, पृ0 125-69

53. मोरलैण्ड, इण्डिया ऐट दि डेथ ऑफ अकबर, पृ0 129

54. फ्रेसिस्को पेलसर्ट, जहाँगीर्स इण्डिया, अंग्रेजी अनुवाद मोरलैण्ड और जील, पृ0 60

55. तुजुके जहाँगीर, पृ0 300

56. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 416

57. एडवर्ड टेरी वायेज टू ईस्ट इण्डिया; रिप्रिन्ट, लन्दन, 1777, पृ0 97-199

58. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 389, 391, 556, 564

59. पेलसर्ट आपसिट, 61; बर्नियर, पृ0 438; टेडर्स अलीखलर, पृ0 196

60. ट्रेवर्नियर, जिल्द 1, पृ0 238

61. जर्नल ऑफ रायल ऐसियटिक सोसाइटी, 1918, पृ0 379

62. हफ्त इकलीम, पृ0 95; इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 92

63. बाबरनामा, अनुवाद, बेवरिज, जिल्द 2, पृ0 508-9

64. लेटर्स रिसील्ड बाई दि ईस्ट इण्डिया कम्पनी फ्राम इट्स सर्वेन्ट्स इन दि ईस्ट, जिल्द

65. राल्फ फिन्च नरेटिव-सम्पादित जे0 एच0 रीले राल्फफिंच, इंगलैण्ड्स पायनियर टू इण्डिया एण्ड वर्मा, लन्दन 1899, पृ0 107

66. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 389

67. ट्रियस्ट, अनुवाद मोरलैण्ड जर्नल ऑफ इण्डियन हिस्ट्री, जिल्द 16, पृ0 66

68. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 118-19

69. एच0 एम0 इलियट, मेमायस, जिल्द 2, लन्दन 1869, पृ0 249

70. एस0 जे0 पटेल, एग्रीकल्चरल लेबरर्स, पृ0 63-65

71. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 122

72. मोरलैण्ड, एग्रेरियन सिस्टम, पृ0 160-68

73. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 124

74. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 130; मनूची, जिल्द 2, पृ0 450

75. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 350

76. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 135

77. मोरलैण्ड एग्रेरियन सिस्टम, पृ0 122, 279

78. प्राविंशियल गवर्नमेण्ट, पृ0 111, फुटनोट।

79. मोरलैण्ड एग्रेरियन सिस्टम, पृ0 18, फुटनोट।

80. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 139

81. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 139

82. इरफान हबीब, आपसिटम्, पृ0 144

83. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 150

84. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 153-54

85. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 154)

86. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 155)

87. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 162

88. बाबरनामा, अनुवाद बेवरीज, जिल्द, 1, पृ0 379-80, 87

89. आइने अकबरी जिल्द 1, पृ0 175

90. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 164-65

91. अकबरनामा, जिल्द2, पृ0 156; आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 411, 486

92. अजमेर, पृ0 364 उद्धृत इरफान हबीब, आपसिट पृ0 166

93. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 166 फुटनोट

94. अकबर के समय में जलेसर के परगने एक जमींदार ने अपनी सेना में गंवारों का प्रयोग सम्राट की सेना के विरूद्ध लड़ाई में किया। (बदायुनी, जिल्द 2, पृ0 151)

95. अब्बास खाँ सरवानी तुहफाये अकंबरशाही फौलियो-14 बी 15 ए, उदघृत इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 167

96. इरफान हबीब, आपसिट, पृ0 169

97. हमीदा खातून नकवी, अर्वनाइजेशन एण्ड अर्बन सेन्टर्स अण्डर दि ग्रेट मोगल्स 1556-1707, शिमला 1972, पृ0 3

98. एस0 सी0 मिश्र, दि राईज ऑफ मुस्लिम पावर इन गुरात, पृ0 1

99. इलियट, जिल्द 2, अलीगढ़, 1652, इन्ट्रोडक्शन, पृ0 52

100. अलबरूनीज इंडिया, जिल्द 1 अनुवाद सखाऊ, पृ0 101

101. के0 ए0 निजामी, आपसिट, पृ0 85

102. मेडिवल इण्डियन कल्चर, पृ0 139

103. बुद्ध प्रकाश, आपसिट, पृ0 21

104. पी. के0 आचार्य, इंडियन आर्किटेक्चर, पृ0 40; डॉ0 एन0 डी0 एन0 गुप्त, हिन्दू साइंस आफ आर्किटेक्चर पृ0 168-69,

105. पुष्पा नियोगी-कन्ट्रीब्यूशन्स टु दि इकनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया फ्राम टेन्थट टू ट्वेल्फथ सेन्चुरीज ए0 डी0, पृ0 116

106. हमीदा खातून, आपसिट, पृ0 121

107. आइने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 207

108. तबकाते अकबरी, जिल्द 2, पृ0 255, मासिरे रहीमी, जिल्द 2, पृ0 193, 469-78, खाफी खाँ जिल्द 1, पृ0 278)

109. बर्नी पृ0 318; इलियट जिल्द 3, पृ0 576; के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 166; केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द 3, पृ0 110 अलकलकशन्दी, सुमुल अशा, पृ0 30

110. ख्वान्दमीर हुमायूँनामा, पृ0 139-39, उद्धृत के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 166

111. मलफुजाते तैमुरी, पृ0 304-305)

112. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 171

113. जर्नल ऑफ डिपार्टमेण्ट ऑफ लेटर्स, कलकत्ता विश्वविद्यालय, 1927, पृ0 116; दि बुक ऑफ ड्यूरेट बारबोसा जिल्द 2, पृ0 147

114. तारीखे फरिश्ता, जिल्द 2, बम्बई, पृ0 787

115. के0 एस0 लाल ट्वाईलाइट, पृ0 265

116. के0 एस0 लाल ट्वाईलाइट, पृ0 267

117. मोरलैण्ड, इण्डिया एट दि डॆथ ऑफ अकबर, पृ0 172-74

118. गिब एण्ड बोवेन, इस्लामिक सोसाइटी एण्ड दि वेस्ट, जिल्द 1, पृ0 272

119. मोरलैण्ड- इण्डिया एट दि डेथ ऑफ अकबर, पृ0 172-74

120. बर्नियर, ट्रेवेल्स इन दि मोगल एम्पायर, पृ0 228

121. एस0 ए0 ए0 रिजवी- तुगलुक कालीन भारत, जिल्द 2, पृ0 328-29

122. आईने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 62-67; मोरलैण्ड, इण्डिया एट दि डेथ ऑफ अकबर, पृ0 176

123. बर्नियर, आपसिट, पृ0 229

124. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 94

125. बर्नी के अनुसार अलाउद्दीन ने शुस्तरी, भैरना और देवगिरी किस्म के कपड़ों की बिक्री पर प्रतिबन्ध लगाया। (आपसिट, पृ0 311)

126. मलफूजाते तैमूरी, पृ0 289

127. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 98

128. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 98

129. पुष्पा नियोगी, आपसिट, पृ0 243

130. आइनेअकबरी, जिल्द 5, पृ0 35-36

131. बुद्ध प्रकाश, आपसिट, पृ0 31

132. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 99, जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1895, पृ0 432

133. तारीखे फखरूद्दीन मुबारकशाह, पृ0 22-23

134. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 185-87

135. खजायनुलफुतूह, पृ0 13

136. अलबरूनीज इण्डिया, अंग्रेजी अनुवाद सखाऊ, जिल्द 2, पृ0 144-45 6 के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 101

137. बाबरनामा, पृ0 268-69; के0 एम0 अशरफ, पृ0101

138. दि बुक ऑफ ड्यूरेट बारबोसा, जिल्द 1, पृ0 155

139. बी0 के0 सरकार, दि पाजिटिव बैकग्राउण्ड ऑफ हिन्दू सोश्योलाजी, इलाहाबाद, 1914, पृ0 124;

140. जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1895, पृ0 532

141. जान फ्राम्पटन, मार्कोपोलो, पृ0 143

142. जर्नल ऑफ रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1895, पृ0 031

143. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 104

144. एन0 सी0 बन्धोपाध्याय- इकानामिक लाइफ एण्ड प्रोग्रेस इन एशियन्ट इण्डिया, जिल्द 1, दूसरा संस्करण, 1945

145. सर हेनरी यूल, दि बुक ऑफ सेर मार्कोपोलो, जिल्द 2, पृ0 393-94

146. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 104-5

147. बारबोसा ने कैम्बे के श्रमिकों की प्रशंसा की है। (बारबोसा, जिल्द 1, पृ0 142) वरमेथा ने भारतीयों को संसार में सबसे कुशल और योग्य कारीगर स्वीकार किया है। (दि ट्रेवेल्स ऑफ लूडोविक वर्थेमा, पृ0 286)।

148. बारबोसा, जिल्द 1, पृ0 146

149. हमीदा खातून, अर्बनाईजेशन, पृ0 37

150. आईने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 47-48; निगारनामाऐ मुन्शी, पृ0 174; हमीदा खातून नकवी, अर्बन सेन्टर्स, पृ0 137-42

151. हमीदा खातून नकवी, अर्बन सेन्टर्स, पृ0 137-42

152. जर्नल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, जिल्द 10, 1924, भाग 3, पृ0 263-64

153. करेसपाण्डेन्स ऑफ कार्नवालिस, सम्पादित सी0 एस0, जिल्द 1, पृ0 227

154. आर0 हकल्यूत, बायेजेज, जिल्द 3, पृ0 लन्दन 1927, पृ0 206

155. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 280

156. आई0 एच0 कुरेशी, दि एडीमनीट्रेशन ऑफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 171-74

157. तुजुके जहाँगीरी, रोजर्स, पृ0 252

158. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 43

159. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 68; तुजुके जहाँगीरी, रोजर्स, पृ0 43, 283; बादशाहनामा, जिल्द 2, पृ0 214; मासिरे रहीमी, जिल्द 2, पृ0 798, 605, 607 और 609

160. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 70

161. डब्ल्यू0 फास्टर, दि इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1618-69, आक्सफोर्ड, 1909-1927; पृ0 1637-41, पृ0 134; 1622-23, पृ0 109

162. डब्ल्यू0 फास्टर, दि इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1618-69, आक्सफोर्ड, 1909-1927; पृ0 1637-41, पृ0 134; 1622-23, पृ0 109

163. आईने अकबरी, जिल्उद 1, पृ0 79-80;

164. आईने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 190; आफताबनामा फोलियो 244 ए; हदीकात, फोलिया 125ए; उद्धृत हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 44

165. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 237-39;

166. आई0 एच0 कुरेशी, दि एडमिनीस्ट्रेशन ऑफ दि मुगल एम्पायर, पृ0 175

167. अकबरनामा, जिल्द, पृ0 725

168. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 140

169. जे0सी0 रे लेख जर्नल ऑफ बिहार उड़ीसा रिसर्च सेसाइटी, जिल्द 3, भाग 2, 1917, पृ0 212

170. बर्नियर, आपसिट, पृ0 422

171. एफ0 पाइरार्ड, दि वायेज ऑफ पाइरार्ड, अनुवाद ग्रे, दी जिल्द लन्दन 1887, जिल्द 1, पृ0 329

172. बर्नियर पृ0 422

173. अहमद ,यादगार, पृ0 154; बदाँयूनी, जिल्द 3, पृ0 95, 338

174. बाबरनामा, जिल्द 2, पृ0 487

175. बर्नियर, आपसिट, पृ0 440 फुटनोट।

176. बाबरनामा, जिल्द 1, 253

177. तबकाते अकबरी, जिल्द 2, पृ0 344

178. मार्कोपोलो, ट्रेवेल्स आफ मार्कोपोलो, सम्पादित और अनुवाद मसिडेन, लन्दन, 1818, पृ0 991

179. हकल्यूत्स वायेजेज, जिल्द 3, पृ0 286

180. मार्कोपोलो, आपसिट, पृ0 256

181. एच0 टी0 सोर्ले, शाह अब्दुल लतीफ भट्टी, आक्सफोर्ड, 1941, जिल्द 1, पृ0 98

182. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 50

183. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 96; जिल्द2, पृ0 356;

184. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 97-98

185. एलफिन्सटन, हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 489

186. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 57, 102

187. खाफी खाँ, जिल्द 1, पृ0 199-200

298. अकबर ने ताँबे के दाम का मूल्य बढ़ा दिया (40 दाम = 1 रूपया) आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 33

188. बारबोसा, जिल्द 1, पृ0 40; रानाडे ऐसेज आन इण्डियन इकनामिक्स, पृ0 171

189. आइने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 135; आर0 फिच0 इंगलैण्ड्स पायनियर टु इण्डिया, रीली, लन्दन, 1899, पृ0 100

190. तुजुके जहाँगीरी, जिल्द 2, पृ0 147, एच0 के0 नकवी अर्बन सेन्टर्स, पृ0 220-222, 233-38, 238-43

191. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 54

192. तारीखे नशीदी, पृ0 426, 428 इकबाल नामा जहाँगीरी, पृ0 155, बाबरनामा, जिल्द 2, पृ0 326; बारबोसा, जिल्द 1, पृ0 125

193. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाईजेशन, पृ0 55

194. फीरोज तुगलूक के समय में एक बैलगाड़ी का किराया 4 से 6 जीतल और घोड़े का किराया 12 जीतल था। के0 एस0 लाल, स्टडीज, पृ0 279

195. एल0 गोपाल, आपसिट, पृ0 100

196. राजतरंगिणी, 5 84; 7 347, 714, 1628

197. पी0सी0 चौधरी, दि हिस्ट्री ऑफ दि सिविलाइजेशन ऑफ दि पीपुल ऑफ आसाम टु दि ट्वेल्फथ सेन्चुरी ए0डी0, पृ0 379

198. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 105

199. इलियट, जिल्द 2, पृ0 380; इलियट, जिल्द 2, अलीगढ़, पृ0 73

200. के0 एम0 अशरफ, आपसिट पृ0 106

201. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 106

202. टाड, आपसिट, जिल्द 2, पृ0 1117

202. पुष्पा नियोगी, आपसिट, पृ0 158; एपीग्राफिया इण्डिका, जिल्द 23, पृ0 131; इलियट, जिल्द 2, पृ0 122-25

अनहिलवाड़ में किसी विशेष वस्तु के 84 बाजार थे। टाड-ट्रेवेल्स इन वेस्टर्न इण्डिया, पृ0 156; जे0 बर्जेस, आरकीटेक्चरल एन्टीक्वीटीज ऑफ नार्दन गुजरात, पृ0 34

203. तुंगेश्वर का बाजार मन्दिर के नजदीक था- राजतरंगिणि 7, 251 नोट 190 मुल्तान का मन्दिर बाजार के बीच में स्थित था- इलियट, जिल्द 1, पृ0 28, 35, 82

204. के0 एफ0 अशरफ, आपसिट, पृ0 106

205. टाड, आपसिट, जिल्द 2, पृ0 1111-12

206. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 106

207. एपीग्राफिया इण्डिया, जिल्द 12, पृ0 188

208. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 107

209. टाड आपसिट, जिल्द 2, पृ0 1111-12

210. बाकयाते मुश्ताकी, फीलियो-31 बी, उद्घृत, वही।

211. एनसाइक्लोपिडिया ब्रिटानिका, 1929 संस्करण, जिल्द 3, पृ0 44

212. तारीखे फरिश्ता, ब्रिग्स, जिल्द 1, पृ0 166

213. सतीश चन्द्र लेख- 'कामर्स एण्ड इण्डस्ट्री इन दि मेडिवल पीरियड' रीडींग्स इन इण्डियन इकनामिक हिस्ट्री, पृ0 57

214. बर्नी, आपसिट, पृ0 316-18

215. अफीफ, आपसिट, पृ0 180-295

216. बर्नी, आपसिट, पृ0 298

217. दि ट्रेवेल्स ऑफ लूडोविक वर्थेमा, पृ0 163

218. एल0सी0 जैन, इन्डीजेनस बैकिंग इन इण्डिया, पृ0 10

219. एल0 गोपाल, आपसिट, पृ0 116

220. एच0 पीरेन-इकनामिक एण्ड सोशल हिस्ट्री ऑफ मेडिवल यूरोप पृ0 1-3;

221. कामिलुत, तवारीख, इलयिट, जिल्द 2, पृ0 254

222. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 111

223. एल0 गोपाल, आपसिट, पृ0 108-109

224. आर0सी0 मजुमदार, हिन्दू कालोनीज इन दि फार ईस्ट, पृ0 226

225. इण्डियन हिस्टारिकल क्वाटरली, जिल्द 8, पृ0 683-71

226. दि एज0 ऑफ इम्पिरियल कन्नौज, पृ0 448-52

227. एल0 गोपाल–आपसिट, पृ0 112

228. तबकाते अकबरी, जिल्द 1, पृ0 98 (लखनऊ संस्करण)

229. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 113; सर हेनरी मूल, दि बुक ऑफ सेर मार्को पोलो, जिल्द 1, पृ0 83-84; जिल्द 2 पृ0 340

230. किताबुर रेहला, जिल्द 1, पृ0 156

231. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 113

232. पुष्पा नियोगी, आपसिट, पृ0 153

233. पुष्पा नियोगी, आपसिट, पृ0 153

234. मोरलैण्ड, दि एग्रेरियन सिस्टम ऑफ मोस्लेम इण्डिया, पृ 69

235. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, जिल्द 21, 1925, पृ0 562 इस्लामिक कल्चर, जिल्द 7, 1933, पृ0 286

236. बी0 स्मिथ, अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, पृ0 68, 93;

237. दि ट्रैवेल्स ऑफ लूडेविक बर्थेमा, पृ0 111, 212

238. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 115

239. अकबरनामा, जिल्द 1, पृ0 207, 242, 2999, एम0 ए0 मेकालिफ, आपसिट, जिल्द 1, पृ0 51

239. के0 एम0 अशरफ, आपसिट, पृ0 115

240. किताबुर रेहला, जिल्द 1, पृ0 199-200

241. अमीर खुसरो इजाजेखुसरवी, लखनऊ 1857, जिल्द 2, पृ0 319

242. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 59

243. आई0 एच0 कुरेशी, दि एडमिनीस्ट्रेशन ऑफ सुल्तानेल ऑफ देहली, पृ0 198-99)।

244. आईने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 44;

245. तुजुके जहाँगीरी, जिल्द 1, पृ0 8; औरंगजेब का मुहम्मद हाशिम को फरमान, अनवुाद जे0 एन0 सरकार जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, जून 1908, पृ0 231; इलियट, जिल्द 4, पृ0 417; पी0 सरन, प्राविंशियल गवर्नमेंट अंडर दि मुगल्स, पृ0 410

246. आईने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 354; अकबरनामा, जिल्द 3, पृ0 523

247. पीटर मण्डी, जिल्द 2, पृ0 189-93; अकबरनामा, जिल्द 3, पृ0 62; तबकाते अकबरी, जिल्द 2, पृ0 409; बारबोसा, जिल्द 1, पृ0 141; आईने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 140

248. आईने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 190

249. आर0 फिच रीले, आपसिट, पृ0 100

250. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाईजेशन, पृ0 76

251. आइने अकबरी, जिल्द 2, पृ0 405; एफ0 मनरिक, ट्रेवेल्स ऑफ एफ0 एस0 मनरिक, 1629-1643, जिल्द 2,

252. जे0 बी0 टेर्वनियर, ट्रेवेल्स इन इण्डिया, अनुवाद वी0 ब्राल दी जिल्द 1, लंदन 1889, जिल्द 1, पृ0 92

253. हमीदा खातून नकवी- अर्बनाइनेशन, पृ0 80

254. हमीदा खातून नकवी- अर्बनाइजेशन, पृ0 88

255. अबुलफज्ल के अनुसार अहमदाबाद नगर में 84 पुरा थे। प्रत्येक पुरा में लगभग 1 लाख लोग रहते थे इस प्रकार यहाँ की आबादी 8 से 9 लाख थी।

256. हमीदा खातुन नकवी- अर्बन सेन्टर्स, पृ0 81-82

257. डब्ल्यू0 फास्टर दि इंगलिश फैक्ट्रीज इन इण्डिया, 1618-69 आक्सफोर्ड, 1909-27; 1630-33, पृ0 62

258. मण्डी के अधिकारी के पास एक तालिका रहती थी, जिससे वस्तुओं की तौल की वास्तविक जानकारी होती थी।

259. डब्ल्यू फास्टर-आपसिट, पृ0 125

260. आइने अकबरी, जिल्द 1, पृ0 98-99

261. डब्ल्यू0 फास्टर, आपसिट, पृ0 229

262. डे0 लीट0 दि एम्पायर ऑफ दि ग्रेट मुगल अनुवाद होयलैण्ड बम्बई, 1928, पृ0 19-20

263. डब्ल्यू0 फास्टर, आपसिट, पृ0 96, 332, यहाँ आगरा और सूरत की अपेक्षा सूद की दर बहुत कम थी।

264. हमीदा खातून नकवी-अर्बनाइनेशन, पृ0 102

265. इब्नबतूता, रेहला, पृ0 10; मासिरे रहीमी, जिल्द 2, पृ0 348

266. मोरलैण्ड, इण्डिया एट दि डेथ ऑफ अकबर, पृ0 191

267. डब्ल्यू फास्टर, आपसिट, पृ0 31

268. बालकृष्ण-कामर्शियल रिलेशंस बिटविन इण्डिया एण्ड इंगलैण्ड, 1601-1767, लन्दन 1624, पृ0 16

269. एन0 डान्टन, दि वायजेज ऑफ एन0 डान्टन टु दि ईस्ट इण्डीज, 1614-15 सम्पादित डब्ल्यू फास्टर, हकल्यूत सोसाइटी, लन्दन 1939, पृ0 150

270. अकबर नामा, जिल्द 3, पृ0 205,6, 271-72, 306, 410, 12, 569, 581

271. डब्ल्यू फ़ास्टर 1618-21, आपसिट, 76 84, हमीदा खातून नकवी, अर्बनाईजेशन पृ0 116

272. एफ0 पेल्सर्ट, जहाँगीर्स इण्डिया, अनुवाद मोरलैण्ड और जोल केम्ब्रिज 1935, पृ0 40

273. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाईजेशन, पृ0 117

274. एफ0 पेल्सर्ट, आपसिट, पृ0 8; मनरीक, जिल्द 2, पृ0 99

275. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाईजेशन, पृ0 137

276. गुलाम हुसेन सलीम रियजुसल्तानी, पृ0 33

277. आई0 एच0 कुरेशी, दि एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि सल्तनत ऑफ देहली, पृ0 148

278. दि वायेज ऑफ एफ पाइरार्ड, अनुवाद ग्रे, जिल्द 1, लन्दन, 1887, पृ0 334

279. मोरलैण्ड, इण्डिया एट दि डेथ आफ अकबर, पृ0 190

280. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 21

281. रियाजुल इस्लाम इण्डो पर्शियन रिलेशंस, ईरानियन कल्चर फाउण्डेशन, तेरान, 1970, पृ0 2,3,15–18, 24, 25, 35, 40–42

282. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन पृ0 22

283. हमीदा खातून नकवी, अर्बन सेन्टर्स, पृ0 41,45

284. हमीदा खातून नकवी, अर्बनाइजेशन, पृ0 22

285. तुजुके जहाँगीरी, जिल्द 1, पृ0 47

286. हमीदा ख़ातून, अर्बनाइजेशन, पृ0 70

287. हमीदा खातून नकवी–अर्बनाइजेशन, पृ0 22

चतुर्थ अध्याय

जायसी युगीन धार्मिक परिस्थितियाँ

चतुर्थ अध्याय

जायसी युगीन धार्मिक परिस्थितियां

शूफियों का चरम लक्ष्य परमात्मा के साथ 'एकमेक' होना है। 'अलहक्क' के साथ पुनः 'एकल' प्राप्त करना सूफी साधना का चरम लक्ष्य है। सूफी शाधक जब देखता है। और उसे जब यह अनुभूति होती है कि समस्त क्रियाओं और अस्तियों का एकमात्र कारण परमात्मा की शक्ति है तथा यह समस्त दृश्यमान जगत् उसकी अभिव्यक्ति मात्र है तब वह उस रहस्य को जानना चाहता है। यह जानता है कि उस रहस्य का भेदन तर्क और बुद्धि का विषय नहीं है, उसे जानने के लिए मनुष्यों को साधना द्वारा अपने आपको तैयार करना पड़ता है कि यह उस ज्योतिकी एक किरण को अपने हृदय में ग्रहण करे और उसके आलोक में 'अल-हक्क' को देख सके। वह जानता है कि यह असत् जगत् दर्पण की नाई उसके गुणों और नामों को प्रतिबिम्बित करता है तथा मनुष्य अपने भीतर इस समस्त ब्रह्माण्ड को छिपाये हुए परमात्मा के सभी गुणों को प्रतिबिम्बित कर रहा है। लेकिन मनुष्य इतना ज्ञान प्राप्त कर ही सन्तोष नही कर लेता। इस रहस्य को जानना ही वह अपना लक्ष्य नहीं मानता बल्कि उससे भी आगे बढ़कर वह उस परम सत्य के साथ एकमेक हो जाना चाहता है जो सब कुछ का उद्‌गम, सब कुछ का परिचालक है तथा जिसकी सत्ता ही एकमात्र सत्ता है तथा जो एकमात्र शक्ति है। सूफियों के

चरम लक्ष्य तथा फना और बक़ा आदि के सम्बन्ध में आगे चलकर हम विस्तृत रूप से कहना चाहेंगे। उसके पहले 'भावविष्टावस्था' को समझाने की चेष्ट करेंगे क्योंकि सूफभ साधना में इसका बहुत महत्व है।

सूफियों का विश्वास है कि परमात्मा प्रेम-स्वरूप है और यह उन मनुष्यों को इसका रहस्य नहीं बतलाता जो इस प्रेम के पाने के अधिकारी नहीं। जिसने अपने समस्त कलुष को धो नहीं डाला है और जिसने सांसारिक वस्तुओं के प्रलोभन का त्याग नहीं किया है। उसे इस पेम केपाने का अधिकार नहीं जो भगवान से प्रेम करते हैं उनसे भगवान भी प्रेम करता है। विशुद्ध आत्मा, परमात्मा की ही प्रतिच्छवि है अतएव उसे प्रेम करने का अधिकार देकर परमात्मा मानो अपने को ही अधिकार देता है। परमात्मा के प्रति उसी के हृदय में प्रेम होता है जिससे परमात्मा स्वयं प्रेम करता है। अपने प्रेमियों के हृदय में वह प्रेम को धरोहर की तरह अपने ही लिए रख छोड़ता है। सूफी कहते हैं कि भगवान ही प्रेम है और अपने ही लिए रख छोड़ता है। सूफी कहते हैं कि भगवान ही प्रेम है और अपने ही आनन्द के लिए उसे मनुष्य के हृदय में उत्पन्न करता है। अतएव सूफी साधना के प्रारम्भ में भी प्रेम रहता है और उसकी परिणति भी प्रेम में होती है। बायजीद बिस्ता भी का कहना है कि "मैं समझता था कि मैं परमात्मा से प्रेम करता हूँ लेकिन गौर करने पर मैंने देखा कि मेरे प्रेम करने के पहले से वह मुझसे प्रेम करता है।" इस प्रेम को पाकर प्रेमी और प्रियतम दोनों सन्तुष्ट होते हैं। प्रेम के द्वारा जब प्रेमी के सारे

अन्तर्दन्द्वों, सभी वासनाओं का अन्त हो जाता है तब वह आगे बढ़ता है और उसे परमात्मा के दर्शन होते हैं।

सूफी के लिए परमात्मा के अनवरत स्मरण द्वारा इन लतीफों को जाग्रत करना आवश्यक है। 'जिक्र' आदि की विशेष क्रियाओं द्वारा सूफी एक के बाद एक लतीफे को जाग्रत करने में समर्थ होता है और अन्त में उसे परम ज्योति के दर्शन होते हैं।

सूफीमत का अन्य धर्मों और मतों के साथ तुलनात्मक अध्ययन

सूफियों द्वारा प्रतिपादित परमात्मा, आत्मा, सृष्टि-रहस्य सम्बन्धी सिद्धान्त, सूफियों का प्रेम-तत्व, सूफियों का रहस्यवाद, सूफीमत का विकास आदि की चर्चा करते समय हमने बार-बार यह देखा है कि सूफीमत का सनातन-पन्थी इस्लाम के साथ मतैक्य नहीं है। लेकिन हमने यह भी देखा है कि सूफी साधक मूलतः इस्लाम के अनुयायी थे अतएव अपने सिद्धान्तों की विवेचना करते समय वे इस्लाम को अपनी आँखों से ओझल नहीं होने देते थे। जहाँ कहीं भी उन्हें लगता था कि उनके कथन अथवा आचरण के साथ सनातन-पन्थी इस्लाम का मेल नहीं खाता वहाँ अपने दृष्टिकोण के समर्थन के लिए वे कुरान का सहारा लेते तथा अपने ढंग से उसकी व्याख्या करते। उससे अगर काम नहीं चलता तब वे 'हदीसों' की शरण लेते और ऐसा करते समय दूसरों की तरह से उन्होंने भी बहुत सी 'हदीसों' की सृष्टि की। हमने यह भी देखा है कि अपने सिद्धानतों के कारण बहुत से सूफी साधकों को नाना प्रकार

के कष्ट झेलने पड़े और बहुतों को जानने से हाथ धोना पडा। लेकिन इतना सब होते हुए भी अन्त में इस्लाम ने सूफीमत को स्वीकार कर लिया। लेकिन इसे स्वीकार कर लेने का अर्थ यह नहीं है कि सनातन-पन्थी इस्लाम ने अपने सिद्धान्तों को छोड़कर सूफीमत को अपना लिया। सनातन-पन्थी इस्लाम ने उसे बर्दाश्त कर लिया और उसे इस्लाम का अंग मान लिया। सनातन पन्थ इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों और सूफीमत के सिद्धान्तों में जो अन्तर है उसकी विशद विवेचना यहाँ नहीं करनी है। संक्षेपत: उस अन्तरपर प्रकाश डालना ही यहाँ यथेष्ट होगा।

सूफीमत में मुरीद (शिष्य) के लिए यह कहा गया है कि वह 'इगाम (गुरू) के हाथों में अपने को शव की नाई छोड़ दे।'' मुण्डकोपनिषद् (1-2-12) में कहा गया है

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेद मायान्नास्त्यकृत: कृतेन।
तद्विज्ञानार्थ स गुरूमेवाभिगच्छेत् समित्पाणि: श्रोत्रियं ब्रह्मानिष्टम्।।

अर्थात् ''कर्म से प्राप्त किये जाने वाले लोकों की परीक्षा करके ब्राह्मण वैराग्य को प्राप्त हो जाय। (यह समझ ले कि) किये जाने वाले सकाम कर्मो से स्वत:सिद्ध नित्य परमेश्वर नहीं मिल सकता; वह उस परब्रह्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हाथा मे समिधा लेकर वेद को भलीभाँति जानने वाले और परब्रह्म परमात्मा में स्थित गुरू के पास ही विनयपूर्वक जाय। हम देख चुके है कि सूफीमत में गुरू को कितना बड़ा स्थान दिया जाता है। गुरू को

परमात्मा से भी बड़ा मानने की बात कही गयी है। गुरू में निष्ठा रखने वाले और परमात्मा की तरह गुरू में भी भक्ति करने वाले के हृदय में ही इस साधना के रहस्य का अर्थ प्रकाशित हो सकता है। श्वेताश्रतरोपनिषद् (6,23) सूफीमत का अन्य धर्मो और मतों के साथ तुलनात्मक अध्ययन 384 में कहा गया है।

यस्य देबे परा भक्तिर्यथा देबे तथा गुरौ।

तस्यैते कथिता हाथः प्रकाशन्ते महारमनः।।

अर्थात जिसकी परमदेव परमेश्वर में परम भक्ति है (तथा) जिस प्रकार परमेश्वर में है उसी प्रकार गुरू में भी है उस महात्मा पुरूष के हृदय में ही ये बताये हुए रहस्यमय अर्थ प्रकाशित होते हैं।

मध्ययुगीन भारतवर्ष का सम्पूर्ण वातावरण कुछ ऐसा था कि प्रायः सभी धर्म-साधनाओं ने गुरू को परमात्मा के समकक्ष ला दिया था। और गुरू गोविद की तुलना में गुरू को बड़ा स्थान दिया जाने लगा था क्योंकि गुरू के बिना गोविन्द को जानना सम्भव नहीं माना जाता था। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह[1] (पृ014) में गुरू के महत्व पर प्रकाश डालते हुए बताया गया है कि जिस प्रकार से बहुत भारी पत्थर को उठाने में हजारों आदमियों को कष्ट होता है और जिसे एक बुद्धिमान मनुष्य लकड़ी आदि के सहायता से बिना प्रयास के उठा लेता है उसी प्रकार गुरू कुअी (कुज्जिकया) द्वारा बिना कठिनाइयों के हम लोगों को सिद्धि लाभ करा देते हैं। गुरू की असीम शक्ति पर यह

अखण्ड विश्वास उस युग की एक विशेषता थी। गोरक्ष सिद्धान्त संग्रह में एक जगह कहा गया है 'नमस्ते नाथ भगवान् शिवाय गुरूरूपिणे''। सूफीमत में गुरूवाद का यह प्रवेश बाद की चीज है और इसकी प्रेरणा देने वाला भारतवर्ष ही रहा है।

सुफियों के मतसे 'अहं' की भावना ही सारी बुराइयों की जड़ है। सभी सुख-दुःख सभी पापमयी इच्छाओं के मूल्य में 'अइं' है। इस अज्ञान से छुटकारा पाकर ही मनुष्य परम-सत्य की उपलब्धि कर सकता है। अतएव सूफी साधकों का कहना है कि आत्मा की भावना जो स्वयं एक असत्य वस्तु है उसे असत्य समझने से ही मनुष्य सांसारिक बुराइयों से मुक्ति पा सकता है। नागार्जुनों ने इसी चीज को कहा है[2]-

सूफीमत का अन्य धर्मों और मार्तें के साथ तुलनात्मक अध्ययन

आत्मनि सति परसंज्ञा

स्व पर विभागात्परिग्रहद्वेपौ।

अनयोः सम्प्रति बद्धा

सर्वे दोपाः प्रजायन्ते।।

निर्वाणको प्राप्त हुआ दीपक जैसे न धरती में चला जाता है, न आकाश में ही उड़ जाता है, दिशाओं और विदिशाओं में भी नहीं जाता सिर्फ तेल के न रहने से शान्ति पा जाता है वैसे ही निर्वाण को प्राप्त पुण्यात्मा न धरती में समा जाता है, न आकाश में उड़ जाता है, दिशाओं और विदिशाओं

में भी नहीं जाता, सिर्फ क्लेश न रहने से शान्ति पा जाता है-

दीपो यथा निर्वृतिमम्युपेतो

नैवाननिं गच्छति नान्तरिक्षम्।

दिशं न कांशिद् विदिशं न कांचित्

स्नेहक्षयात्केवलमोति शान्तिम्।।

एवं कृती निर्वृतिमभ्युपेतो

नैयाननिं गच्छति नान्तरिक्षम्।

सूफभ्मत का अन्य धर्मो और मार्तें के साथ तुलनात्मक अध्ययन 391

दिशं न कांचिद् चिदिशं न कांचित्

क्लेशक्षयार केवलमेति शान्तिम्।।

भारतवर्ष में इस्लाम धर्म का प्रवेश सन् 711 ई0 में हो चुका था जब बसरा के गवर्नर हजाज बिन युसूफ के आदेश से अरबी जेनरल इमामुद्दीन मुहम्मद बिन कासिम सिन्ध में अपनी फौजों के साथ आ घुसा और पंजाब में मुलतानत के प्रदेश को जीत लिया। उसके पहले मुहालिब के आक्रमण की भी बात कही जाती है। कहा जाता है कि वह सन् 664 ई0 में मुल्तान तक बढ़ आया था वैसे अल-बालाधुरी का कहना है कि वह लाहौर तथा भारतवर्ष में सूफीमत का प्रवेश तथा भारतीय परिपार्श्व में सूफीमत 405 बन्दूतक पहुँच गया था।[3] सिन्ध और पंजाब का दक्षिणी पश्चिमी हिस्सा सन् 871 तक उमैय्या और अब्बासी खलीफों के हाथ में रहा और उसके बाद सिन्ध स्वतन्त्र

हो गया। अरब इतिहास-लेखक मसूदी सन् 915 ई0 में अमीर इस्माइल का जिक्र करता है। मसूदी ने बतलाया है कि उसका राज्य मुलतान से खुरासान तक फैला हुआ था और वह अरब जाति का था। कहा जाता है कि उसने सन् 900 ई0 में उन प्रान्तों को अपने अधिकार में किया था। मुलतानों में वह एक सूर्य-मन्दिर का जिक्र करता है जिससे अमीर को काफी आय होती थी। हिन्दू तीर्थयात्री बराबर वहाँ आया करते थे। मुलतान के इस सूर्य मन्दिर की चर्चा इन हौकल भी करता है। सन् 976 ई0 तक उस सूर्यमन्दिर का पता चलता है। सन् 185 ई0 में करमतियों ने आकर इस मन्दिर को तोड़फोड़ डाला। वे करमती स्वयं मिस्र और इराक से भगाये गये थे। इन्हें सनातन-पन्थी इस्लाम ने धर्मविरोधी कहकर इन पर अत्याचार करना शुरू किया था।

पंजाब के शम्सी सम्प्रदाय वाले जो झेलम नदी के पश्चिम में ही है, आगा खाँ को ब्रह्म, विष्णु और महेश, इन त्रिदेवों का अवतार मानते हैं।[5] वे भगवद्गीता के प्रति श्रद्धा का भाव रखते हैं। यद्यपि मूर्ति की पूजा नहीं करते।

भारतवर्ष सूफीमत का प्रवेश तथा भारतीय परिमार्श्र में सूफीमत 427 बाहर से देखने में हिन्दू जैसा मालूम होते हैं सम्भवतः इस्माईली सम्प्रदाय क` खोजा से व`सम्बद्ध हैं। कहा जाता है कि मुल्तान के एक सुप्रसिद्ध सन्त पीर शम्सुद्दीन तबरीजी के नाम पर उनके सम्प्रदाय का नामकरण हुआ है। पीर सदर अल दीन ने ब्रह्म को मुहम्मद माना, विष्णु को अली और आदम को

शिव[1]। पीर सदर अल-दीन खोजा सम्प्रदाय का सन् 1430 ई0 के लगभग प्रधान था। सिन्ध में उसके प्रयास से बहुत लोग मुसलमान बने। उसने 'दशावतार' नामक एक पुस्तक लिखी जिसमें अली को विष्णु का दसवाँ अवतार माना। प्रारम्भ से ही खोजा-सम्प्रदाय वाले इसे अपना धर्म-ग्रन्थ मानते ओय हैं। नौ अवतारों तक तो वे ठीक हिन्दुओं की तरह से मानते हैं लेकिन दसवाँ अवतार अली को मानते हैं। इस ग्रन्थ को खोजा-सम्प्रदाय वाले बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते हैं। मरणासन्न व्यक्ति के पास इस ग्रन्थ का खोजा लोग पाठ करते हैं। अन्य धार्मिक कृत्यों के अवसर पर भी इसका पाठ किया जाता है।[2] पीरजाद-सम्प्रदाय वाले भी विष्णु के दसवें अवतार को, जिसे वे निष्कलंक अवतार मानते हैं, भविष्य मे आनेवाला परमदेव मानते हैं। बंगाल के मुसलमान कवियों में करम अली और करीम अल्लाह ने राधा और कृष्ण तथा काली के गान गाये हैं।[3] हिन्दी में रसखान आदि मुसलमान ही थे। पीरजाद सम्प्रदाय का प्रवर्तक मुहम्मद शाहदुल्ला था जो ईसा की सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में था। पंजाब के हुसैनी ब्राह्मण हिन्दू हैं। वे माथे पर तिलक लगाते हैं लेकिन मुसलमानों के यहाँ भीख माँगते हैं। वे हजरत इमाम हुसैन की कहानी कहते हैं इसीलिए उनका नाम हुसैनी ब्राह्मण पड़ा। इस्लाम के बहुत से धार्मिक कृत्यों को वे मानते हैं। वे रोजा रखते हैं और ख्वाजा मुईनिद्दीन चिश्ती के परम भक्त हैं।[4]

आर्नल्ड का कहना है कि पंजाब के मेवात और गुरगाँव जिलों

में बहुत से मुसलमान केवल नाममात्र के लिए मुसलमान हैं। इस्लाम धर्म के बारे में वे कुछ नहीं जानते। उनके यहाँ मस्जिद भी नहीं है।[1] राजपूताना के मेरात पहले शादी-विवाह में हिन्दुओं की तरह विधि-विधान का पालन करते थे और जंगली सूअर का मांस खाते थे लेकिन अब वे कट्टर होते जा रहे हैं।

इसी प्रकार से कानपुर जिले में दीक्षित वंशवालों में जो मुसलमान हो गये हैं वे जन्म, विवाह और मृत्यु के समय इस्लाम धर्म से अनुमोदित कृत्य करते हैं लेकिन नमाज नहीं पढ़ते। वे भी चेचक के भय से चेचक देवी की पूजा करते हैं। इस प्रकार से हिन्दू से मुसलमान बन जाने वाले अपने भारतवर्ष में सूफीमत का प्रवेश तथा भारतीय परिपार्श्व में सूफीमत 429 पुराने धर्म और विश्वासों को सम्पूर्णतया छोड़ नहीं सके और मुस्लिम समाज को प्रभावित करते रहे।[1]

मलंग सम्प्रदाय वाले हिन्दू गोसाई साधुओं की तरह पहाड़ों, जंगलों में घूमते-फिरते रहते हैं। सन्तों की समाधि का दर्शन करते रहते हैं और जहाँ बैठते हैं वहाँ धूनी लगाते हैं और अपने शरीर में भस्म मलते हैं।[4] पंजाब के झंग जिले में सादिक निहंग के स्थान पर मुस्लिम फकीर धूनी लगाते हैं जो रात दिन जलती रहती है।

जिस युग में सूफीमत का आविर्भाव हुआ अथवा जो सूफी काव्य कस स्वर्णयुग था वह युग अब नहीं रहा। सूफी साधना अन्य मध्ययुगीन

साधनाओं की तरह आज के परिवर्तित युग में जैसे अवास्तव और स्वप्नवत् मालूम होती है। यह सही है कि वर्तमान युग में न वैसे साधकों के लिए स्थान रह गया है और न उस युग के विश्वास ही रह गये हैं। अतएव इस देशों में या उस देश में कहीं कोई सूफी साधक हो या उस प्रकार की बातों में आस्था रखने वाले लोग हों लेकिन साधाारणतः यह कहा जा सकता है कि इस युग में उन चीजों का पाना मुश्किल है। इतना होते हुए भी इसके प्रभाव की व्यापकता को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इस विचारधारा ने एक बड़े जनसमुदाय को प्रभावित किया है। अरबी, फारसी और उर्दू साहित्य में तो इस प्रभाव को पद-पद पर देखा जा सकता है। अन्य भाषाओं के साहित्य को भी इसने कम प्रभावित नहीं किया है और विशेष रूप सेउन क्षेत्रों में जहाँ सूफी साधना क्रियाशील रही है। मनुष्य को मनुष्य बनाने वाली अन्यविचारध ााराओं के समान सूफी विचारधारा भी आज अन्तः सलिला होकर ही बह रही है।

महत्वपूर्ण धर्म सम्प्रदाय

भारत में धर्म सम्प्रदायों तथा मत-भेदों को सदा प्रोत्साहन मिला है। इस्लाम जो पहले ही पारम्परिक तिहत्तर सम्प्रदायों में विभाजित हो चुका था, भारत में आने के बाद और भी विखंडित हो गया। सुन्नी निस्संदेह बहुमत में थे किन्तु इस्लाम को अपनाने वाले लोग एकदम बदल नहीं पाए थे। कइयों ने अपनी विधर्मी प्रथाओं को नहीं छोड़ा था और नए धर्म सम्प्रदाय बना लिए थे। भारतीय इस्लाम में पाए जाने वाले कुछ सम्प्रदाय केवल भारत में ही उपलब्ध है और अन्यत्र कहीं नहीं पाए जाते। सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के समय से ही ऐसे धर्म सम्प्रदाय विद्यमान थे जिनकी प्रथाएं अत्यन्त निंद्य थी।[1] सुल्तान फिरोज तुगलक ने इस बुराइयों का उन्मूलन करने का निष्फल प्रयत्न किया।[2] सतरहवीं शताब्दी के मध्य में लिखते हुए दबिस्तान-उल-मजाहिब अथवा "धर्म सम्प्रदायों का मत" के लेखक ने कई सम्प्रदायों, उनके विश्वासों तथा प्रथाओं का उल्लेख किया है जिनमें से कई अत्यन्त घृण्य है। रूढ़िवादी मुसलमान इस अवस्था को नैतिक पतन मानत`थे और यह समझते थे कि हमारे अध्ययन काल के समय इस्लाम धर्म का ह्रास हुआ।

हमारे अध्ययनकाल के दौरान हिन्दुस्तान में ऐसे मुस्लिम सूफी बहुत बड़ी संख्या में थे। मदरिया उनमें से अत्यन्त प्रसिद्ध थे जो प्रथम पंक्ति

में आते थे। सन्यासियों की तरह ही मदरिया लोग भी अपने शरीर पर राख (भस्म) मलते थे, भांग का अत्यधिक प्रयोग करते थे और सदा आग के सामने बैठते थे। वे अपने गले में कड़े पहनते थे, काले झंडे[3] रखते थे और काली पगड़ियाँ बाँधते थे। वे इस्लाम धर्म द्वारा अपेक्षित रोजे नहीं रखते थे और नमाज नहीं पढ़ते थे। उनके मतानुसार जब पैगम्बर ने आकाश (मिराज)[4] को ग्रहण किया तो उसने स्वर्ग का द्वारा सुई के सुराख सेभी तंग पाया तब गेबराइल[5] देवता ने उसे मदार[6] की सहायता लेने और 'दम मदार' कइने का परामर्श दिया। पैगम्बर ने ऐसा ही किया, द्वार चौड़ा हो गया और उसने प्रवेश पा लिया।[7] मदरियों को शेख बदीउद्दीन[8] जो शाह मदार के रूप में अधिक प्रसिद्ध है, का अनुयायी माना जाता है और वे अपने आपको सुन्नी मानते हैं। वर्ष में एक बार देश के सभी भागों से मुस्लिम लोग शाह मदार के मजार, मानकपुर (उत्तर प्रदेश) में एकत्र होते हैं।[9] कहते हैं कि उसने मजार में प्रविष्ट होने वाली महिलाओं को इतनी घोर पीड़ा का अनुभव होता है जैसे कि जीवित ही जल रही हों।[10]

महत्व

यद्यपि किसी शोध-प्रबंध (थीसिज) के साथ ''निष्कर्ष'' जोड़ना एक परंपरा सी बन गई है तथापि न तो यह लेखक के लिए ही उचित है और न ही यह ऐतिहासिक अन्वेषण की भावना के ही अनुकूल है। संभवतया एक ही प्रकार के के तथ्यों से कोई दो विद्वानों एक जैसा निष्कर्ष नहीं निकालते, इसलिए लेखक को न्यायाधीश के ''ज्यूरी के निदेशों'' के साथ अपना निष्कर्ष स्वयं निकालने के लिए ज्यूरी की तरह बिना पूर्वाग्रह के बिल्कुल स्वतंत्र छोड़ देना चाहिये। वैसे तो इसकी भी आवश्यकता नहीं है क्योंकि पोषक भी ऐतिहासिक प्रमाण की विधियों से उतना ही परिचित है जितना कि लेखक। (इसलिए इन पृष्ठों में हम अन्वेषण के परिणामों का सारांश बता सकते हैं) इतिहास की जर्मन प्रणाली के विपरीत हमने किसी सिद्धान्त अथवा मूलकल्पना से आरम्भ नहीं किया जिससे हमें पूर्वकल्पित सिद्धान्त के अनुसार तथ्यों को ढ़ालने की आवश्यकता पड़े: न ही हम मानवशास्त्र के वैज्ञानिक अध्ययन में आधुनिक वादों अथवा राष्ट्रवाद में ही विश्वास रखते हैं-

1. उपर्युक्त अध्ययन-काल के दौरान हमें कोई ऐसे तथ्य प्राप्त नहीं हुए जिने आधार पर इस विचार को उचित माना जा सके कि मुसलमान अपने में भिन्न एवं पृथक राष्ट्र निर्मित करते हैं, यद्यपि विदेशियों ने धर्म, सामाजिक रीतियों, वृत्तियों तथा वस्त्रों आदि की एकसारता से

प्रभावित होकर उन्हें ''मोहेमेतन राष्ट्र'' की संज्ञा दी हैं भारत का मुस्लिम समाज अनिवार्यतः भारतीय लोगों का एक अभिन्न भाग था। जिनकी भारत के अन्य लोगों के साथ भारत के बाहर के लोगों की अपेक्षा कहीं अधिक सांझ थी।

2. यह बात उल्लेखनीय है कि मुसलमानों में अखिल भारतीय सांप्रदायिक देश-भक्ति देश मात्र भी नहीं थी वे भी बंगाली, पंजाबी, पूर्विया तथा दक्कनी गैर मुस्लिम लोगों की तरह अपनी वृतियशें में प्रादेशिक समूहों में विभाजित थे और प्रादेशिक देशभक्ति से प्रेरित थे।

3. मुसलमानों में जातीय भावना तथा उत्कृष्टता के दंभ ने एक ठोस राष्ट्रीय इकाई बनने के मार्ग में बाधा डाली।

4. भारतीय मुसलमान भारत के बाहर के मुसलमानों के साथ पूरी तरह घुलमिल नहीं सकते थे, न हीएक प्रांत के दूसरे प्रांत में विशेषतया बंगाल व दक्कन में सेवा करने के लिए बाध्य किये जास कते थे।

5. यद्यपि मुस्लिम समाज सैद्धांतिक दृष्टि से एक जाति-रहित समाज है तथापि राजनीतिक सामाजिक तथा आर्थिक घटकों ने मुस्लिम समाज की जातियों की संरचना की तरह की कई श्रेणियों में बांट दिया। उदाहरण स्वरूप जैसे उमाय्यदों के आधीन असामियां तथा दास। भारत में इस्लाम जाति प्रथा की छूत से बच न सका जो सैनिक तथा पुरोहित को वरीयता प्रदान करती है। निम्नतर जाति के धर्मातरित मुसलमान उच्चतर

श्रेणी के मुसलमानों के प्रति हीन भावना की समाप्त नकर सके, भले ही आर्थिक और राजनीतिक दृष्टि से उनकी दशा में सुधार हुआ। मुस्लिम समाज के विभिन्न भर्गों में गहरी और चौड़ी खाई थी।

6. उलमा के धर्मशास्त्र संबन्धी ऊँचे-ऊँचे व्याख्यानों के बावजूद भी सम्राट और अभभिजात वर्ग ही समाज के चरित्रिक स्तर को निर्धारित करते थे। वही सभ्यता और संस्कृति के प्रेरणा-स्रोत थे। उनकी कृतियां और मनोरंजन, गुण और दोष जनता में फैल जाते थे, यद्यपि गुण पीछे रह जाते थे।

7. हमारा अध्ययन काल अकबर की सांध्य अवस्था को दर्शाता है जब मुख्यतया शेख अहमद सरहिंदी, जो मुजदिदद अलफ-इ-सानी के नाम से अधिक प्रसिद्ध था, द्वारा चलाया गया प्रतिक्रियावादी आंदोलन प्रार।भ हो गया था। वह मुसलमानों का भला चाहता था और उसने धार्मिक राजनीतिक आंदोलन के माध्यम से मुसलानों के नैतिक तथा धार्मिक पतन को रोकने के लिए धार्मिक तथा राजनीतिक आंदोलन आरम्भ किया। उसे यह भ्रांति थी कि "सम्राट आत्मा है, "और यदि वह (उसकी अवधारणा के अनुसार) सच्चे इस्लाम को अपना ले तो बाकी सब बाते अपने आप ठीक हो जाएंगी। इसबात में कोई संदेह नहीं है कि मुजदिदद नेसम्राट, अमीरों तथा साधारण लोगों कीएक बड़ी संख्या को प्रभावित किया। आलमगीरशाही शासन के पश्चात शासक तथा अभिजात वर्ग

नैतिक दृष्टि से धुर्त बन गए थे और क्षीण हो गए थे,जो अल्लाह की अपेक्षा अशरफी तथा ऐश (सोना और विलास) की अधिक परवाह करते थे। साधारण लोग भी धार्मिक मूर्खो की तरह ही थे जो अपना उत्साह अपने जीवन को शुद्ध बनाने की अपेक्षा धर्म के नाम में दंगे करने और आत्मिक उत्थान की बजाए सांप्रदायिक घृणा को आत्मसात करने में दर्शाते थे। इस्लाम के इस तथाकथित सुधार आंदोलन का भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक भविष्य पर बुरा प्रभाव पड़ा। अकबर के शासनकाल के दौरान समूचे तौर पर मुसलमान अच्छे आदमी थे यद्यपि वे उदासीन थे: जबकि मुजद्‌दिद के विचारों ने उन्हें सच्चा मुसलान बना दिया किन्तु वे कम स्वीकार्य नागरिक बन गए जो अकबर के ''जीओ और जीने दो'' के आदर्श को भूल गए।

8. निजी रूढ़िवादिकता के होते हुए भी शाहजहाँ ने राजनीति में संतुलन बनाए रखा, जो औरंगजेब के शासनकाल में बिगड़ गया और औरंगजेब के उत्तराधिकारियों के क्षीण हाथों में बिल्कुल नष्ट हो गया।,

9. हमारे अध्ययन के दौरान हिन्दुस्तान के मुस्लिम समाज के जीवन की एक अच्छी बात यह थी कि बाद के समय की तुलना में दूसरे सम्प्रदायों के साथ उनके बहुत कम झगड़े थे। राजनीतिक खलबली के आधीन मुस्लिम समाज का भारतीयकरण का प्रवाह निरंतर रूप से अवाध चल रहा था। मुगल दरबार में प्राचीन भारतीय विद्या को संरक्षण प्रदान

किया जाता था। मुगल दरबार में प्राचीन भारतीय विद्या को संरक्षण प्रदान कियाजाता था और मुस्लिम शासकों में हिन्दी साहित्य को भी प्रोत्साहन एवं संरक्षण दिया और इसे समृद्ध बनाने में योगदान भी दिया। यह बात भी रू.किर है कि जहां पर हिन्दुओं ने फारसी को अधिक पढ़ा वहां मुसलमानों ने हिन्दी कविता को अधिक संस्कृतमय बना दिया। खानपान अब्दुर रहीम की हिन्दी शैली की सम्राट मुहम्मद शाह के समय नूर मुहम्मद द्वारा लिखित इन्द्रावति से तुलना करने पर यह बात सिद्ध हो जाती है।

समचे तौर पर भारत के सांस्कृतिक जीवन में 'दो और लो' का बुद्धिमता पूर्ण सिद्धान्त प्रचलित था और मुसलमान अपने जन्म और विवाह के उत्सवों में हिन्दुओं की सजीव रीतियों को चुपचाप अपनाने में और होली तथा हिंडोला (वर्षा ऋतु में झूला झूलना) जैसे हिन्दू हर्षोत्सवों के मनोरंजन और प्रसन्नता में पूर्वाग्रह नहीं रखते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. अमीर खुसरो आलाद्दीन के समय के अशोब-इ-इबाहत के सम्बन्ध में लिखते हुए कहता है, ''यह देखा गया कि इन निर्लज्ज दुष्टों में माताएं अपने पुत्रों से और मौसियां अपने भांजों से व्यभिचार कर लेती थी और पिता अपनी पुत्री को अपनी स्त्री समझ लेता था और बहन भाइयों में भी अपवित्र सम्बन्ध में।'' खजेन-उल-फुतूह मूल पुस्तक, पृष्ठ 21, अनुवाद पृष्ठ 121 रिचर्डसन के मतानुसार इबाहत का अर्थ है ''अनियंत्रित स्वतन्त्रता, कामूक व्यक्ति।'' हगेज इबाहीयाह की परिभाषा करते हुए कहता है कि ''कामुक व्यक्तियों का एक ऐसा सम्प्रदाय है जो सभी बातों को वैद्य समझता है।'' डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ0 188
2. देखिए फतहात-इ-फिरोजशाही, ई0डी0, 111, 378-380
3. काला रंग सुन्नियों का है। इससे प्रो0 विलसन, जो दबिस्तान से सहमत है, के इस विचार को समर्थन प्राप्त होता है कि मादारिया लोग सुन्नी थे। देखिए दबिस्तान, शी तथा ट्राइअर, 11,223 टिप्पणी, मूल पुस्तक, पृ0 215
4. शाब्दिक अर्थ, ''एक चढ़ाई'', मुहम्मद की कल्पित स्वर्ग यात्रा, जिसे इस्रा ''रात्रि यात्रा' भी कहते हैं। इस घटना को मोहम्मद के धर्म-प्रचार के बारहवें वर्ष, रबी-उल-अव्वल के मास में घटा बताते हैं। अब्दुल हक के मतानुसार कुछ दिव्य पुरूष इस अद्भूत घटना को कल्पना मात्र बताते हैं, किन्तु बहुमत इसे शारीरिक यात्रा मानता है। अधिक विवरण

के लिए देखिए हगेज, डिक्शनरी आफ इस्लाम, पृ0 351, 352

5. यह देवता जो मुहम्मद को कुरान के रहस्योद्घाटन का माध्यम समझा जाता है, कुरान में उसके नाम का केवल दो बार उल्लेख है। वही एस0 वी0।

6. ''मदर का श्वास'', इस सम्प्रदाय का एक विशेष उच्चारण, देखीए नीचे।

7. दबिस्तान, मूल पुस्तक पृ0 214

8. पूर्वी विद्वानों की कृतियों में शाह मदर का विरोधी विवरण दिया गया है। कहते हैं कि वह 383 वर्ष बल्कि इससे भी लम्बे समय तक जीवित रहा। उसकी दीर्घायु का कारण उसकी श्वास रोकने की शक्ति बताया जाता है। कई तो यह मानते हैं कि वह अब तक भी जीवित है। (जिससे उसका नाम है जिन्दा शाह मदर) । किन्तु अबदुर रहमान चिश्ती, जिसने मिरात-उल-असरार तथा और-इ-मादरी (शाह मदर का जीवन) में बड़ा संयत विवरण दिया है। उसके मतानुसार शाह मदर एक यहूदी परिवार से सम्बन्धित था जो हालाब (ऐलेपी) का था जाहं ए0 एच0 715 (1315 ई0) मं उसका जन्म हुआ था। उसकी मृत्यु मंगलवार, 18 जमादी-उल-अव्वल (जिसे अब मादार का महीना कहते हैं) को ए0एच0 840 (1436ई0) में 125 वर्षो की आयु में हुई। अधिक विवरण के लिए देखिए अखबार-उल-अखियार, पृ0 189, जाफर शरीफ, कानून-इ-इस्लाम, पृ0 195, 196, 289, 290 रोज की शब्दावली, 111, 160

9. खुलासत-उत-तवारीख, मूल पुस्तक, पृ0 40, 41 दबिस्तान शी तथा ट्राइअर, 11, 225, 226, आईन-इ-अकबरी, जेरेट, 111, 370

10. तुलना कीजिए रोज की शब्दावली, 111, 44

पंचम अध्याय

जायसी साहित्य पर आधारित सामाजिक व्यवस्था

अध्याय-5

जायसी साहित्य पर आधारित सामाजिक व्यवस्था

भारतीय संस्कृति के अनुसार हिन्दू धर्म में वर्णव्यवस्था का विशेष महत्व है। भारत के सामाजिक जीवन की आधारशिला के रूप में दीर्घकाल से प्रतिष्ठित प्राचीन भारतीय समाज में चार वर्ण ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र विद्यमान थे। यह व्यवस्था कर्ममूलक थी। इनकी उत्पत्ति के संबंध में ऋग्वेद के पुरूष सुक्त में कहा गया है कि 'समाज रूपी पुरूष का मुख ब्राहमण था, उनकी भुजाओं से बनाये गये। उसकी जंघाओं से वैश्य तथा पैरों से शूद्र उत्पन्न हुए-

ब्राहमणों स्य मुखमासीत, बाहू राजन्यः कृतः

उरू तदस्य यदैश्यः, पद्भ्यां शूद्रो जायत।

कहने का अभिप्राय यह है कि ये चार वर्ण क्रमशः शिक्षा, शौर्य, वित्तीय सामर्थ्य तथा सेवा कार्य के प्रतीक थे। मनु जैसे स्मृतिकार ने भी उन चार वर्णो के कर्तव्य, अधिकार और स्वभाव आदि के विषय में बड़ा ही विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया है। भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देते हुए गीता में कहा है कि हे अर्जुन मैंने चारों वर्णो का निर्माण उनके गुण, कर्म और स्वभाव के अनुसार किया है-

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः

- गीता, अध्याय-4, श्लोक 13

इससे स्पष्ट होता है कि इन विभिन्न वर्णों की उत्पत्ति उनके स्वभाव, योग्यता और कर्म के अनुसार मानी गयी थी। परन्तु कालान्तर में ये विभिन्न वर्णन जन्म के अनुसार निर्धारित होने लगे। परिणामस्वरूप वर्ण और जाति में अन्तर का लोप हो गया और नाना प्रकार की जातियां पैदा हो गयीं। इन जातियों का नामकरण प्रायः उनके पेशे को दृष्टिगत रखते हुए हुआ है।

सूफी प्रेमाख्यानों में वर्ण व्यवस्था के आधार पर निर्मित चारों सामाजिक वर्णों का उल्लेख यत्र-तत्र आया है। परन्तु जातियों प्रजातियों का तो पर्याप्त उल्लेख हुआ है। जिसका संक्षिप्त वर्णन यहां प्रस्तुत किया जाता है।

वर्ण व्यवस्था

वर्ण व्यवस्था भारतीय संस्कृति की अनुपम सामाजिक विशेषता है। इस देश के विचारकों ने मनुष्य के सामाजिक जीवन को नियमबद्ध ढंग से कार्य करने के लिए मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सिद्धान्तों पर आधारित जीवनपद्धति का विधान किया है। इसे भारतीय संस्कृति वर्णव्यवस्था की संज्ञा दी गई है। इसके अनुसार मानव समाज को चार वर्गों में विभाजित किया गया है। तथा प्रत्येक के कार्यों का अलग-अलग उल्लेख किया गया है। डा० मदन गोपाल के अनुसार, मानव प्रवृत्ति के विचारों से वे सभी वर्ग चार प्रकार के हैं बुद्धिजीवी, देश या समाज का शासन तथा रक्षण करने वाले, औद्योगिक या व्यापारिक कार्य करने वाले तथा शारीरिक श्रम करने वाले मजदूर। इन चार व्यावसायिक समूहों से परे कोई वर्ग नहीं है, सभी इन्हीं के अंतर्गत आ जाते हैं।

वर्णव्यवस्था का जो स्वरूप भारतवर्ष में देखने को मिलता है,

वह संसार के किसी देश में नहीं मिलता। यहां चार वर्ण माने गये हैं, ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्ण को मनुष्य के कर्म पर आधारित माना गया है। जन्म पर नहीं। जाति-व्यवस्था जन्म पर आधारित मानी गई है। भारतीय संस्कृति के अनुसार प्राचीन काल से ही ब्राहमणों का कार्य शिक्षा देना तथा धार्मिक क्रियाओं का सम्पादन करना था। शक्ति तथा सत्ता में अभिरूचि रखने वाले, राजप्रबन्ध एवं राष्ट्र तथा समाज का रक्षण करने वाले क्षत्रिय थे। देश की कृषि व्यवस्था, वाणिज्य और व्यापार एवं आर्थिक व्यवस्था का उत्तरदायित्व वैश्व का था तथा शूद्रों का काम अपने से उच्च ब्राहमण, क्षत्रिय और वैश्य की सेवा करना था। इस प्रकार यह भारतीय वर्णव्यवस्था अत्यन्त वैज्ञानिक जान पड़ती है। यहां गुण और कर्म के अनुसार ही वर्णो का विभाजन किया गया है। इन चार वर्णो में अनेक जातियां हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति अपनी इन विशिष्ट गुणों के कारण ही विश्व में अद्वितीय स्थान को प्राप्त है। अपने इन्हीं मूलभूत तत्वों के कारण ही भारतीय संस्कृति मानव की विचारशक्ति और चेतना को विकसित कर सकी है। आज विश्व की अनेक संस्कृतियां प्राय: समाप्त हो गयी हैं। किन्तु भारतीय संस्कृति अपने इन विशिष्ट गुणों के कारण विश्व में आज भी विद्यमान है। भारतीय संस्कृति उस समुद्र के समान है जो विभिन्न नदियों के जल को अपने में समाहित कर लेता है। युगों से इसकी यही विशेषता रही है। अनेक तूफानों और परेशानियों से टकराती हुई भारतीय संस्कृति आज भी अपनी मौलिकता को बनाये हुए है। इसके अंतर्गत मानवता और वसुधैव कुटुम्बकम जैसी प्रबल भावना सदैव रही है। आज जबकि संसार

के विभिन्न देशों में परस्पर अविश्वास, अशान्ति, घृणा, द्वेष, ईर्ष्या का वातावरण बना हुआ है। पूरा विश्व सर्वनाश के कगार पर खड़ा हुआ है ऐसे में भारतीय संस्कृति विश्व-बन्धुत्व, प्रेम, शान्ति और अहिंसा का पाठ पढ़ाने में न केवल भारतीयों को अपितु पूरे विश्व को एक सही दिशा प्रदान करने में निरन्तर प्रयत्नशील है।

सूफी रचनाओं में भारतीय संस्कृति के तत्व

प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में विशेष रूप से मध्यकालीन हिन्दी सूफी कवियों की रचनाओं में भारतीय संस्कृति के तत्व का विवेचन करना है। अब प्रश्न यह उठता है कि मध्यकाल की सीमा कहां से कहां तक मानी जाय। हिन्दी साहित्यकारों ने मध्यकाल की सीमा का निर्धारण अपने-अपने विचारों से भिन्न-भिन्न किये हैं। हिन्दी साहित्य के मूर्धन्य साहित्यकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐतिहासिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक तथा धार्मिक परिस्थितियों के अनुशासन के रूप में संचारित व्यवस्था के अनुसार हिन्दी साहित्य को चार कालों में विभक्त किया है-

1. आदिकाल (वीरगाथा काल) सं. 1050-1375 वि.
2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल) सं. 1375-1700 वि.
3. उत्तर मध्यकाल (रीतिकाल) सं. 1700-1900 वि.
4. आधुनिक काल (गद्यकाल) सं. 1900-1984 वि.

डा0 श्यामसुन्दर दास ने शुक्ल जी के काल-विभाजन में थोड़ा परिवर्तन करके मध्य काल की सीमा को सं. 1400 वि. से 1900 वि. तक माना है। जहां तक मध्यकाल का संबंध है, डा0 रामकुमार वर्मा शुक्ल जी

की ही राय को मानते हैं। इस तरह हिन्दी साहित्य का मध्यकाल सं. 1375-1900 वि. तक माना जाना चाहिए।

डा0 माताप्रसाद गुप्त ने हिन्दी सूफी साहित्य की परम्परा का प्रारंभ मुल्ला दाउद की रचना चंदायन, से प्रारम्भ कर कवि नसीर के प्रेमदर्पण तक माना है। इस परम्परा में दाउद के अतिरिक्त कुतुबन, जायसी, मंझन, उसमान, कासिमशाह, नूरमुहम्मद, शेख नबी, जान कवि (न्यामत खां) आदि प्रमुख सूफी कवि आते हैं।

हमने मध्यकाल की जो सीमा निर्धारित की है उसके पूर्व भारत में सूफी सन्तों का आगमन प्रारम्भ हो चुका था और हिन्दी रचनाएं भी जनसाध ारण के बीच आ चुकी थीं। अतः सब तरह से विचार करने के पश्चात् हम भी आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के पूर्व मध्यकाल से लेकर उत्तर मध्यकाल तक को ही मध्यकाल की सीमा मानकर विचार करेगें।

कर्म और पुनर्जन्म

भारतीय संस्कृति की मूलभूत मान्यताओं में कर्मफल और पुनर्जन्म (जन्मान्तर वाद) के सिद्धान्त माने गये हैं। हिन्दू धर्म के अनुसार भारतीय संस्कृति वर्तमान जीवन को पूर्वकृत कर्मो का परिणाम मानती है तथा साथ ही वह कर्मफल की अवश्यम्भाविता को स्वीकार करती है। पंडित बलदेव उपाध्याय के अनुसार हिन्दू शास्त्रों का यह दृढ़ विश्वास है कि वर्तमान जीवन ही हमारा प्रथम और अंतिम जीवन नहीं है। जीवन-मरण की अनादि और अनंत श्रृंखला में वर्तमान जीवन एक साधारण कड़ी है।[1] गीता के अनुसार, आत्मा अजर और अमर है। जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्यागकर नया वस्त्र

धारण करता है, उसी प्रकार आत्मा पुराने शरीर को छोड़कर नया शरीर ध ाारण करती है-

वासांसि जीर्णानी यथा विहाय, नवानि गृहणाति नरोपराणि।

तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यिन्यानि संजाति नवानि देही।।[2]

पुनः गीता में आगे कहा गया है कि मनुष्य पैदा हुआ है उसकी मृत्यु निश्चित है और जो मर चुका है उसका जन्म लेना भी ध्रुव सत्य है-

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युः ध्रुव जन्म मृतस्य च।[3]

पुनर्जन्म के विचार के साथ ही साथ कर्मफल का सिद्धान्त भी जुड़ा हुआ है। भारतीय संस्कृति के अनुसार हिन्दू धर्म की ऐसी मान्यता है कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार विभिन्न योनियों में जन्म लेता है तथा अपने कर्मफल के अनुसार ही वह विभिन्न शरीर धारण करता है।[4] मनुष्य अपने किये गये पाप और पुण्य दोनों प्रकार के कर्मो का फल भोगता है।

सूफी प्रेमाख्यानों में इस तथ्य की अभिव्यक्ति यथा स्थान अनेक प्रसंगों पर हुई है। सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के अमर कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी श्रेष्ठ कृति पदमावत में पुण्य कर्मो के परिणामस्वरूप सुखद सुफल की ही भांति अशुभ कर्मो के दुष्परिणामों की अभिव्यक्ति ब्राहमण द्वारा करायी है जिसमें वह अपनी धनहानि का कारण पूर्वकृत कर्म को ही मानता है-

उरे ठाढ हों काहे क आवा? अनिज न मिला, रहा पछितावा।

लाभ हानि आये एहि छाटा। मूर गंवाइ चलेउ तेहि बाटा।

अपने चलत सौ कीन्ह कुबानी। लाभ न देख मूर में हानी।

का मैं बोआ जनम ओहि भूंजी खोइ चलेउ धरहू के पूंजी।[5]

सूफी कवियों ने पूर्वजन्म के सिद्धान्त का उल्लेख भी कहीं-कहीं किया है। सूफी कवि मंझन ने पूनर्जन्म का उद्घाटन अपनी प्रेमकथा मधुमालती के अन्तर्गत नायक मनोहर द्वारा करवाया है जो कि अपने प्रेम का परिचय देते हुए उसकी अवस्थिति जन्म-जन्मान्तर तक मानता है-

प्रीति सपत दिढ बाचा, मोहि देहु तुह लेहु।

जन्म-जन्म निरबाहों, तो यह जन्म सनेहु।।[6]

कवि ने मुधमालती में ही एक अन्य स्थल पर पूर्व जन्म की बात खुलकर कही है। नायक मनोहर मधुमालती से कहता है कि मेरा और तुम्हारा प्रेम पूर्व जन्म से ही विधाता ने निश्चित किया है। तुम्हारे विरह में मैं आज ही दुखी नहीं हूं बल्कि तुम्हारे दुख का मुझे शुरू से ही परिचय है। पूर्व जन्म से ही तुम्हारे प्यार के जल को मैं जानता हूं जिसमें मेरी मिट्टी को सानकर ब्रहमा ने मेरे शरीर का निर्माण किया-

कहे कुंवर सुन पेम पिआरी। मोहिं तोहि पूर्व प्रीति बिधि सारी।

मैं तोहि आजु न तोहि दुखारी। तोहरे दुख मोहिंआदि चिन्हारी।

पूर्व दिनन्हि सौ जानों, तोहरी प्रीति क नीरू।

मोहि माटी बिधि सानि के तो एह सरा सरीरू।।[7]

जायसी ने पुनर्जन्म से मुक्ति पाने हेतु प्रेम पंथ के अनुगमन को आवश्यक बताया है। उनके अनुसार प्रेम पंथ पर जो पार उतर जाता है वह पुनः इस मिट्टी में आकर नहीं मिलता अर्थात् वह जन्म-मरण के बन्धन से मुक्त इस संसार में वापस नहीं आता-

प्रेम पंथ जो पहुंचे पारा। बहुरि न मिले आइ एहि छारा।।[8]

पुनः जायसी कहते हैं कि शरीर आखिर है तो मिट्टी ही। इसलिए मिट्टी का यह शरीर अंत में मिट्टी में ही मिल जाता है-

पिंड चढाइ छार जेति आंटी। माटी भएउ अंत जो माटी।।[9]

पूर्व अर्जित कर्मों के कारण ही मनुष्य को जीवन में पुण्य प्राप्त होता है। मंझन ने पूर्व जन्म के सिद्धान्त के साथ ही पूर्व अर्जित कर्म एवं पुण्य का भी विशेष वर्णन किया है। पूर्व अर्जित कर्म का उल्लेख करते हुए मंझन कहते हैं कि शेख मुहम्मद गौस जैसे सिद्ध पुरूष का दर्शन सबके लिए सहज नहीं है, जिसके सिर में पूर्वार्जित सुन्दर कर्मों की रेखा मौजूद रहती है, वही उनका साक्षात्कार कर सकता है। कर्म की बात को कोई नहीं जानता है जिसका जैसा कर्म होता है उसी के अनुरूप वह फल प्राप्त करता है। विधाता ने ही दृष्टिवाला और गादूर (चमगादड़) पक्षी जैसे दृष्टिविहीनों का निर्माण करके भेजा है जो अपने स्वभाव के मुताबिक प्रकाश और अंधकार के अधिकारी होते हैं।

जेहि सिर पूर्व करम के रेखा, ते जग सेए महमद देखा।

जो रे ठीठा विधि सिरा, तेहि घर बाजा तूर।

जो गादूर के सिरा, तिन्ह अंध्यारे सूर।।

मंझन के अनुसार इस सृष्टि के मूल में ही बिरह है अर्थात् जीव (साधक) विधाता से परे होते ही बिरहजन्य हो जाता हे। लेकिन इस बिरह तत्व को वही जान पाता है जो पुण्य पूर्वार्जित किया हो, अन्य लोग इसे समझ नहीं पाते-

सिस्ट मूल बिरहा जग आवा। पे बिना पूर्व पुन्ध के पावा।

मधुमालती का नायक मनोहर और मधुमालती का प्रेम उनके अपने पूर्व जन्म के कर्मों का ही परिणाम है। अतः प्रथम दर्शन मात्र में ही मनोहर के हृदय में पूर्व प्रेम के अंकुर प्रस्फुटित होने लगते हैं-

कोंल भाति दिन बिगसत, निरसि निरसि मुख सूर।

देखत प्रेम प्रीति पूरब के, हीवर लीन्ह अंकूर।।

भाग्यवाद पर विश्वास

भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत भाग्यवाद का बड़ा महत्व है। साथ ही वह संस्कृति का मूल तत्व भी है। भाग्यवाद भारतीय जनमानस के मध्य इतना व्याप्त है कि प्रायः व्यक्ति सुख की परिस्थिति में सद्भाग्य की सराहना तथा दुख की स्थिति में दुर्भाग्य को कोसता हुआ पाया जाता है। प्रत्येक भारतीय प्रारब्ध, भाग्य एवं कर्मरेखा पर विश्वास करता है। संसार की प्रत्येक घटना को वह या तो भगवान से नियंत्रित समझता है या भाग्य से। उसे अपने व्यक्तितत्व एवं कृतित्व पर भरोसा तो होता ही है, किन्तु वह विध ााता के नियंत्रण पर सर्वाधिक विश्वास करता है। उसके सामने उसकी आत्मनिर्भरता कुछ नहीं।

सूफी काव्यों में भाग्यवाद से प्रेरित लोकविश्वास की चर्चा सर्वत्र उपलब्ध है। अनागत को भी प्रायः कर्मरेखा अथवा विधाता के लेख के रूप में समझा जाता है। मंथन की मधुमालती में नायक मनोहर शुभ स्थिति की कल्पना ललाट में अंकित कर्मरेखा के आधार पर करता है-

कर्म भाग तेहि होइ लिलारा। तुअ दरसन पाये सौ पारा।[10]

कवि नूर मुहम्मद ने भाग्यवाद की चर्चा करते हुए कहा है कि मनुष्य के भाग्य में जो कुछ विधाता लिख देता है, वही होता है, जन्मपत्र का लिखा हुआ असत्य नहीं हो सकता, भाग्य वही है-

लिखा जो है करता को, सोई होय।
जनम पत्र को आछर, जात न धोय।।[11]

इसी प्रकार जायसी ने अपनी कृति चित्ररेखा में यह लोकविश्वास अनेक प्रसंगों पर प्रकट किया है। उनके अनुसार ईश्वर द्वारा अंकित इस भाग्य रेखा को कोई मिटा नहीं सकता-

आपसी बैरकी भावना को भरसक दूर करने का प्रयास किया। कवि ने दोनों जातियों की संस्कृति का चित्र अपनी रचनाओं में उरेहा है जो कि एकीकरण एवं समन्वय की भावना का प्रतीक है। डा0 रामकुमार वर्मा का मानना है कि जायसी ने अपनी समदृष्टि से दोनों धर्मो को अपने प्रेम के सूत्र से एक कर दिया है।[12]

सूफी कवि हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। उनकी सहृदयत, तीक्ष्ण दृष्टि तथा दूरदर्शिता का यह एक जीता जागता प्रमाण है कि उन्होंने दो संस्कृतियों को समझा और उन्हें एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न किया। दोनों सम्प्रदायों के टूटे-उजड़े-बिखरे जीर्ण संबंध सूत्रों को एकत्र कर उन्हें एकता के सूत्र में बांधने का चमत्कारिक प्रयास किया। उनकी रचनाएं दोनों वर्गो की सभ्यता के संगम की अनुभूतिमयी अभिव्यक्ति का दृष्टान्त है। इन

कवियों ने समाज में व्याप्त विद्वेष की भावना को समाप्त करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा दोनों सम्प्रदाय के सदस्यों में प्रेम का बीज बोने का उचित प्रयत्न किया।

धार्मिकता तथा आध्यात्मिकता

सूफी कवियों द्वारा अपने काव्यों में हिन्दू घरों की प्रेमकथाएं रखने तथा भारतीय साधना के प्रति उदार दृष्टिकोण अपनाने के कारण उनकी रचनाओं में भारतीय आध्यात्मिक जीवन की अभिव्यक्ति विशद रूप से हुई है। आध्यात्मिक जीवन से प्राप्त होने वाले भारतीय संस्कृति के तत्वों समकालीन हिन्दू जीवन में व्याप्त तथ्यों के माध्यम द्वारा भली भांति हृदयगम किया जा सकता है। उदाहरण के लिए पद्मावतकार जायसी ने चार यार, को चारमीत, उलमान को पंडित, कुरान को पुराण, कलमे को वचन, अल्लाह को विधि, किताब को ग्रंथ और दीन-इस्लाम को पंथ कहकर हिन्दू धर्म के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है।[13] कहना न होगा कि इस प्रकार का प्रयोग उनकी समन्वयमुखी सहिष्णुता एवं उदारता की भावना का परिचायक है।

भारतीय युग द्रष्टाओं द्वारा समय-समय पर प्रस्तुत की गई समाज जीवन तथा धर्म साधना से संबंधित व्यवस्थाएं धर्मग्रन्थों तथा शास्त्रों में अंकित होने के कारण हिन्दू जनता की उन पर सुदृढ़ आस्था सदा से रही है। सदा से विकासशील धर्मसाधना के कारण परंपरागत धर्मग्रन्थों का अनुशीलन तथा युग के अनुकूल नवीन व्यवस्थाओं का सृजन यहां सदैव होता आया है और युग विशेष की धार्मिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के बीच विशेष प्रकार के युगानुरूप ग्रन्थ भी सम्मानित होते रहे हैं। इन तथ्यों को हृदयगम करते हुए

जब हम पन्द्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी के प्रेमाख्यानों पर विचार करते हैं तो ज्ञात होता है कि उस युग में पौराणिक ग्रन्थों के प्रति जनता की सर्वाधिक आस्था थी। संभवतः इस कारण सूफी कवियों ने जहां उनके प्रचार का मानो लाभ सा उठाकर कुरान के अर्थ में पुराण शब्द का प्रयोग किया है, वहां ज्योतिष विचार ग्रन्थों के लिए भी उसी शब्द का प्रयोग किया है-

लिखि पुरान विधि पठवा सांचा। भा परवान दुवो जग बांचा।

- जायसी, अखरावट, दोहा 25

भा बिहान पंडित सब आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए।

- पद्मावत, जन्म खण्ड, दोहा 13/2[14]

धार्मिक जीवन के बीच हिन्दू धर्म में धर्म की इतनी अधिक मान्यता थी कि उनके द्वारा प्रतिपादित धर्म के अनुसार न चलने वाले व्यक्ति को संभ्रमित माना जाता था। जायसी के अनुसार उस युग में ब्राहमण की सार्थकता वेदाध्ययन, उनके रहस्य का ज्ञान तथा उनके अनुसार जीवन के निर्माण में मानी जाती थी। यद्यपि उनकी रचनाओं में इस तथ्य का भी अभाव नहीं है कि वेदशास्त्रों का अध्ययन तो किया जाता है किन्तु उनके रहस्य को बहुधा लोग नहीं समझते-

पढ़ि गुनि पंडित को न भुलाना। पढ़ा वेद सह भेद न जाना।

पढ़ि गुनि पंडित भूलें, गुपुत न जानहिं भेद।

परगट होय न बाचें, जइस सास्तर वेद।।

इससे प्रकट होता है कि उस युग के आध्यात्मिक जीवन के बीच उनका अध्ययन रूढ़िग्रस्त सा हो चुका था जिसमें सार्थकता एवं व्यावहारिकता

राजा और रानी से दान मांगने का उल्लेख प्राप्त होता है-

बोहित भरे चला ले रानी, दान भांगि सत देखे दानी।

- पद्मावत, 387/1[18]

राघव चेतन देशनिकाला खण्ड में पद्मावती ने राघव चेतन ब्राहमण को अपने पास सूर्यग्रहण के अवसर पर दान देने के लिए बुलवाया। ब्राहमण को चाहिए ही क्या? वह तो स्वर्ग में भी दान लेने के लिए जा सकता है-

राघो चेतनि बेगि हंकारा। सुरूज गरह भा सेहु उसारा।

वभिन जहां दक्खिना पावा। सरग जाइ जौं होइ बोलावा।।

- पद्मावत, 450/6-7

राघव चेतन ब्राहमण था, जब उसे देशनिकाला दे दिया गया तब पद्मावती उसे सोने का कंगन दान रूप में अर्पित करती है-

कंगन काढ़ि सो एक अडारा। काढल हार टूटि गौ गारा।।

- पद्मावत, 451/5

फलस्वरूप राघव चेतन उसको आर्शीवाद देता है-

ततखन राघौ दीन्ह असीसा। जनहुं चकोर चंद मुख दीसा।

- पद्मावत, 451/2

यद्यपि ब्राहमण का कर्तव्य व्यापार करना नही है परन्तु जायसी ने एक ब्राहमण के द्वारा बनिजारा खण्ड में व्यापार करने का उल्लेख किया है-

बाभन एक हुत नष्ट भिखारी। सौ पुनि चला चलत बैपारी।

रिनि काहू कर लीन्हेसि काढी। मकु तहं गए होइ किछु बाढी।।

– पद्मावत, 74/2-3

इसके अतिरिक्त उनके अन्य कर्मों में राजा के यहां देवपूजन करना था। कन्या के लिए वर की खोज एवं उसका निश्चय करके बरिच्छा तथा लग्न निश्चित करना उस युग के ब्राहमणों का सामाजिक उत्तरदायित्व सा था। किन्तु कभी-कभी उनके द्वारा अपने इस दायित्व को निभाने के अच्छ और बुरे दोनों उदाहरण इन प्रेमाख्यानों में देखने को मिलते हैं। जायसी कृत चित्ररेखा में एक स्थल पर ब्राहमण द्वारा योग्य वर खोजने में सतर्कता का अभाव अथवा उनके अपने जिम्मेदारियों के प्रति उपेक्षा का परिचय मिलता है। जिसके परिणामस्वरूप नायिका चित्ररेखा का विवाह राजा सिंहदेव के कुबड़े बेटे के साथ तय किया जाता है।[19] ब्राहमणों के अन्य मुख्य कर्मो में पुराणादि धार्मिक ग्रन्थों का पाठ तथा जनता के बीच धर्म मार्ग का विवेचन करना था-

कतहूं पंडित पढ़हिं पुरानू। धरम पंथ कर करहिं बखानू।।

ब्राहमणों का स्वभाव

ब्राहमणों को वेद का ज्ञाता और विद्वान बतलाया गया है। इस संबंध में जायसी ने लिखा है कि ब्राहमण ने वेद आदि ग्रन्थों के अध्ययन से हीरामन तोते की बुद्धि की तीक्ष्णता का अनुभव कर उसे खरीद लिया। इस प्रकार ब्राहमण के वे देश होने का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है।

बाभन सुआ बेसाहा सुनि मति वेद गरंथ।

इसी प्रकार उसमान कवि ने भी अपनी कृति चित्रावली में ब्राहमणों के संबंध में बतलाया है कि ब्राहमण विद्वान और ज्ञानी होने के साथ ही साथ चारों वेद की जानकारी रखते थे-

ब्राहमन सब पंडित और ज्ञानी, चारों वेद बात जिन्ह जानी।

विद्वता आदि गुणों के बावजूद भी कभी-कभी सोभवृत्ति के कारण नैतिकता के ह्रास के लक्षण भी ब्राहमण वर्ग में दिखाई पड़ते थे। पद्मावत में राघव चेतन का दिल्ली जाकर अलाउद्दीन के सामने चित्तौड़ का रहस्योद्घाटन भी इसी वृत्ति का द्योतक है। एक अन्य स्थल पर जायसी ने ब्राहमण जाति पर व्यंग्य करते हुए लिखा है कि ब्राहमण को दक्षिणा देने के लिए स्वर्ग तक जाने का निमंत्रण मिले तो वह वहां तक जाने में रंचमात्र भी संकोच नहीं कर सकता। वेदश ब्राहमण के लिए कुमार्ग में चलना उस युग के लिए एक प्रका से आश्चर्य ही समझा जाता था। इस वर्ग में वेद, पुराण, न्याय, ज्योतिष आदि से युक्त चौदह विद्याओं का अभ्यास न्यूनाधिक रूप में प्रचलित था।[20] जायसी ने पद्मावत के अन्तर्गत राघव चेतन देशनिकाला खण्ड में इसकी ओर संकेत किया है।

वेद भेद जस बररूचि चित चिंता तस चेत।

राजा भोज चतुर्दस विद्या भा चेतन सौं हेत।।

ब्राहमणों की वेशभूषा

जायसी ने ब्राहमणों की वेशभूषा का बड़ा ही सुन्दर वर्णन किया है। लक्ष्मी समुद्र खण्ड में जब राजा रत्नसेन समुद्र के पास जाता है और

अपनी तलवार निकालकर अपने गले के पास ले जाता है तब समुद्र ब्राहमण का रूप धारण करके वहां प्रकट हो गया। वह अपने मस्तक पर ढ़ाढस तिलक दिये हुए था और हाथ में सोने की छड़ी थी। कान में मुद्रा और कंधे पर जनेऊ था, नीचे सोने के पत्र की धोती बांध रखी थी। पैरों में सोने की जड़ाऊं धारण किये था-

कहि के उठा समुद्र मह आवा। काढ़ि कटार गरे ले आवा।
कहा समुद्र पाप अब घटा। बभिन रूप आह परगटा।
तिलक दुवादस मस्तक दीन्हें हाथ कनक बैसाखी सीन्हे।
मुद्रा कान जनेऊ कांधे। कनक पत्र धोती तर बांधे।
पायन्ह कनक जराऊ पाऊ। दीन्ह असीस आह तेहि ठाऊं।[21]

क्षत्रिय

भारतीय धर्मशास्त्रकारों के द्वारा विभिन्न वर्णव्यवस्था का जो प्रतिपादन किया गया है, उसमें क्षत्रियों का द्वितीय स्थान है। सूफी प्रेमाख्यानों में क्षत्रियों के संबंध में अपेक्षाकृत कम ही उल्लेख आये हैं। इस वर्ग का प्रधानकर्तव्य देश की रक्षा करना था। ये अपने स्वभावानुसार शक्ति तथा सत्ता में अभिरूचि रखते हुए राजप्रबंध एवं राष्ट्र तथा समाज की रक्षा भलीभांति कर सकने में सक्षम थे। मनुस्मृति में मनु ने क्षत्रियों के कर्तव्य के संदर्भ में इस प्रकार कहा है-

प्रजानां रक्षणं दानभिज्या ध्ययनमेव च।
विषयेष्व प्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।

-मनुस्मृति, 1/89

क्षत्रियों के गुणों के बारे में जो भाव अपेक्षित माने गये हैं वे शौर्य, तेज, धैर्य, चतुरता, व्यवहारकुशलता, युद्ध में साहस, दान तथा स्वामित्व के भाव हैं, जिसका उल्लेख गीता में भी हुआ है-

शौर्य, तेजो धसिदक्ष्यिं, युद्धे चाप्यपतापनम।

दानमीश्वरभावरच, क्षात्रं कर्म स्वभावजम्।।

– श्रीमद्भगवद्गीता, 18/43[22]

इन उल्लेखों से ज्ञात होता है कि क्षत्रियों का प्रधान कर्तव्य दीन-दुखियों की रक्षा करना विदेशी आक्रमण के अवसर पर शत्रु का वीरता के साथ सामना कर देश की रक्षा करना रहा है।

जाय़सी ने क्षत्रियों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण गोरा बादल युद्ध खण्ड, में प्रस्तुत किया है। गोरा-बादल को जब यह समाचार प्राप्त होता है कि बादशाह द्वारा राजा रत्नसेन को बन्दी बनाकर ले जाया गया है तब वे योद्धा द्वय उन्हें बन्धन से मुक्त कराने के लिए दृढ़ संकल्प कर लेते हैं। इन वीरों की भुजाएं फड़कने लगती है। गोरा प्रतिज्ञा करते हुए कहता है कि राजा रत्नसेन को जब तक मैं बन्धन से मुक्त नहीं कर दूंगा। तब तक मैं सुखी नहीं हो सकता-

रतनसेन तुम्हं बांधा मसि गोरा के गास।

जब लगि रूहिर न धोवों, तब लगि होउं न रात।।

कहने का अभिप्राय यह है कि गोरा और बादल ने इस युद्ध में अपने जिस क्षत्रियोचित वीरता का परिचय दिया है वह अद्वितीय है।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर जायसी ने राजा रत्नसेन की

वीरता का परिचय दिया है। जब राजा रत्नसेन को देवपास द्वारा दूती भेजने का समाचार प्राप्त होता है तब वह देवपास की नीचता पर अत्यन्त क्रोधित होकर अपने सम्मान के रक्षार्थ क्षत्रियोचित कर्तव्य समझकर देवपास पर चढ़ाई कर देता है और युद्ध में लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त होता है। कवि उसमान ने क्षत्रियों के बारे में इस प्रकार कहा है-

पुनि राजपूत बसहिं रन रूरे। और गुनी जन सब गुन पूरे।।[23]

मध्यकालीन राजपूतों (क्षत्रिय) के छत्तीस कुलों की संख्या मात्र के उल्लेख इन रचनाओं में आते हैं। जायसी ने अपने महाकाव्य पद्मावत, में इन जातियों का उल्लेख किया है जैसे-

क. घर-घर पदुमिनी छत्तिसों जाती। दोहा 95/3

ख. मैं अहान पदुमावति चली। छत्तीस कुरी मैं गोहने भली।।

- दोहा, 185/1

छत्तीस कुलों के नामों की सूची के विचार से राजा रत्नसेन की सेना के वर्णन के प्रसंग में पद्मावत में जिनके नामोल्लेख आये हैं, वे तोमर, वेश्य, परमार, मुहिलौत, पंचबान, अगरवार, चौहान, चंदेल, गहरवार, परिहार तथा मिलन हंस वशों के हैं-

रतनसेनि चितउर मंह राजा। आइ बजाइ पेठ सब राजा।

तोवर बैस पंवार जो आए। औ गहिलोत आइ सिर नाए।

खत्री ओ पंचवान बघेले। अगरवार चौहान चंदेले।

गहरवार परिहार सो कुरी। मिलन हंस ठकुराई उरी।

परन्तु कहीं इन 36 प्रकार के क्षत्रियों का विस्तृत वर्णन नहीं पाया

जाता।[24]

वैश्य

भारतीय संस्कृति में तीसरे प्रकार के व्यक्ति को वेश्य की संज्ञा प्रदान की गई जो धन समृद्धि में विशेष रूचि तथा योग्यता रखते हैं। इसके विपरीत ज्ञानानुसंधान अथवा प्रभुत्वशक्ति में अभिरूचि तथा योग्यता न रख अर्थागम संबंधी योजनाओं में वे विशेष आनन्द प्राप्त करते हैं। प्राचीन भारत में अर्थोपार्जन करने वाले वैश्यवर्ण का यह कर्तव्य था कि वह लोभ का दमन कर अर्थोपार्जन के नैतिक उत्तरदायित्व का अनुभव करें। धन को सेवा करने का साधन मानकर हिन्दू धर्म के उत्कर्ष युग में धनवान अपने धन को सामाजिक धरोहर के रूप में मानते थे और उससे समाज की शिक्षा, दवादारू, जल व्यवस्था और मनोरंजन का प्रबंध करते थे। मध्यकाल में व्यापारियों के लिए बनजारा, शब्द का प्रयोग हुआ है। बनजारा व्यापारियों के उस समूह को कहते थे जो समुदायरूप में अथवा झुंड बनाकर व्यापार के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान को आया-जाया करते हैं। जायसी ने पद्मावत, में व्यापारियों के प्राचीन नाम सार्थवाह के स्थान पर साथ शब्द का प्रयोग किया है-

साथ चला सत बिचला। भए बिच समुद्र प्रहार।

इन बनजारों का प्रधान व्यवसाय व्यापार करना था। बनजारों में जो श्रेष्ठ व्यक्ति होता था वही मुख्य सार्थ कहलाता था-

चितउर गढ़ क एक बनिजारा। सिंघल दीप चला बेपारा।।

कवि उसमान ने अपनी कृति चित्रावली में वेश्य के लिए खत्री शब्द का प्रयोग किया है-

खत्री बेस सबे पुनि धनी। नेन न फेरहि देखे अनी।

जायसी ने पद्मावत में अन्य स्थल पर भी बनजारा शब्द का केवल उल्लेख मात्र किया है। अतः हम कह सकते हैं कि इन रचनाओं में वेश्यों की विभिन्न जातियों की चर्चा नहीं हुई है बल्कि यत्रतत्र उनका उल्लेख मात्र हुआ है।

शूद्र

समाज में स्थित ऐसे लोगों को शूद्र की संज्ञा दी गई है जो न तो उतने विचारशील न उतने पराक्रमी अथवा कुशल प्रबंधक तथा न उतने व्यापारिक योग्यता वाले ही थे, किन्तु वे शारीरिक परिश्रम तथा हस्तशिल्प आदि का कार्य कर सकते थे। इन सूफी रचनाओं में शूद्र वर्ण की चर्चा नहीं के बराबर है। जायसी ने अपने महाकाव्य पद्मावत में एक स्थान पर डोम के रूप में शूद्र का उल्लेख अवश्य किया है-

जो उजियार चांद होइ उई। बदन कलंक डोम के छुई।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर जायसी ने डोम के रूप में हबसी का उल्लेख किया-

इबसी बंदिवान जितवधा। तेहि सौपा राजा अगिदधा।

तत्कालीन समय में हबसी का काम कैदियों को शूली पर चढ़ाकर उनका प्राण लेना था। कवि ने हबसी को जल्लाद के रूप में दिखाया है। तत्कालीन समय डोम जाति के लोग ही जल्लाद का कार्य किया करते थे। कवि उसमान ने भी शूद्र के बारे में कहा है कि वे घर-घर जाकर कार्य करते

थे तथा रात-दिन धर्मानुसार व्यवहार करते थे-

सुद्रन्ह घर-घर बनिज पसारा। निस दिन करहिं धरम व्यवहारा।

इसी प्रकार कवि शेख रहीम ने भी अपनी कृति भाषा प्रेमरस में शूद्र के बारे में कहा है कि शूद्रगण सेवा का कार्य करते हैं-

शूद्र बसे सेवा जस काजू। प्रजापाल राजा के राज।

जाति

भारतीय सामाजिक जीवन की आधारशिला के रूप में दीर्घकाल से प्रतिष्ठित वर्णव्यवस्था के अंतर्गत दूसरी महत्वपूर्ण कड़ी कही जाती है। यहां अनेक जातियां निवास करती हैं तथा हरेक जाति के अन्तर्गत उपजातियां भी हैं। इन विभिन्न जातियों प्रजातियों की उत्पत्ति चार वर्णो से ही मानी गई है। जाति प्रथा भारतीय संस्कृति के अंतर्गत हिन्दू समाज की एक प्रमुख विशेषता है। जाति प्रथा का जो सघन जाल इस समाज में दृष्टिगोचर होता है, वह अन्य किसी समाज में नहीं। बाहरी आक्रान्ताओं के कारण भी कुछ जातियों का यहां के समाज में मिश्रण हो गया। फलस्वरूप कुछ नवीन जातियों का उदय हुआ। विभिन्न व्यवसायों के आधार पर भी कुछ नवीन जातियों का सृजन हुआ, साथ ही उनके व्यवसाय के नाम पर ही उनकी जाति का नामकरण हुआ।

सूफी प्रेमाख्यानों में आये हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि मध्ययुग में सहस्त्रों जातियां और प्रजातियां हिन्दू समाज में बन चुकी थी। इन कवियों ने उस समय स्थित विभिन्न जातियों का वर्णन किया है जिनका आधार विभिन्न पेशा था। लगभग सभी कवियों ने छत्तीस जातियों का वर्णन

किया है। सूफी प्रेमाख्यानों में छत्तीस जातियों की चर्चा प्रायः मिलती है-

बसहिं नगर छत्तीसों जाती। घर-घर सुख बरसे दिन राती।

इस संख्या के संबंध में डा0 कन्हैया सिंह का मत है कि प्रथम यह संख्या हिन्दू समाज की प्रमुख जातियों की है। द्वितीय, ये छत्तीस जातियां पोनिया (नेगग्रहण करने वाली) है। यहां नेग का तात्पर्य विवाहादि शुभ अवसरों पर संबंधियों, आश्रितों तथा कृत्य में सहयोग देने वाले लोगों को कुछ उपहार दिये जाने का लौकिक नियम से है जिसमें नाई, बरई, धोबी इत्यादि प्रमुख हैं। डा0 माता प्रसाद गुप्त ने पद्मावत की छन्द संख्या 185 की टिप्पणी में पोनियों की छत्तीस जातियों की जो सूची प्रस्तुत की है, उसके अनुसार सीसदर, दरजी, तमोली, रंगवाला, ग्वाल, धोबी, बढ़ई, संगतरास, तेली, धुनिया, कंदोई, कहार, काछी, कलाल, कुलाल, माली, कुंदीगर, कागदी, किसान, पटबुनियां, चितेरा, बिंधेरा, बारी, लखेरा, ठठेरा, राज, पटुआ, छपरबंध, नाई, भारतभनियां, सुनार, लुहार, सिकलीगर, हवाईगर, धींवरा, चंदार इत्यादि हैं।[25] छत्तीस पोनियों की सूची से ज्ञात होता है कि इसमें उच्च कुल की जातियां नहीं आती। किन्तु जायसी ने पद्मावत के बसन्तखंड में छत्तीस पोनियां जातियों के अन्तर्गत ब्राहमणी और क्षत्राणी जातियों का उल्लेख किया है जो कि पोनियां जातियों में नहीं आते। लगता है कि कवि ने इन जातियों की गिनती में भूल की है-

मे अहान पद्मावती चली। छत्तीस कुरी में गोहने भली।

मे कोरी संग पहिरि पटोरा अभिनि ठाउ सहस अंग मोरा।

अगरवारिनि गज गवन करेई। बेसिनि पाव हंस गति देई।

चंदेलिनि ठवंकन्ह पगुढारा। चली चौहानी होइ झनकारा।

चली सोनारि सोहाग सोहाती। ओ कलवारि पेम मधु माती।

बानिनि भल सेंदुर दे मांगा। केथिनि चली समाइ न आंगा।

पटुइनि पहिरि सुरंग तन चोला। ओ बरइनि मुख सुरस तंबोला।

चली पवनि सब गोहने फूल डालि ले हाय।

बिस्वनाथ की पूजा, पद्मावति के साथ।

नूर मुहम्मद ने अपने चरित्र काव्य इन्द्रावती में छत्तीस जाति की नारियों की विविधता एवं उनकी विशेषता का उल्लेख इस प्रकार किया है-

जहं लौं नारि दत्तीसो जाती। चढ़ विवान आई रंगराती।

चली मान सो ब्राहमन बारी। बनियाइन नाइन पटहारी।

चली सोनारिन कंचन बरनी। रजपूती खतरिन मनहरनी।

लोनी तन हलवाहन चली। अधर मिठाई बांटत चली।

इन रचनाओं के अतिरिक्त अन्य सूफी प्रेमाख्यानों में भी पोनियों की छत्तीस जातियों का उल्लेख हुआ है। कवि मंझन ने अपनी कृति मधुमालती में छत्तीस पोनियों की चर्चा करते हुए बतलाया है कि वे राजकुंवर की बारात में दुल्हे के साथ चलते हैं-

चली छत्तीसों पोनि कुंअर संग, चित्रसेनि कुमार

जोजन सात चहुं दिस, भा अंजोर भिनुसार।

कासिमशाह ने हंस जवाहिर में छत्तीस जातियों की चर्चा इस प्रकार की है-

वैरी लोग छत्तीस जाती। जो जेहि भांति सो तेहि तेहि पाती।

कुतुबन कृत मृगावती में विभिन्न पेशे के आधार पर जातियों का उल्लेख हुआ है जिसमें लकड़ी को गढ़कर विभिन्न वस्तुएं बनानेवाली जाति बढ़ई, लोहे का कार्य करने वाली जाति लोहार, पत्थर को काटने वाली जाति पथवरिया, मकानों में जुड़ाई चुनाई का कार्य करने वाली जाति चुनहारा, विभिन्न प्रकार की चित्र बनानेवाली जाति चितेरा इत्यादि है।[26]

इसी प्रकार डलमउ निवासी मौलाना दाउद कृत चंदायन में गोबरगढ़ वर्णन के अंतर्गत विभिन्न हिन्दू जातियों के बसने का उल्लेख हुआ है। ब्राहमण जाति के अंतर्गत उपजाति में तिवारी तथा क्षत्रिय में गहरवार, रावत व चौहान ठाकुर का नाम आया है। इसी क्रम में ग्वाल (अहीर, यादव) जो गोपालन तथा दूध दही का व्यवसाय करते हैं, अग्रवाल, पचवाना (पंचवर्ण) धागर जो शूद्र वर्ण से संबंधित है जिनकी स्त्रियां सन्तानोत्पत्ति के अवसर पर नाल काटने का कार्य करती हैं, चूनी (चूने इत्यादि का कार्य करने वाले) जो गृहनिर्माण में चुनाई या जुड़ाई का कार्य करते हैं, हज्जाम या नाई जो बाल बनाने का कार्य करते हैं गंधी जो सुगन्धित तेल द्रव्यों का व्यवसाय करते हैं, बनजारा (घुमक्कड़ जाति) जो एक भ्रमणशील जाति हैं, सरावग (श्रावक) जेन धर्म अनुयायी, बनबारा (बरनवाल), सोनी (सुनार) जो स्वर्णाभूषण बनाने का कार्य करते हैं। तथा बिनानी आदि जातियों का उल्लेख हुआ है।

बांभन खतरी बसहिं गुवारा। गहरवार और अगरवारा।
बसहिं तिवारी और पचवानां धागर चूनी ओ हजमाना।
बसहिं गंधाई ओ बनजारा। जात सरावग ओ बनवारा।
ठाकुर बहुत बसहिं चौहाना। पर जा पोनि गिनति को जाना।

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर कवि ने चांद (चन्दा) के साथ देवपूजन के अवसर पर विभिन्न जातियों की स्त्रियों के जाने का वर्णन किया है, जिसमें मुख्य रूप से ठांकिनी, भाटिनी, पटुहिनि, कैथिनी, गूजरी, मालिनि, कलवारिन तथा वैश्या का भी उल्लेख हुआ है।[27]

आश्रम व्यवस्था

भारतीय धर्मशास्त्रकारों ने मानव जीवन को चार आश्रमों में विभक्त किया है। यह विभाजन मनुष्य की आयु को सौ वर्ष मानकर उसे पच्चीस वर्ष के चार भागों में विभक्त किया गया जिनका नाम क्रमशः ब्रहमचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास रखा गया। ब्रहमचर्य जीवन विद्यार्जन एवं ज्ञानार्जन का काल है। गृहस्थ जीवन वैवाहिक आनन्द और लौकिक कार्यो द्वारा सांसारिक जीवन के सुख भोगने, वानप्रस्थ की अवस्था में सम्पूर्ण अभिलाषाओं पर विजय प्राप्त कर वास्तविक सत्ता पर ध्यान केन्द्रित होने का तथा संन्यास की स्थिति में सांसारिक मायाजाल के बन्धनों को तोड़कर देश देशान्तर धूमकर सत्य रूप ब्रहम के प्रचार का काल माना गया है।

सूफी रचनाओं में आये हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि हिन्दू संस्कृति में इस आश्रम व्यवस्था का कोई व्यवस्थित रूप प्राप्त नहीं होता। इन प्रेमाख्यानों के कथा प्रंसग में यत्रतत्र विभिन्न आश्रमों के चित्र अवश्य दिखलाई पड़ जाते हैं। लगभग सभी सूफी कवियों ने प्रेमाख्यानों के नायक-नायिका को विधिपूर्वक ब्राहमणों द्वारा विद्याध्ययन और ज्ञानार्जन प्राप्त करते हुए दिखलाया है। वस्तुतः इसी अवधि में ब्रहमचर्य की संज्ञा दी जा सकती है।[28] इनके नायक या नायिका प्राचीन ब्रहमचारियों की भांति गुरू के आश्रम में विद्यार्जन

करते हुए नहीं पाये जाते। नूर मुहम्मद के अनुराग बांसुरी में ब्रहमचर्य के स्वरूप की झांकी अवश्य मिलती है। जिसमें ज्ञातस्वाद नामक पात्र का श्रवण नामक ब्राहमण के पास जाकर दिवाध्ययन करना प्राचीन ब्रहमचारियों की भांति अवश्य अनुकूल जान पड़ता है-

सरवन ब्राभन मूरतपूरी जेहि विश असुरी ओ सूरी।
विद्या लागि गएउ वह तहा। विषापुर बसा पटु जहां।
विद्यारथी एक तेहि ठाउ। ज्ञातस्वाद रहा तैहि नाउ।
सो सरवन संग प्रीति लगाएउ। मरम आपनो सकल सुनाएउ।

गृहस्थ जीवन के अन्तर्गत सभी नायकों का विवाह करना और राजव्यवस्था का संचालन करना तथा नायक नायिकाओं के पितरों की पुत्रेच्छा, सन्तान प्रेम और सांसारिक विभूति इत्यादि चित्र देखने को मिलते हैं। जायसी ने अपनी कृति पद्मावत के अन्तर्गत गृहस्थ आश्रम की झांकी प्रस्तुत की है। राजा रत्नसेन नागमती से विवाह करके सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करता है। परन्तु तोते द्वारा वर्णित पद्मावती के अलौकिक रूप सौन्दर्य को सुनकर वह पद्मावती की प्राप्ति के लिए सिंहल द्वीप प्रस्थान करता है और वहां अनेक विध्य बाधाओं को पार करते हुए पद्मावती से विवाह कर लौट आता है। पद्मावती रत्नसेन भेंट खण्ड में रत्नसेन का अपनी नवविवाहिता पत्नी पद्मावती के प्रति प्रेम का वर्णन किया गया है। रत्नसेन के चित्तौड़गढ़ आगमन पर नागमती अत्यन्त प्रफुल्लित होती है। इस प्रफुल्लता का समाचार जब पद्मावती को प्राप्त होता है तो वह नागमती के पास झगड़ने की मनोवृत्ति से पहुंच जाती है। दोनों सपत्नियां मिलकर सिंहासन पर बैठ जाती है। प्रारम्भ तो मीठी

बातों से होता है परन्तु उनके हृदय में तो विरोध था। नागमती और पद्मावती दोनों सपत्नियों के बीच कवि ने जिस सौतिया डाह का चित्र प्रस्तुत किया है, उसमें गृहस्थ जीवन की झांकी स्पष्ट देखने को मिलती है-

दुओ सवति मिलि पाट बईठीं। हियं विरोध मुख बातें मीठी।

वे आपस में एक दूसरे को हीन और अपने को श्रेष्ठ कहने लगती है। वाद-विवाद के दौरान नागमती कहती है-

पुहुप वास हो पवन अधारी, कंवस मोर तरहेल।

जब चाहों धरि केस ओनावों, तोर मरन मोर खेल।

इस बात को सुनकर पद्मावती सहन नहीं कर पाती हैं। वह आग बबूला हो जाती है। नागमती को उसने नागिन की तरह पकड़ लिया और दोनों में गुत्थमगुत्थी प्रारंभ हो जाती है।[29] पारस्परिक उत्तर प्रत्युत्तर एवं लड़ने-झगड़ने में सपत्नी कलह (सौतियाडाह) का स्पष्ट उदाहरण प्राप्त होता है। चंदायन में भी यही प्रसंग प्राप्त होता है।

मौलाना दाउद ने चंदायन में सौतियाडाह का चित्रण बड़े ही रोचक ढंग से किया है। लौरिक की प्रथम पत्नी मैना और द्वितीय पत्नी चांद में वाद-विवाद बढ़ते-बढ़ते शारीरिक संघर्ष तक पहुंच जाता है-

चांदे आपुन कियत बड़ाई, मैनहिं बूलत रही लजाई।

बोल बतोस भई छुटाई। कहसि न चांद कहों तें आई।।

सपत्नियों के बीच सौतियाडाह का ज्वलंत चित्रण कुतुबन ने अपनी कृति मृगावती में किया है। मृगावती और रूपमिनी दोनों राजकुंवर की पत्नियां हैं और दोनों में सपत्नी सुलभ कलह होता है। कभी-कभी सासु-ननद और चेरियों

के आपस में झगड़ा लगाने से द्वन्द्व होता है। इन दोनों रानियों के मध्य झगड़ा लगाने का कार्य ननद द्वारा होता है। वह मृगावती से रूपमिनी की अनुपस्थिति में उसकी चुगली करती है कि वह तुम्हें रखेल कहती है। इस बात को सुनकर मृगावती क्रुध हो जाती है। इस अग्नि को दासी और बढ़ा देती है। वह ननद और मृगावती की वार्ता सुनकर उसे रूपमिनी से कह देती हे। परिणामस्वरूप दोनों में वाद-विवाद प्रारंभ हो जाता है तथा दोनों एक-दूसरे को परस्पर छोटा और स्वयं को श्रेष्ठ कहकर लड़ना-झगड़ना प्रारंभ कर देती है।[30]

वानप्रस्थ की स्थिति प्रायः इन रचनाओं में नहीं दिखाई देती है। परन्तु मंझनकृत मधुमालती में इस अवस्था का एक चित्र अवश्य दिखाई देता है। कनेसर नगर के राजा सूरजभान अपने पुत्र के योग्य हो जाने पर विचार करते हैं कि मैं अब सांसारिक विवादो को त्याग कर ईश्वर का स्मरण करूं जिससे संसार रूपी सागर को पार कर सकूं और पुत्र के सिर पर मुकुट रख दूं और वही अब राजसुख का आनन्द ले-

मै प्रहरउं प्रिथिमी क द्वंद्व, सुत जो करो राज अनंदू।
कहहु मटुक कुंवर सिर धरउं। मैं हरिनाम जपों जे तरउं।

इसमें वानप्रस्थ जीवन की झांकी स्पष्ट देखने को मिल रही है। संन्यास अवस्था का उल्लेख इन रचनाओं में नहीं मिलता है। सभी नायक योगी होकर निकलने की अवस्था में दिखाई पड़ते हैं। ये पात्र बिरहावस्था में योगी बनते हैं और अपने प्रिय के लिए प्रेमपंथ पर अग्रसर होते हैं। प्रिय प्राप्ति के बाद वे पुनः भोगी बन जाते हैं और साथ ही गृहस्थ जीवन का सुख-ऐश्वर्य भोगने लगते हैं। जायसी ने पद्मावत के अन्तर्गत जोगीखण्ड में राजा रत्नसेन के द्वारा

अपना राजपाट छोड़कर योगी बनकर सिंघलगढ़ जाने का वर्णन किया है। परन्तु उसे संन्यास की संज्ञा नहीं दी जा सकती है क्योंकि राजा पद्मावती रूपी भोग की प्राप्ति के लिए सिंघलगढ़ जाता है योग की सिद्धि के लिए नहीं।[31]

नारी पूजा

भारतीय संस्कृति के अन्तर्ग हिन्दू समाज में नारी का स्थान सर्वोपरि रहा है। हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यानों के मुख्य विषय से सम्बद्ध होने के कारण नारी जीवन की अभिव्यक्ति इन रचनाओं में स्वभावतः विशद रूप से हुई है। मध्ययुग में नारी का जीवन पुरूषों की कृपा पर आश्रित था, साथ ही पुरूषों की तुलना में उनमें प्रतिष्ठागत हीनता तथा विदशता का भाव था किन्तु इसके विपरीत दाम्पत्य जीवन के बीच उसकि पतिव्रत धर्म अथवा सतीत्व का आदर्श उतनीं ही दीप्ति के साथ मौजूद था।[32] तत्कालीन नारीजीवन की मुख्य विशेषताओं में उनके दाम्पत्य जीवन के अंतर्गत सतीत्व का आदर्श, उनकी परमुखा पेक्षी स्थिति तथा पुरूषों में उनके प्रति हीन दृष्टिकोण की अवस्थिति आदि थी जो कि उस युग के प्रेमाख्यानों में भी प्रतिबिम्बित हैं।

सतीत्व का आदर्श

भारतीय संस्कृति नारी जीवन के मध्य पतिव्रत धर्म की प्रतिष्ठा करती है। हिन्दू धर्म में नारी के लिए अपने पतिव्रत धर्म का पालन करना सबसे बड़ा कर्तव्य माना जाता है। स्वप्न में भी परपुरूष का ध्यान न आना पत्नीत्व का सर्वोच्च आदर्श है। नारी का यही धर्म उसका संत , कहलाता है। भारतीय नारी अपने को पति के साथ न केवल भौतिक जीवन के बीच ही

संबंधित मानती है वरन् परलोक में भी उसी पति के मिलने पर आस्था रखते हुए तदनुरूप आचरण भी करती है। इस सबंध में जायसी ने नागमती और पद्मावती दोनों के मुख से कहलवाया है-

ओ जो गांठि कंत तुम्ह जोरी। आदि अन्त दिन्हि जाइ न छोरी।

एहि जग काह हो आदि निआयी। हम तुम नाथ दुह जग साथी।

कवि ने संत की आदर्श महत्ता का प्रमाण देते हुए कहा है कि जब राजा देवपास की दूती कुमुदिनी नागमती के सतीत्व को पथ से विचलित करने हेतु अपने सम्पूर्ण तंत्र-मंत्र के साथ चलती है तो वह इस कार्य में सफल नहीं हो पाती क्योंकि उसका सत सुमेरू पर्वत की भांति अचल है-

दूती बहुत पेज के बोली पाढित बोल।

जाकर सत्त सुमेरू है लागे जगत न ठोस।

मौलाना दाउद कृत चंदायन में जब लौरिक रात भर चांद के साथ रहने के उपरान्त घर आता है तो उसकी पत्नी मैना उस पर सत, गंवाने का सन्देह व्यक्त करती है-

हो मनुसहिं ओहट पहचानों। बात कही नेन देख जानों।

ढील का सत आप गंवाया। सत कहि हैं जस तुम घर आवा।

इसी प्रकार उसमान कृत चित्रावली के अजगर खण्ड में कुंवर के नेत्रज्योतिहीन हो जाने पर उससे अनमानुख कहता है-

कहेसि रे अंध विधाता द्रोही। कहु सो सत सत पूछो तोहीं।

जो सत संग साथ लव गोती। हियें सत्त लोचन सिर जोती।

भारतीय नारी की अपने पति के प्रति अविच्दिन्न संबंधों की कामना तथा

उस पर सुदृढ़ आस्था सदैव से रही है जिसके परिणामस्वरूप पति की मृत्यु के पश्चात परलोक में उससे मिलने की आशापति के शव के साथ चिता में भस्म होने की प्रेरणा देती है। इतना ही नहीं, जब उसे यह संदेह हो जाता है कि युद्ध भूमि में उसका पति मारा जायगा, साथ ही वह दूसरों के हाथ पड़ जायेगी तो ऐसी स्थिति में वह पहले ही चिता में जलकर सतीत्व का निर्वाह करती थी। इस संदर्भ में कासिमशाह ने अपनी मौलिक कृति हंस जवाहिर में सती की महत्ता का आदर्श निरूपण करते हुए लिखा है-

सत मन जानि सराहे बारी। जिन पति राख लीन्ह कुसतारी।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतीय नारी के उपर्युक्त तत्कालीन आदर्श की अभिव्यक्ति इन रचनाओं के अंतगर्त उनकी अपनी व्यक्तिगत परिस्थितियों के अनुसार हुई है। प्रेमाख्यानों के उपर्युक्त निर्देश जहां समाज जीवन के बीच सतीत्व के आदर्श की प्रतिष्ठा का परिचय देते हैं। वहां तत्कालीन मुसलमान समाज के बीच उसके प्रभाव को भी प्रकट करते हैं। प्रेमकथाओं में सूफी कवियों द्वारा उस आदर्श की जो सम्यक् प्रतिष्ठा हुई है वह यह व्यक्त करती है कि भारतीय नारी के उस दिव्य आदर्श से वे अवश्य प्रभावित हुए थे। जैसा कि पद्मावत के जौहार खण्ड भारतीय आदर्श का प्रत्यक्षीकरण चित्तौड़ के जौहार के रूप में प्रकट होता है। कहना न होगा कि देवपाल तथा अलाउद्दीन की दूतियों द्वारा पद्मावती के अन्त:करण में कामवासना को प्रदीप्त करने के प्रयास तथा उनके बीच अपने सतीत्व को स्थिर रखनेवाली पद्मावती का उदाहरण भी उक्त आदर्श का ही प्रतीक है।[33]

नारी की परमुखापेक्षी स्थिति तथा पुरूषों में उनके प्रति हीन दृष्टिकोण

नारी जीवन के उपर्युक्त त्यागपूर्ण आदर्श को दृष्टिगत रखते हुए जब हम इन रचनाओं के माध्यम से उसके सामाजिक महत्व का अध्ययन करते हैं। तो हम अपेक्षा विरूद्ध उसके प्रति हीन भावना तथा समाज जीवन के बीच ऐसी परमुखापेक्षी स्थिति देखते हैं कि मानों उसका अपना कोई स्वंतत्र अस्तित्व है ही नहीं। हो सकता है कि उनकी इस स्थिति का कारण उनके प्रति युगगत हीन भावना के विकास का रहा हो जिसकी यथार्थ अभिव्यक्ति पद्मावत में देखने को मिलती है। उसे तलवार अथवा शक्ति की अनुसंगिनी कहा गया है-

तिरिया पुहुमि खरग के चेरी। जीते खरग होइ तेहि केरी।

प्रेमाख्यानों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नायिकाएं नायकों की भांति प्रेम व्यापार में स्वतंत्र नहीं थीं। मंझन कृत मधुमालती में नायिका नायक मनोहर से अत्यधिक प्रेम करने वाली पारिवारिक बन्धन में बुरी तरह जकड़ी हुई विवश होकर कष्ट सहन करती है। इसी प्रकार पद्मावत में नायिका पद्मावती भी अपने प्राण हथेली पर लिये परवंश ही दिखाई देती है।[34] इतने कष्ट के उपरान्त प्रतिरूप में प्राप्त रत्नसेन उसे सेना द्वारा सुखभोग करने वाला व्यक्तित्व ही प्रदान करता है-

सेव करहु मिलि दूनहू ओ मानहु सुख भोग।

नारी की सामाजिक स्थिति तथा महत्व-

नारी विषयक उपर्युक्त दृष्टिकोण के विपरीत सूफी प्रेमाख्यानों के

परीक्षण से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समय में पुत्री कोई घृणा या उपेक्षा की वस्तु नहीं समझी जाती थी। उसके जन्म पर भी हर्षोत्सव मनाये जाते थे और पुत्री के अभाव में लोग उसकी प्राप्ति की कामना करते थे। इस संबंध ा में कवि नूर मुहम्मद ने अपनी कृति इन्द्रावती में पुत्री के महत्व का प्रतिपादन करते हुए बतलाया है कि आगमपुर के राजा को कोई पुत्री नहीं है जिसके लिए वे चिंतित रहते हैं। वे एक पुत्री के लिए अत्यन्त लालायित हैं क्योंकि कन्यादान सर्वश्रेष्ठ दान समझा जाता है और उसी से मुक्ति होती है-

आतमजा जो होत एक, होत सदन उजियार।

कन्यादान दिह सो, होते मुकुत हमार।

शेखरहीम कृत भाषा प्रेमरस में चन्द्रकला के जन्म पर बडत्रा आनन्द और उल्लास छा जाता है। इस प्रसंग में कवि ने कन्या के महत्व को स्वीकार करते हुए उसके माहात्म्य का वर्णन इस प्रकार किया है-

जनम लिहेउ कन्या घर माहीं। सुनि आनंद भरउ सब काहीं।

एक कन्या कुलवंती चाही। पूत कपूत भलो दस नाहीं।

मौलाना दाउद कृत चंदायन में चांद के जन्म पर महर सहदेव के घर बड़ा उत्सव मनाया जाता है। जन्मोत्सव में गोबर ग्राम की छत्तीसों जातियों को भोजन का नियंत्रण दिया गया और बधाइयां बजीं।[35] इसी प्रकार सूफी प्रेमाख्यानक काव्य परंपरा के सर्वाधिक माने जाने वाले लब्धप्रतिष्ठ कवि जायसी की अमर रचना पद्मावत में पद्मावती के जन्म पर भी छठीं का उत्सव धूमधाम के साथ मनाया गया। सारी रात्रि रास और क्रीड़ा में व्यतीत हो गई-

भइ छठि राति छठी सुख मानी। रहस कोइ सो रैनि बिहानी।

कवि उसमान ने कन्या के बड़ी होने पर उसके लिए जिम्मेदारी की बात कही है। कन्या के जन्म से माता-पिता का बोझ और जिम्मेदारी बढ़ जाती है। उसके लिये योग्य वर की तलाश तथा उसके शील एवं कौमार्य की सुरक्षा आदि के भार से वे चिंतित रहते थे-

तब ते दुहिता अपनी, सतत हिये उत्पात।

निकसे कांटा तबकिं जब आंगन आव बारात।

तत्कालीन समाज में नारी शिक्षा का भी प्रचार था। सूफी प्रेमकथाओं में नायिकाओं के ज्ञान सम्पन्न एवं सभी विद्याओं में निपुण होने का उल्लेख मिलता है। पद्मावत की नायिका पद्मावती पांच वर्ष की आयु में ही पुराणादि पढ़ने हेतु बैठाई गई और वह इनके अध्ययन द्वारा पंडित हो गई-

पांच बरिस मंह भई सौ बारी। दीन्ह पुरान बढ़े बैसारी।

मैं पद्मावति पंडित गुनी। चहूं खण्ड के राजन्ह सुनी।[36]

इसी प्रकार कासिमशाह कृत हंस जवाहिर की नायिका चौदह विद्याओं में पारंगत तथा विदुषी बतायी गई है। भाषा प्रेमरस की नायिका चन्द्रकला विधिपूर्वक पाठशाला में विद्यार्जन करती है और सभी भाषाओं में निपुणता प्राप्त करती है।

<u>गुरू का महत्व</u>

सूफी प्रेमाख्यानक काव्यों में गुरू के महत्व पर विशेष बल दिया गया है। सूफी कवियों के अनुसार गुरू महिमा का जितना वर्णन किया जाय कम ही है। वे गुरू को सच्चा पथप्रदर्शक मानते हैं। सभी सूफी कवियों ने

ग्रन्थारंभ में गुय परंपराएं दी हैं। हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यधारा के सर्वाधिक लब्धप्रतिष्ठ कवि मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी सुप्रसिद्ध कृति पद्मावत में गन्धर्व सेन मंत्री खंड के अंतर्गत गुरूकृपा की विशिष्टता एवं पात्रता के लिए छलहीन और अनुरागी होने की आवश्यकता के प्रमाणार्थ यह स्थापित किया है कि गुरू के कृपा स्पर्श के अभाव से सिद्धिदर्शन दुर्लभ हो जाता है। शिष्य द्वारा गुरू स्वरूप चिन्तन और इसकी चितत् में स्थापना से साधना के क्षेत्र में प्रवेश सम्भव होता है। गुरू शिष्य के परस्पर सत् संबंधों की और अधिक प्रगाढ़ता हेतु गुरू की महती कृपा को स्वयं जायसी ने आत्मनिवेदन के साथ-साथ अपने सद्गुरू मेंहदी और शेख बुरहान की गरिमा को गाया है क्यों कि उन्हीं की कृपा से ज्ञानपथ की प्राप्ति और अज्ञानमय से छुटकारा हुआ। जायसी के ऐसे वर्णनसे सद्गुरू और सत्शिष्य के परस्पर संबंध निर्वाह और स्वरूप निर्धारण का सत्याधार मिलता है। बिना गुरू के कोई रास्ता नहीं पा सकता-

गुरू मोहदी सेवक में सेवा। चते उताइल जिन्हकर सेवा।

अगुवा भएउ शेख बुरहान। पंथ लाइ मोहि दीन्ह गियान।।

अथवा

सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।

सूफी कवियों में कुतुबन, मंझन, नूर मुहम्मद, उसमान का नाम कम महत्पूर्ण नहीं है। इनकी कृतियों में सूफी काव्य की आध्यात्मिक पद्धति के अनुकूल ही गुरू-वन्दना, गुरू महात्म्य और गुरूतत्व के प्रकाश की व्यापकता और नित्यता का आभास मिलता है।

गुरू-वन्दना के अंतर्गत कवि कुतुबन ने अपनी कृति मिरगावती में शेख बुढन के साथ सुहरावर्दी सम्प्रदाय के पीरों के नाम को गुरूवत श्रद्धापूर्वक नाम लेते हुए उन्हें सुधीमय तन का प्रदाता, महान और सच्चा पीर कहा है जिनके पैरों के धोने अर्थात् सेवन से अतीत तथा वर्तमान के सभी साधकों ने अपने-अपने अभीष्ट को प्राप्त किया है। इनके पथ निर्देशन से साधना पथ की विकटता और किंचनता क्षणमात्र में ही दूर हो जाती है। इष्ट की प्राप्ति सहज हो उठती है। सत्य भाव व सत्यलगन से युक्त व्यक्ति ही इस पथ पर चल कर अपने गन्तव्य पथ की पूर्णता की प्राप्ति पा सकेगा।[37]

शेख बुढन जग सांचा पीर। नाउ लेत सुध होइ शरीर।
कुतुबन नाउ लेख धरे। सुहरावर्दी दुहुं जग निरमरे।[38]

गुरूतत्व के माहात्म्य को प्रतिपादित करते हुए कवि मंझन का कहना है कि शेख इस जग के सबसे बड़े पीर हैं जो ज्ञान, गुरूतत्व और अन्य अपार रूपों से युक्त हैं और उनके पैरों पर समर्पित उनके स्पर्श मात्र से ही व्यक्ति का पाप दूर हो जाता है। वह ज्ञान प्राप्त करता है। उनके सस्पर्श मात्र से जीव माया से छूट जाता है उसकी दृष्टि ही शारीरिक मलिनता को धो डालने वाली है। जिस शिष्य को ऐसी गुरू दृष्टि की प्राप्ति न हो तो उसका जन्म निरर्थक ही है। फलतः गुरू कृपादृष्टि जिसने प्राप्त कर ली है, वह चारों युगों का राजा है। शेख मुहम्मद जैसे महत्वपूर्ण पीर ने सप्त समुद्र से डूबती हुई नौका अर्थात् जीवन को सार्थक सिद्ध किया, ऐसे सामर्थ्यशाली एवं महान शक्ति सम्पन्न के शरणागत होने से व उनके पथ प्रदर्शन से प्रथमतः सुखों

के दर्शन का लाभ प्रारम्भ हो जाता है। गुरू मुहम्मद पीर गुणों के दाता हैं और गुणग्राही होने के साथ-साथ वे चैतन्य निर्मल और सदैव गंभीर रहते हैं-

शेख बड़े जग पीर अपारा। ग्यान गरूज जे रूप अपारा।

दाता गुन गाहक, गौस महम्मद पीर।

दुइ कुल निरमल सा पुरून, गरूअ गरिस्ट गंभीर।

पुनः कवि एक स्थान पर स्पष्ट शब्दों में यह घोषित करता है कि गुरू के होने से ही संसार से पार उतरा जा सकता है-

मन की आसर विषम अपारा। गुरू होय तो लागे पारा।

गुरू की कृपा दृष्टि केवल साधना के क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि शिक्षा दीक्षा एवं सर्वक्रिया की सुलभता के लिए भी संभव एवं सहज है। इसकी विशदता को सुप्रसिद्ध सूफी कवि उसमान ने अपनी चर्चित रचना चित्रावली में उजागर किया है। गुरू की सर्वविद्या कला, निपुणता अल्पसमय में ही अमरकोश, व्याकरण, योग, वैदिक छन्द विधान, संगीत, सुर राग, ज्योतिष, भूगोल आदि की दीक्षा देकर सुजान बना देती है।[39] इससे गुरू की विद्या कला कौशल के साथ उनकी महत्ता भी साबित होती है-

अस चित लाइ गुरू समुझावा। धोरे दिवस गुनहिरदे छावा।

अमर कोश व्याकरन बसाना। जोग वैयकन्हि के सब जाना।

......................सब पढ़ि बेठु सुजान।

कवि नूर मुहम्मद ने अपनी अमर कृति अनुराग बांसुरी में गुरू माहात्म्य का परिचय इस प्रकार दिया है-

कहा सनेह गुरू बैरागी। तीरथ कारन अनुरागी।

गुरू को धरम दान व्रत धरना। चरन धरम तीरथ को करना।[40]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सभी सूफी कवियों ने अपने आध्यात्मिक गुरूओं के गुरूतत्व पर निष्ठापूर्वक पवित्र भावनाओं को अर्पित करते हुए मानव जन्म को धन्य समझा है। प्रत्येक ने एक दूसरे से बढ़कर अपने गुरू के महत्व को प्रतिपादन कर अपनी कला की अभिव्यक्ति की है। इन कवियों ने बड़े गौरव के साथ अपनी गुरू परंपराएं दी हैं तथा आध्यात्मिक जीवन में गुरू के महत्व की प्रतिष्ठा स्थापित की है। साधना के सम्यक् संचालन के लिए गुरू के मार्ग दर्शन की आवश्यकता तत्कालीन युग के धार्मिक जीवन में समझी जाती थी और यही कारण है कि स्थान-स्थान पर उसके व्यक्तितत्व के प्रति अत्यधिक सम्मान व्यक्त किया गया है। डा0 रामबाबू जोशी के शब्दों में सूफी साधक अपने गुरू का सम्मान कुरान और पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के सदृश करते हैं। इसी तरह से पीर और फकीरों को अत्यधिक महत्व प्रदान करते हुए ईश्वर के प्रकाश या सन्देश का स्वरूप इन्हें ही मानते हैं। अतः ईश्वरीय आदेशों का संकेत पीर और फकीरों से बढ़कर कहीं गुरू में अधिक है।

<u>एकीकरण तथा समन्वय की भावना</u>

सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के माध्यम से हिन्दू और मुसलमानों के बीच बढ़ती हुई खाई को पाटने में एकीकरण तथा समन्वय की भावना का महत्वपूर्ण परिचय दिया है। मुसलमान होते हुए भी इन सूफी कवियों ने हिन्दू घरों की कहानी को अपने काव्य का विषय बनाया और साथ

ही साथ यह दिखलाने का प्रयास किया कि हिन्दू और मुसलमानों में विभेद की रेखा खींचना उचित नहीं है। हिन्दू और मुसलमान हृदय आमने-सामने करके अजनबीपन मिटाने वालों में इन्हीं का नाम लेना पड़ेगा। इन्होंने मुसलमान होकर हिन्दुओं की कहानियों हिन्दुओं की ही बोली में पूरी सहृदयता से कहकर उनके जीवन की मर्मस्पर्शिनी अवस्थाओं के साथ अपने उदार हृदय का पूर्ण सामंजस्य दिखा दिया। इन सूफी कवियों ने जनता की प्रत्यक्ष जीवन की एकता का दृश्य सामने रखा।[41]

मौलाना दाउद ने चंदायन लिखा जिसमें चंदा और लौरिक की कहानी है। कुतुबन ने मृगावती लिखी, जिसमें चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचननगर के राजा रूपमुरात की कन्या मृगावती के प्रेम की कथा है। कवि कुतुबन एक ऐसी कथा लेकर जनताके सामने आये जिनके द्वारा उन्होंने मुसलमान होते हुए भी अपने मनुष्य होने का परिचय दिया।

कवि मंझन ने मुधमालती की रचना की और इसमें उन्होंने कनेसर के राजा सुरजभान के पुत्र मनोहर तथा महारस नगर की राजकुमारी मधुमालती की प्रेम कथा का वर्णन किया है। उसमान ने चित्रावली लिखी। इसमें नेपाल के राजा धरनीधर के पुत्र सुजान और रूपनगर के राजा चित्रसेन की कन्या चित्रावली की प्रेम कहानी है।[42]

सूफी रचनाएं

उर्दू काव्य के लिए फारसी रचनाओं का एक निश्चित आदर्श था और सूफी मत को उसने कदाचित इस कारण भी अपनाया, परन्तु हिन्दी काव्य के सामने यह बात नहीं थी, इसलिए अपने ऊपर पड़े हुए सूफी प्रभाव के

लिए उसने फारसी जैसी विदेशी भाषा के साहित्य का अनुसरण करना उतना आवश्यक नहीं समझा। हिन्दी के अपने छंद थे, अपने अंलकार और अपनी परम्परा थी, जिसे उसने संस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी के रूप में अपनाया था। उसे सूफी मत से उसकी विचारधारा का केवल सारतत्व ले लेना रहा जिसे वह अपने स्वदेशी ढ़ाचों में भलीभांति ढाल सकती थी। गजल के स्थान पर उसके सामने आर्यी। साया एवं दुहे का आदर्श प्रत्यक्ष था और मसनवी के लिए वह दोहे, चौपाई को अपना सकती थी। इसी प्रकार गुल, बुलबुल, चमन, मदिरा आदि के स्थानापन्न बनाने के लिए उसे कमल, पपीहा, वाटिका, मधु आदि सरलता से मिल सकते थे इतना ही नहीं, उसे इसके लिए प्रेम कहानियों के विदेशी कथानक अपनाने की भी उतनी आवश्यकता नहीं थी। लैला मजनू, यूसूफ जुलेखा, शीरी-फरहाद आदि के स्थान पर वह उषा अनिरूद्ध, नल-दमयंती, रतनसेन पद्मावती आदि के प्रयोग कर सकती थी और उनके आधार पर इसे प्रेम, विरह, संयोग और वियोग के सुन्दर से सुन्दर भावों का भी चित्रण कर सकती थी। हिन्दी ने इन सब के सिवाय उस प्रेमाख्यान-परम्परा का भी सहारा लिया जो राजस्थान, पंजाब जैसे प्रान्तों में पुराने समय से चली आ रही थी। हिन्दी साहित्य के अंतर्गत यद्यपि सूफी मत-विषयक निबंधों का अभाव है और सूफियों के जीवन वृत्तों का फारसी या उर्दू तक की भांति भी अस्तित्व नहीं है फिर भी इसकी प्रेमगाथा का भंडार पूर्ण कहा जा सकता है और इसके फुटकर प्रेमकाव्य की भी कमी नहीं है।

सूफी प्रेमगाथा

सूफी प्रेमगाथा का आरम्भ

हिन्दी की सूफी प्रेमगाथाओं का आरंभ, सर्वप्रथम, किस समय में हुआ इसका ठीक-ठीक पता नहीं चलता। बहुत से लेखक इसे मलिक मुहम्मद जायसी (मृ.सं. 1599) की पद्मावत, नामक रचना में दिये गये निम्नलिखित विवरण के आधार पर निश्चित करना चाहते थे और इसके लिए उन्हें कुछ प्रमाण भी उपलब्ध हैं। जायसी की पंक्तियां इस प्रकार है-

विक्रम धंसा प्रेम के वारा। सपनावति कहं गएउ पतारा।
मधू पाछ मुगुधावति लागी। गगनपूर होइगा बैरागी।
राजकुंवर कंचनपुर गएउ। मिरगायति कहे जोगी भएऊ।
साधु कुंवर संडावत जोगू। मधुमालिति कर कीन्ह वियोगू।
प्रेमावति अहं सुरसरि साधा। ऊषा लगि अनिरूध वर बांधा।

जिनसे पता चलता है कि पद्मावत की रचना के समय तक वे कहानियां किसी न किसी रूप में अवश्य प्रचलित रही होगी, जिनकी ओर कवि ने इनके द्वारा संकेत किया है।[43] पंक्तियों का यह पाठ स्व0 शुक्ल जी द्वारा संपादित जायसी ग्रंथावली के अनुसार है।

भाषा एवं शैली

सूफी प्रेमगाथा के कवियों का भाषा पर पूरा अधिकार सर्वत्र नहीं लक्षित होता। जायसी, जानकवि, उसमान और नूर मुहम्मद इस विषय में अधिक सफल जान पड़ते हैं। जायसी द्वारा किया गया शुद्ध और मुहावरेदार

अवधी का प्रयोग तथा नूर मुहम्मद का संस्कृत शब्द भंडार पर अधिकार विशेष रूप से उल्लेखनीय है। जायसी की सफलता उनकी सादी एवं आलंकारिक भाषा के व्यवहार में भी पायी जाती है। कहीं-कहीं उसमें यदि अनजान का अल्हड़पन आ जाता है तो अन्यत्र एक मंजी हुई लेखनी द्वारा निकले हुए प्रौढ़ उद्‌गारों की बहार भी देखने को मिलती है। उसमान अपने भावों को यथावत् प्रकट करते समय कभी-कभी भोजपुरी की भी सहायता लेते दिख पड़ते है और एकाध स्थलों पर उन्होंने इसके प्रचलित मुहावरों के भी प्रयोग किये है, जिनसे उनकी उक्तियों में सरसता आ गयी है। जान कवि को अपनी भाषा पर इन सब से अधिक अधिकार दिख पड़ता है और उनकी रचनाओं को पढ़ते समय प्रतीत होता है कि वे एक सिद्धहस्त कवि है। नूर मुहम्मद भी एक पढ़े लिखे कवि हैं और उनके यमक बाहुल्य से जान पड़ता है कि उन्हें काव्य रचना का पूरा शौक था। इन कवियों द्वारा प्रयुक्त फारसी, अरबी एवं तुर्की आदि भाषा के शब्द और मुहावरें इनकी रचनाओं में स्वाभाविक जान पड़ते हैं।[44] इन कवियों में से मंझन का नाम विशेषतः उसके सहृदयता एवं वर्णनों की स्पष्टता और स्वाभाविकता के लिए लिया जा सकता है।

सूफी कवियों का रहस्यवाद

उपक्रम

सूफियों के दार्शनिक सिद्धांत और उनकी आध्यात्मिक साधना के संक्षिप्त परिचय द्वारा उनकी साधारण विचारधारा की ओर, इसके पहले ही, संकेत किया जा चुका है और उसकी एक रूपरेखा भी दी जा चुकी है।

प्रत्येक सूफी कवि के विषय में यह अनुमान कर लेना स्वाभाविक है कि वह अपने मत का अनुयायी होने के नाते उन सिद्धांतों में पूर्ण विश्वास करता होगा और उन साधनाओं में यथासंम्भव और यथाशक्ति अभ्यस्त भी होगा। कारण यह है कि कम से कम सूफी प्रेमगाथा के कवियों का यह चरमलक्ष्य रहा करता है कि मैं अपने मत के सार-स्वरूप प्रेमतत्व का कथारूपक द्वारा प्रतिपादन करूं और इस बात को वे कभी-कभी अपनी रचनाओं के अंत में स्पष्ट भी कर दिया करते हैं। अपनी रचना के अंतगर्त वे न तो किसी कोरे दार्शनिक की भांति तर्क-वितर्क ही करते है और न किसी धामिक साधक की भांति अपनी साधना का कोई क्रम ही ठहराते हैं।

सूफी प्रेमगाथा की विशेषता

सूफियों की प्रेमगाथाएं उक्त प्रकार के पांचों वर्गो में से किसी एक में भी पूर्णरूप से समाविष्ट नहीं की जा सकती। इन प्रेमगाथाओं के रचयिताओं ने उनमें से प्राय: सभी की विशेषताओं को कुछ दूरी तक अपनाया है और उन सबके अतिरिक्त अपनी एक पृथक विशेषता कथारूप की भी दे देते हैं जो फारसी जैसी विदेशी भाषाओं के साहितय द्वारा यहां पर सर्वप्रथम लायी गयी जान पड़ती है। और जिसमें सूफीमत के प्रेम संबंधी सिद्धांतों के प्रचार की ओर स्पष्ट संकेत लक्षित होता है। इन प्रेम गाथाओं में पौराणिक आख्यान केवल भारतीय स्रोतों से ही न आकर इस्लामी वशमी परंपरा के यसुफ जुलेखा जैसे उपाख्यानों के रूप में भी आते है और उनमें स्वभावत: एक भारतीय वांतावरण एवं संस्कृति का भी चित्रण पाया जाता है। इसी प्रकार इन सूफी कहानियों में कोरे चित्र दर्शन, स्वप्न-दर्शन वा सौंदर्य कथन के ही

आधार पर उत्पन्न अकृत्रिम प्रेम की एक ऐसी झलक मिल जाया करती है जो उपर्युक्त लोक गीतों की एक विशेषता है और पारवारिक बाधादि का चित्रण भी प्रकट उन्हीं के अनुकूल प्रकट होता है। सूफी प्रेमगाथा के कवियों ने रतनसेन एवं पद्मावती जैसे ऐतिहासिक आधारों को लेकर भी कभी-कभी अपनी रचनाएं प्रस्तुत की हैं और यथास्थल उनमें वीर रस का भी समावेश किया है।[45] इनकी कहानियों में इसी प्रकार काल्पनिक अप्सराओं, उनके आश्चर्यजनक कृत्य तथा चमत्कारों की भी भरमार पायी जाती है। वैज्ञानिक देशकाल का बहुत कम विचार रहता है। सूफी प्रेमगाथाओं के कवियों का मूल आदर्श फारसी की मसनवी वाली प्रेम कहानियां ही रहती रही हैं, किन्तु इन्हें उन्होंने अपने ढंग से ही रचा है।

प्रेमगाथा की पंरपरा

उपर्युक्त पांच प्रकार की प्रेमगाथाओं में से अधिकशं की परंपरा आज तक प्राय: लुप्त सी हो गयी है और उनका न तो वह प्राचीन रूप कहीं दिख पड़ता है और न इस समय उनका औचित्य ही स्वीकार किया जाता हे। उनमें से कुछ का महत्व आज कल केवल एक प्राचीन वस्तु की भांति कौतूहल और मनोरंजन की सामग्री बनने में ही रह गया है। उनमे से केवल कुछ पौराणिक और ऐतिहासिक कहानियां ही ऐसी रह गयी हैं जिन्हें आधुनिक कवि कभी-कभी अपने कथानक बना लेते हैं।[46]

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी रचना पद्मावत में बतलाया है कि उन्होंने उसे जायस में आकर लिखा था। परन्तु किस अन्य स्थान से वे

वहां पर आये थे इसकी ओर वे कोई संकेत कहीं पर देते हुए नहीं जान पड़ते। जायस को कुछ स्थल पर उन्होंने धर्मस्थान भी कहा है। परन्तु अपनी आखिरी कलाम नाम की रचना में उन्होंने जायस को अपना निजी स्थान भी बतलाया है और उसका आदि नाम उदयान का उल्लेख कर उसके पूर्व इतिहास का परिचय देने की भी चेष्टा की है। इस प्रकार उस नगर के प्रति उनके आकर्षण एवं उनके नाम मलिक मुहम्मद के आगे जुड़े हुए जायसी शब्द से भी उनका उसके साथ घनिष्ट संबंध जान पड़ता है। उनकी पंक्तियां ये हैं-

जयस नगर धरम अस्थानू। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू।

(पद्मावत)[47]

जायस नगर मोर अस्थानू। नगर क नांव आदि उदयानू।

(आखिरी कलाम)[48]

जायसी ने अपनी पद्मावत में उसके प्रारंभिक वचनों के लिखने का समय हिजरी 927 दिया है जो सं0 1578 वि0 में पड़ता है। परन्तु इस रचना के शेष अंश कब लिखे गए इस बात की चर्चा करते हुए वे नहीं दीख पड़ते। उन्होंने उस ग्रंथ में शाहेवक्त के रूप में शेरशाह का नाम लेकर उसे तत्कालीन दिल्ली सुलतान भी कहा है। उसके प्रताप, शौर्य एवं दानशीलता की प्रशंसा की है जिससे अनुमान किया जा सकता है कि उसकी रचना होने के समय दिल्ली का बादशाह शेरशाह था। इतिहास से पता चलता है कि शेरशाह ने हुमायूं को हराकर सं0 1597 से लेकर सं. 1602 तक राज्य किया था और यह काल उक्त सं0 1578 से आगे चला आता है। अतएव कुछ लोगों ने अनुमान किया है कि पदुमावत की प्रारंभिक बातें लिखकर उन्होंने छोड़ दिया

था और बहुत पीछे उसे पूरा किया। एक अन्य प्रकार की कल्पना यह भी की जाती है कि जायसी की पंक्ति में, अपितु है और हिजरी सन् 947 वह समय अर्थात् सं.1597 भी पड़ जाता है जब शेरशाह सूरी का राज्यकाल आरंभ हुआ था। परन्तु इस बात पर विचार करते समय उस पंक्ति के पाठ भेद का प्रश्न उठ खड़ा होता है जिसका समाधान बिना किसी मूल प्रमाणित प्रति के नहीं हो सकता। सन नव सै सत्ताइस के पक्ष में इतना और कहा जा सकता है कि सं. 1707 के लगभग वर्तमान आलाओल नामक एक बंगला कवि ने भी पद्मावत का अनुवाद करते समय, इसी पाठ को ठीक माना था और उसने स्पष्ट शब्दों में कहा था शेख महम्मद जति जखन रचिल ग्रन्थ संख्या सप्तविंश नवशत, अर्थात् शेख मुहम्मद ने जिस समय इस ग्रंथ पद्मावत की रचना की थी उसकी संख्या हिजरी सन् के अनुसार सप्तदिश नवशत वा 927 है। पद्मावत की उपरोक्त पंक्तियां इस प्रकार हैं-

सन नवसै सत्ताइस अहा। वाया अरंभ बैन कवि कहा।

तथा,

सेरसाहि देहली सुलतानू। चारिउ खंड तपै जस भानू।
ओही छाज छात औ पाटा। सब राजै भुई धरा ललाटा।
जाति सूर ओ खांडे सूरा। औ बुधिवंत सवै गुन पूरा।
सेरसाहि सरि पूजन कोऊ। समुद सुमेर भंडारी दोऊ।

इत्यादि।[49]

जायसी ने अपनी रचना आखिरी कलाम का निर्माण काल हि. सन् 936 दिया है जो सं. 1586 पड़ता है। उस समय बादशाह बाबर (रा.का.सं.

का अभाव था। उपर्युक्त विवेचन के आधार पर निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि प्रेमाख्यानों द्वारा धर्मग्रन्थों के संदर्भ में तत्कालीन आध्यात्मिक जीवन के दो प्रमुख तथ्य दिखाई देते है। पहला धर्मग्रन्थों या शास्त्रों के अनुसार आध्यात्मिक जीवन के सम्यक संचालन की आवश्यकता का अनुभव उस युग की जनता करती थी। दूसरा उनसे संबधित अंधविश्वास की प्रतिष्ठा इस तरह हो चुकी थी कि उनका कहना तथा सुनना बाह्याचार के रूप में प्रतिष्ठित हो चला था, जिसके कारण जन-सामान्य मात्र उतने तक ही अपने कर्तव्य को समझने लगा।

ब्राहमण

ब्राहमण के संबंध में कहा गया है कि वह ज्ञानशक्ति प्रधान विचारशील प्राणी है। जो अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को ज्ञान-विज्ञान की खोज में ही नहीं लगाता बल्कि अपने आदर्श जीवन के चरम लक्ष्य मुक्ति के लिए आवश्यक ब्रहमज्ञान की प्राप्ति को दृष्टि में रखते हुए प्रशस्त आचरण का विकास करता जाता है। जायसी ने ब्राहमण जाति के लिए बाभन और विप्र शब्द का प्रयोग किया है। कुंभलनेर के राजा देवपाल की दूती पद्मावती से कहती है कि, मै ब्राहमणी हूं और मेरा नाम कुमुदिनी है। जायसी ने ब्राहमणों की विभिन्न उपाधियों के वर्णन में दूबे और पाण्डेय का उल्लेख किया है। दूती कहती है कि मेरे पिता का नाम बेनी दूबे है।[15] इसी प्रकार कवि मंझन कृत मधुमालती में भी एक स्थल पर ब्राहमणों की उपाधि पाण्डेय की चर्चा की गई है। इन रचनाओं में आये हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है कि उस युग में भी उन्हें सामाजिक महत्व प्राप्त था तथा राजा और प्रजा दोनों उनका सम्मान

करते थे-

निसि बासर सुख के भोगू। राजा कुंअर मे आद संजोगू।
पंचये बरिस धरा भुइ पाउं। पंडित के बेसारेउ राउ।।
दुस्व कोटि दुइ आगे राखा। तापर बिनती राजे भाया।
मोहि तोसों न लागे खोरी। दिन-दिन करव में सेवा तोरी।।
जैस मोर तैसन सुख तोरा। विद्या देत न लाये भोरा।।

किन्तु यह केवल उनके शास्त्र सम्मत मार्ग पर चलने, पवित्र जीवन व्यतीत करने एवं उनकी विद्वता के कारण था। किन्तु विद्वान होने पर भी शास्त्रविरूद्व आचरण करने तथा वाममार्गीय साधना में लिप्त होने की अवस्था में उनके प्रति राजा तथा प्रजा दोनों में हेय भाव पैदा हो जाता था। जैसा कि पद्मावत के राघव चेतन दिल्ली गमन खंड से संबंधित प्रसंग से प्रकट हो जाता है।[16]

ब्राहमणों के कर्तव्य

ब्राह्मणों के प्रमुख कर्तव्यों में पुरोहिताई करना, दान लेना, भिक्षा माँगना, आशीर्वाद देना, व्यापार करना, ज्योतिष विचार, जातकर्म, छठी, विवाहादि संस्कार करवाना, तथा विद्या पढ़ाने का उल्लेख प्राप्त होता है। देवपाल की दूती पद्मावती से कहती है कि मैं ब्राहमणी हूं। मेरे पिता का नाम बेनी दूबे था, वे राजा गन्धर्व सेन की पुरोहिताई किया करते थे-

नाउ पिता कर दूबे बेनी। सदा पुरोहित गंधुप सेनी।

\- पद्मावत, 587/6[17]

देंशयात्रा खण्ड में समुद्र के द्वारा ब्राहमण का रूप धारण कर

1583-1587) का राज्य था और कवि ने उसके पराक्रक की भी चर्चा, उसके नामोल्लेख करके की है। जान पड़ता है कि जायसी ने पद्मावत की रचना आरंभ करके छोड़ देने पर, आखिरी कलाम लिखा था और आगे चलकर उस अधूरी रचना को भी पूरा कर दिया था। उनकी उपर्युक्त जायस नगर धरम अस्थान्। तहां आइ कवि कीन्ह बखानू के तहां आइ से पता चलता है कि वे कहीं बाहर भी गए थे। संभव है कि उन्होंने आखिरी कलाम की रचना कहीं अन्यत्र की हो और इसी कारण उसमें मोर अस्थान् अर्थात् मेरा निवासस्थान जायसनगर है कहकर अपना परिचय दिया हो और उसके अनन्तर जायस लौकर उन्होंने पद्मावत की रचना समाप्त की हो। पद्मावत की रचना समाप्त करते समय तक जायसी बहुत वृद्ध हो गये थे जैसा कि उन्होंने उसके अन्त में स्वयं भी बहुत स्पष्ट कह दिया है। परन्तु आखिरी कलाम के अन्तर्गत उन्होंने अपने जन्मकाल के समय होने वाले भूकंप आदि का भी उल्लेख किया है।

नोसै बरस छतीस जो भए। तब एहि कथाक आखर कहे।
बाबर साह छत्रपति राजा। राजपाट उन कहं विधि छाजा।

- आखिरी कलाम

मुहमद विरिध वैस जो भई। जोवन हुत सो अवस्था गई।
विरिध जो सोस डोलावै, सीस धुनै तेहि रीस।
बूढ़ी आऊ होहु तुम्ह, केइ यह दीन्ह असीम।

आखिरी कलाम के अन्तर्गत वे अपने जन्म के समयादि के विषय में इस प्रकार कहते हैं-

भा औतार मोर नव सदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी।

आवज उधत-चार विधि ठाना। भा भूकंप जगत अकुलाना।

जायस नगर मोर अस्थान्। नगर के नांव आदि उदयानू।

तहां दिवस दस पहुने आएउं। भा वैराग बहुत सुख पाएउं।[50]

अर्थात् मेरा जन्म नयी शताब्दी में हुआ था और मैंने काव्य रचना का आरंभ तीस वर्ष का हो जाने पर किया था। मेरे जन्म के समय उपद्रव हुआ था और एक ऐसा भूकम्प आया था जिसके कारण संसार भयभीत हो गया था। मेरा स्थान जायस नगर है जिसका आदि नाम उदयान था। जहां पर मैं कुछ दिनों के लिए अतिथि रूप में आया। वैराग्य हो जाने पर मुझे बड़ा सुख मिला। उपर्युक्त नवसदी का अर्थ लोग हिजरी 900 लगाते हैं और कहते हैं कि तदनुसार वे सन् 1494ई.- सं. 1551 में जन्मे थे।[51] परन्तु जहां तक पता चलता है सदी एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ सौ वर्षों का समूह अथवा शताब्दी ही हुआ करता है। इस प्रकार नव सदी से अभिप्राय भी, प्रचलित गणना पद्धति के अनुसार हि. सन् 900 के पहले का समय होना चाहिए। डा. कुलश्रेष्ठ ने यहां पर नव शब्द का अर्थ नवीन बतलाकर जायसी के जन्मकाल सं. हि.सन् 906 निश्चित कर दिया है और वे इसे इस बात से भी प्रमाणित करना चाहते हैं कि आखिरी कलाम का रचना काल भी इस प्रकार उनके 30वें वर्ष में पड़ता है। परन्तु यदि पद्मावत का रचना काल हि.सन् 927 में सिद्ध हो जाता है तो उनका यह अनुमान गलत कहलायेगा। तीस बरिस ऊपर कवि बदी का स्वाभाविक अर्थ भी तीस वर्ष की अवस्था व्यतीत होने पर ही हो सकता है। आखिरी कलाम की ही रचना का समय प्रकट करना इन पंक्तियों

के लिखने का अभिप्राय नहीं जान पड़ता। भा औतार मोर नवसदी। तीस बरिस ऊपर कवि बदी एक महत्वपूर्ण पंक्ति है जिसका वास्तविक रहस्य जायकी की अन्य रचनाओं के प्रकाश में आने पर, कदाचित् प्रकट हो सके।[52]

जायसी ने अपने चार दोस्तों के भी नाम अपनी पद्मावत में लिये हैं और उन्हें यूसुफ, सालार कादिम, सलोने मियां और बड़े शेख कहा है। ये चारों ही जायस नगर के रहने वाले बतलाये जाते हैं। इनमें से दो एक के वंशज भी वहां अभी तक हैं। स्वयं जायसी के किसी वंशज का पता नहीं चलता। कहा जाता है कि इनके जो पुत्र थे किसी मकान से दबकर मर गये थे। इस घटना ने ही उन्हें कदाचित और भी विरक्त बना दिया और वे अपने जीवन के अंतिम दिनों में गृहस्थी छोड़कर पूरे फकीर बन गए। कहा जाता है कि कुछ दिनों तक वे अमेठी से कुछी दूरी पर विद्यमान एक जंगल में भी रहने लगे थे जहां पर उनका देहांत हो गया।[53] उनकी मृत्यु का संवत् प्रायः 1599 बतलाया गया है जो रिज्जब सन् 949 हिजरी, के रूप में किसी काजी नसरूदीन हुसैन जायस की याददाश्त मे दर्ज है और जो, इसी कारण बहुत कुछ प्रामणिक भी समझा जा सकता है। कवि जायसी, अवस्था में, अत्यंत वृद्ध होकर मरे होगें और यह संवत् उनके जन्म संवत् को 1551 मान लेने पर, उनकी पूरी आयु का केवल 48 वर्ष ही होना सिद्ध करता है।[54] अतएव संभव है कि वे नवसदी के अनुसार वस्तुतः नवी शताब्दी में अर्थात् हि.सन् 900 के पहले अवश्य उत्पन्न हुए हों। अपनी काव्य रचनाओं (जिनकी संख्या 5 से भी अधिक बतलायी जाती है) का आरंभ तीस वर्ष पर किये हों और सं. 1599 में मर गए हों। पद्मावत इस प्रकार उनकी अंतिम रचना ठहरायी जा सकती

है। क्योंकि उसकी समाप्ति के समय तक शेरशाह का राज्यकाल सं.1597 से आरंभ हो चुका था और वे अपनी वृद्धावस्था के कारण मीचु अर्थात् मृत्यु की चिंता तक करने लग गए थे।

मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने पीर के संबंध में लिखते हुए कहा है,

सैयद असरफ पीर पियारा। जेहि मोहि पंथ दीन्ह उजियारा।
लेसा हियें प्रेम कर दीया। उठी जोति भा निरमल हीया।

- प्रदुमावति[55]

तथा

मानिक एक पाएउं उजियारा। सैयद असरफ पीर पियारा।
जहांगीर चिश्ती निरमरा। कुल जगमह दीपक विधि धरा।

- आखिरी कलाम[56]

इन पंक्तियों से पता चलता है कि उन्होंने सैयद अशरफ नामक सूफी फकीर के ज्ञान-प्रकाश में अथवा उससे प्रकाशित उनके किसी वंश द्वारा दीक्षा ली थी और वे लोग चिश्ती संप्रदाय के अनुयायी थे। परन्तु कुछ अन्य पंक्तियों के आधार पर यह भी अनुमान किया जाता है कि वे मुहीउदीन नामक किसी अन्य सूफी के भी मुरीद रह चुके होगें। जैसे,

गुरू मोहदी खेवक मैं सेवा। चलै उताइल जेहिकर खेवा।

- पदुमावति[57]

तथा

पा-पाएउं गु मोहिदी मीठा। मिला पंथ सो दरसन दीठा।

\- अखरावट

इन दोनों सूफी पीरों में से सैयद अशरफ संभवतः जायस के ही निवासी थे। ये उनके वंशज शाह मुबारक बोदले के मुरीद थे तथा मुहीउदीन कालपी के रहने वाले थे। अतएव, हो सकता है कि पहले पहल वे सैयद अशरफ के ही कुल में दीक्षित हुए हों और पीछे कालपी जाकर शेख मुहीउदीन के सत्संग में भी रहने लग गए हों। इस दूहरे पीर की उन्होंने कुछ विस्तृत गुरूपरंपरा भी बतलाई है। जिसके आधार पर वे प्रसिद्ध निजामुदीन औलिया के वंशज ठहरते हैं।[58] निजामुउदीन औलिया (सं.1295-1381) ख्वाजा मुईनुदीन चिश्ती (सं.1199-1293) के प्रशिष्य बाबा फरीद शकरगंज (सं.1230-1325) के प्रधान शिष्य थे और अमीर खुसरों (सं.1312-1381) के गुरू भी थे। इस प्रकार जायसी का सबंध अति प्रसिद्ध सूफी घराने से रह चुका था।

मलिक मुहम्मद जायसी की रचना पद्मावत सूफी प्रेमगाथाओं में सर्वश्रेष्ठ समझी जाती है। जायसी के समय तक इस प्रकार के काव्य साहित्य का पूर्ण विकास नहीं हो पाया था और इसके आदर्श केवल इने गिने ही थे। जायसी ने इस नवीन धारा को अपनाकर इसके लिए अपनी एक सुन्दर भेंट प्रस्तुत की। वे इस प्रकार, आगे के ऐसे सूफी कवियों के लिए आदर्श बन गए। जायसी की पदुमावती का कथानक शुद्ध भारतीय पात्रों को लेकर भारतीय वातावरण में आगे बढ़ता है। इसके घटनाक्षेत्र अलौकिक पात्रों के क्रियाकलाप, नायक-नायिका के आमोद-प्रमोद एवं विरह संताप आदि प्रायः सभी बातें भारतीय हैं।[59] यहां तक कि सिंहल द्वीप में भी जो कुछ घटित होता है वह भारतीय आदर्शो से भिन्न नहीं है।

फिर भी जायसी एक सूफी कवि हैं और अपनी इस रचना को भारतीय सांचे में ढालते समय भी वे अपने मूल उद्देश्य को नहीं भूलते। जहां कहीं भी अवसर पाते हैं वहां अपने इस्लाम धर्म की प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने के प्रयत्न करते हैं। जायसी हिन्दू धर्म एवं संस्कृति की बातों से भली-भांति परिचित हैं और कभी-कभी उनके विवरण तक दे डालते हैं। किन्तु इस रचना को ध्यानपूर्वक पढ़ जाने पर पता चलता है कि इसके लिए उनके ज्ञान की प्रशंसा भले की जाय, उनके प्रति इन्हें श्रद्धा नहीं है। जायसी की यह रचना एक कथारूपक है जिसका अप्रस्तुत बातों के साथ अक्षरशः मेल खाना संभव नहीं है। जायसी ऐसा करने में सफल भी नही कहे जा सकते। किन्तु इस प्रकार की त्रुटि उस मूल आदर्श का ही परिणाम है जिसके अनुसार ये सूफी कवि इस ओर अग्रसर होते हैं।[60]

पद्मावत

(प्रेम खंड)

सुनतहि राजा गा मुरछाई। जानौं लहरि सु ज कै आई।

प्रेमघाव दुख जान न कोई। जेहि लागै जानै पै सोई।

परा सो पेम समुद्र अपारा। लहरहि लहर होई विसेमारा।

विरह भीर होइ भावरि देई। खिन-खिन जीउ हिलोरा लेई।

खिनहि उसास बूड़ि निज जाई। खिनहि उठै निसै बौराई।

खिनहि पीत खिन होइ मुख सेता। खिनइ चेत खिन होइ अचेता।

कठिन मरन तें प्रेम वेवस्था। ना जिउ जियै न दसवं अवस्था।

जनु लेनिहार न लेहि जिउ, हरहिं तरासहि ताहि।

एतनै बोल आव मुख, करै तराहि तराहि।

जहं लगि कुटुंब लोग ओ नेगी। राजा राय आये सब बेगी।

जावत गुनी गारूडी आए। ओझा वेद समान बोलाए।

चरिचहि चेष्टा परिखहि नारी। नियर नाहिं ओषद तहंवारी।

राजहिं आहि लखन कै करा। सकति बात मोहा है परा।

नहिं सो राम हनिवंत बड़ि दूरी। को लेइ आव संजीवन मूरी।[61]

अध्याय चतुर्थ

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. श्रीमद्भगवदगीता, अध्याय 2, श्लोक 22
2. वही, अध्याय 2, श्लोक 22
3. अथर्ववेद, 19/67.68
4. जायसी- पद्मावत (सं. रामचन्द्र शुक्ल),16 वां संस्करण, बनिजारा खण्ड, पृ. 25
5. मंझन मधुमालती (सं.डा. शिवगोपाल मिश्र), प्रथम संस्करण, मधुमालती जागी खण्ड, दो 125, पृ. 40
6. मंझन मधुमालती (सं.डा. शिवगोपाल मिश्र), प्रथम संस्करण, मधुमालती जागी खण्ड, दोहा110, पृ. 36
7. जायसी पद्मावत (सं. रामचन्द्र शुक्ल),16 वां संस्करण, बोहित खण्ड, पृ. 50
8. वही, मंडपगमन खंड, पृ. 58
9. मंझन मधुमालती (सं.डा. शिवगोपाल मिश्र), प्रथम संस्करण, पातिशाह की सिफति खंड, पृ. 9
10. मंझन मधुमालती (सं.डा. शिवगोपाल मिश्र), प्रथम संस्करण, जागीखंड, पृ. 35
11. नूर मुहम्मद, अनुराग बांसुरी, पृ. 158
12. डा. रामकुमार वर्मा, हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 312

13. डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, पद्मावत, भाष्य, पृ. 11, टिप्पणी, क्रमांक 5
14. जायसी, चित्ररेखा (संपा. शिवसहाय पाठक), प्रथम सं., मूल पाठ, पृ. 86
15. अभिन एक हुत नष्ट भिखारी। - पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल)
16. विप्र असीसि विनति औधारा। बनिजारा खण्ड, दोहा 74/2 तथा 80/2
17. हों बभिनि जेहि कुमुदिनी नाउं- पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल) देवपाल दूती खण्ड, दोहा 587/5
18. नाउं पिता कर दूबे वेनी, वही 587/6
19. तौ हरिगन पाडे हकराये, कहा देखि गनि रासि मेराये।
    मंझन मधुमालती (सं. शिवगोपाल मिश्र), विक्रम चले पेमा पास खंड, पृ. 129, दोहा 438
20. द्रष्टव्य, पदमावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), राघव चेतन देश निकाला खण्ड, दोहा 446
21. द्रष्टव्य पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 52/2-9, दोहा 53/1, जन्मखण्ड, दोहा 73/2-9, रत्नसेन जन्मखण्ड तथा दोहा 127 जोगीखंड

22. चौदह बरिस एगारस मासा। नवयें दिन पुनिव प्रगासा।

जन्म सूर सतएं ससि तारा, मिले सजन कोइ पेम पिआरा

बुधवार बीफे की राती, उपजे प्रेम कुंअर के छाती।

मंझन मधुमालती (सं. शिवगोपाल मिश्र), पृ. 17-18

जन्मोसी खंड तथा पृ. 129, विक्रम चले पेमा पास खंड

23. जायसी, चित्ररेखा (सं. शिवसहाय पाठक), प्र.सं. पृ. 88 तथा 90

24. मंझन मधुमालती (सं. शिवगोपाल मिश्र), पृ. 19 जन्मोती खण्ड तथा पृ. 132, ब्याह खंड

25. पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 285/7, रत्नसेन पद्मावती विवाह खंड

26. पुनि पंडित कुंअर मन लावा, एक बचन अर्थ पढ़ावा।

जो अस बोल कुंअर औरावा चित्र उरेहे अर्थ बुझावा।

जो अस बोल कुंअर औरावा चित्र उरेहे अर्थ बुझावा।

थोरे दिन भा कुंअर सयाना, बेद भेद बहु भांति बखाना।

मंझन मधुमालती, पृ. 19, जन्मोती खंड

27. उसमान, चित्रावली (सं. जगमोहन वर्मा), दोहा 55, जन्मखण्ड, पृ. 14

28. जायसी चित्ररेखा (सं. शिवसहाय पाठक), प्रथम संसकरण, पृ. 86

29. पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 39/3, सिंहल द्वीप वर्णन खंड

30. उसमान चित्रावली (सं. जगमोहन वर्मा), द्वितीय संस्करण, गाजीपुर वर्णन खंड, दोहा 24, पृ. 7

31. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 456, राघवचेतन देश निकाला खंड

32. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 458/7, राघव चेतन, देश निकाला खंड

33. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), गोरा बादल युद्ध खंड, दोहा 634/8, 9

34. उसमान चित्रावली (सं. जगमोहन वर्मा), दोहा 25/3, गाजीपुर वर्णन खंड, पृ. 7

35. पद्मावत वही, दोहा 503/1-4, बादशाह चढ़ाई खंड

36. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 74/1, बनिजारा खंड

37. उसमान चित्रावली (सं. जगमोहन वर्मा), दोहा 26/4, गाजीपुर वर्णन खंड

38. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 218/1, राजगढ़ छेका खंड

39. उसमान चित्रावली (सं. जगमोहन वर्मा), दोहा 26/5, गाजीपुर वर्णन खंड

40. शेख रहीम, भाषा प्रेमरस (सं. उदयशंकरशास्त्री), छंद 38

41. शेख रहीम, भाषा प्रेमरस (सं. उदयशंकर शास्त्री), छंद 38

42. डा. कन्हैया सिंह, हिन्दी सूफी काव्य में हिन्दू संस्कृति का चित्रण और निरूपण, प्रथम संस्करण, पृ. 314

43. माता प्रसाद पद्मावत (टिप्पणी), छंद 185

44. जायसी, पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), दोहा 185, बसन्त खंड

45. नूर मुहम्मद, इन्द्रावती, पृ. 53

46. मंझन मधुमालती (सं. शिवगोपाल मिश्र), दोहा 443, ब्याह खंड

47. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), छंद सं. 434/2, नागमती पद्मावती विवाद खंड

48. कासिमशाह, हंसजवाहिर, पृ. 84

49. दाउद, चंदायन (सं. परमेश्वरी लाल गुप्त), छंद सं. 26, 90

50. नूर मुहम्मद, अनुराग चौधरी (सं. रामचन्द्र शुक्ल एवं चन्द्रबली पाण्डेय), छंद सं. 6, 7 स्रोत अनुराग खंड

51. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), छंद सं. 444, वही खंड

52. दाउद, चंदायन (सं. परमेश्वरी लाल गुप्त), छंद सं. 447

53. कुतुबन मृगावती (सं.शिवगोपाल मिश्र), छंद सं. 25

54. कुतुबन मृगावती (सं. शिवगोपाल मिश्र), छंद सं. 357, 358, 359

55. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), छंद सं. 650/5, 6, राजा रत्नसेन बैकुण्ठवास खंड

56. मंझन मधुमालती (शिवगोपाल मिश्र), जन्मोती खंड, छंद सं. 57, पृ. 20

57. पद्मावती नागमति सतिखण्ड छन्द सं0-650/5, 6

58. उसमान चित्रावली (सं. जगमोहन वर्मा), अजगर खंड, छंद 301/6, 7

59. कासिमशाह हंस जवाहिर, पृ. 124

60. जायसी पद्मावत (सं. वासुदेव शरण अग्रवाल), गन्धर्व सेन मंत्री खंड दोहा 256-258

60. नूर मुहम्मद इन्द्रावती (सं. श्यामसुन्दर दास), पृ. 17

61. नागमति पद्मावती, प्रेमखण्ड दोहा, पृ0 445/9

षष्ठम अध्याय

जायसी के साहित्य पर आधारित सांस्कृतिक दशा

अध्याय–6

जायसी के साहित्य पर आधारित सांस्कृतिक दशा

भइ ओनंत पदुमावति वारी। धज छोरे सब करी संवारी।
जग वैधा तेई अंग सुवासा। भंवर आई लुबुधे चहुं पासा।[1]

इसी प्रकार मौलाना दाऊद कृत 'चंदायन' की नायिका चांद और बावन का विवाह बेमेल ढंग से होता है। चांद सयानी हो चली है, बावन अभी बालक है।[2] पर चांद की अवस्था केवल बारह वर्ष है और वह युवती कही गयी है। उसे काम सता रहा है। उसके उरोजों में उभार आ गया है। अपने अल्पवय पति को देखकर वह शोकमग्न रहती है–

बरथ दुआदस भयउ बियाहू। चांदा तरे सोक जस नाहू।
उनज जोबन भइ चांदा रानी। नाहं छोट ओ अंखियो कानी।
जाकहिं पिउहर ओले लोगू। सो वे चांद न दन्हिों भोगू।[3]

इन सभी निर्देशों द्वारा यह प्रतीत होता है कि समकालीन सामाजिक जीवन में हिन्दू समाज के अंतगर्त अल्पवय में विवाह की प्रथा थी तथा विवाह योग्य कन्या को यथाशीघ्र उपयुक्त वर को सौंप देना वे अपना उत्तरदायित्व समझते थे जिसका चित्रण इन सूफी प्रेमाख्यानों में दृष्टिगोचर होता है।

पारिवारिक जीवन के उत्सव संस्कार तथा उनसे संबंधित लोकरीतियां-

भारतीय पारिवारिक जीवन के बीच जहां दाम्पत्य भावना के विशद चित्र मिलते हैं, वहां व्यक्ति का सन्तानवान होना भी महत्वपूर्ण समझा जाता था। उसके अभाव में एक प्रकार से पारिवारिक अपूर्णता मानी जाती थी। अतः पुत्र अथवा कन्या से संबंधित कुछ लोकरीतियां तथा संस्कारों का मनाया जाना आश्चर्य का विषय नहीं है। इन प्रेमाख्यानों में सबसे अधिक विवरण विवाह संस्कार से संबंधित है। साथ ही पुत्र या पुत्री के जन्मोत्सव, छठी-बरही व नामकरण आदि से संबंधित उत्सवों के भी उल्लेख मिलते हैं।

जन्मोत्सव

पुत्र या कन्या के जन्म के समय होनेवाली आनन्द बधाइयों का भलीभांति परिचय इन प्रेमाख्यानों में मिलता है जिनमें परिवार के अन्तर्गत सामूहिक रूप से आनन्दोत्सव मनाया जाता था[1]-

क. बाजइ अनंद उछाह बधाए। केतिक गुनी पोथि ले आए।

ख. राजमंदिल पूत अवतारा। बाज बधाइ अनंद बहु करा।

ग. जाचक लोक मुनीजन आए। औ आनन्द के बाज बधाए।

संतानोत्पत्ति के मांगलिक उत्सव में माता-पिता प्रसन्नता से दान लुटाते थे। कुतुबन कृत 'मृगावती' में इस सुअवसर पर अद्भूत दान का वर्णन मिलता है। राजा ने भण्डार खोलकर दान देना प्रारंभ किया। फलस्वरूप दान प्राप्त करने वालों की दरिद्रता दूर हो गयी। भूखों को भोजन, प्यासों को पानी एवं नेगियों को कपड़ा दान दिया गया।[2] इसी प्रकार मंझन की 'मधुमालती' में भी मनोहर के जन्म पर आनन्द बधाइयां बजीं। प्रजा को वस्त्र दान दिये

गये। किसानों से एक वर्ष की लगान वसूली नहीं की गई। सजावट में सारा हाट रेशमी वस्त्रों से छा गया। कस्तूरी, अगर और अर्पूर की सुगंधि से सम्पूर्ण वातावरण गूंज गया-

राजा ग्रिह सुनि हर्ष बधावा। सब घर तरि पटोर पटावा।
ओ जत नग्र अमनेक छाये। सब जन पहिराउरि पाये।
देस किसान जहां लगु आहे। ते सब एक बरिस न उगाहे।[4]

हिन्दुओं में पुत्र या पुत्री के जन्मोत्सव आदि मांगलिक अवसरों पर पौनियों को वस्त्र देने, ब्राहमणों तथा भाट और भिखारियों को दान देने की परम्परा बड़ी प्राचीन है। कवि उसमान ने भी अपनी कृति 'चित्रावली' में इसका सुन्दर चित्रण किया है-

सोन रूप नग गाइ भुई, पाटंबर गज धोर।
राजा खोलि भण्डार सब, देत न लावे भोर।[5]

<u>छठी</u>

जन्मोत्सव के पश्चात जन्म के छठवीं रात्रि को छठी का हर्षोत्सव मनाया जाता था जिसमें रात्रि भर आनन्द क्रीड़ा हुआ करती थी। भारतीय लोकजीवन में यह उत्सव अत्यन्त प्रचलित है। उसे बड़े उत्साह के साथ सम्पन्न किया जाता है। छठी की रात्रि के दूसरे दिन ज्योतिथियों को नवजात शिशु के जन्म विचार के लिए बुलाया जाता था जिसमें वे जन्मलग्न के अनुसार भविष्य कथन, राशि का निश्चय, नामकरण तथा जन्मपत्री लेखन करते थे-

भइ छठि राति सुख मानी। रहस कोई सौ रैनि बिहानी
भा बिहान पंडित सब आए। काढ़ि पुरान जनम अरथाए।

कन्या रासि उदो जग किया। पद्मावति नाउं जिस दिया।

अही जनम पत्री सो लिखी। दे असीस बहुरे जोतिषी।[6]

मंझन की मधुमालती में इस अवसर पर छठी के विशेष वाद्यों के बजने, घर-घर में बधाइयां बजने, छत्तीस पौनियों द्वारा बधाई देने तथा श्रृंगार करके युवतियों द्वारा मांगलिक गान गाने का उल्लेख मिलता है-

छठी राति छठी बाजन बाजे। घर-घर नग्र बधावा साजे।

सब घर नग्र उछाह कल्याना। खोरि खोरि आनंद निसाना।

राजा ग्रिह सुनि सब आये। करें छतीसों पौनि बधाये।

इसी प्रकार उसमान कृत चित्रावली में भी छठी के अवसर पर बाजों के बजने और स्त्रियों के गायन में सारी रात्रि बिताने का उल्लेख मिलता है-

छठी राति बाजन गहगहे। बाजत औ सब गाजत रहे।

पुरूषन्ह इन्द्रसभा जनु सारा। तरूनिन्ह गाइ कीन्ह भिनुसारा।[7]

जन्म-नक्षत्र के अनुसार सन्तान का नामकरण किया जाता था जो कि नामकरण संस्कार का ही एक रूप प्रतीत होता है। इस प्रसंग पर जन्म लग्न के साथ ही सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार भविष्य कथन का उल्लेख मिलता है-

पंडित मुनि सामुद्रिक देसहिं। देखि रूप और लगन बिसेखहिं।

कहना न होगा कि पुत्रके जन्म पर आनन्द बधाइयां, छठी तथा नामकरण आदि के संस्कार तथा उनसे संबंधित लोकरीतियां आज के वर्तमान हिन्दू समाज में भी लगभग इसी रूप में प्रचलित हैं।

बरही

पुत्र जन्म के बारहवें दिन बरही मनायी जाती है। सूफी प्रेमाख्यानों में

इस उत्सव का भी उल्लेख मिलता है। कवि उसमान ने अपनी रचना चित्रावली में बरही का उल्लेख न करके बारहवें दिन भोज का वर्णन किया है

बरहें दिन सब कुटुंब जेंवावा। घर घरहीं से नेवति पठावा।
अमिरित पांच रसोई साजी। सुनतेहि नाउं भूख तिन भागी।

इसी प्रकार मधुमालती में भी बरही के अवसर पर भोज का ही विशेष वर्णन हुआ है-

बरहें दिन बरहें भौ भारी। नग्र लोग जो नेवता झारी।
दुखी लोग बेसाइ जेंवावा। अमनैकन्ह घर घोर पठावा।[8]

विवाह

भारतीय समाज जीवन के बीच विवाह को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। विवाह जीवन का संस्कार होने के साथ ही साथ एक प्रकार का पारिवारिक उत्सव भी है तथा इसकी सुदृढ़ नींव के ऊपर गृहस्थ जीवन का आरम्भ होता है। विवाह के पूर्व से लेकर इसके बाद की अनेक लोकरीतियां भारतीय समाज के बीच प्रतिष्ठित है। इन प्रेमाख्यानों में विवाह संस्कार की पद्धति के साथ ही अनेक लोकरीतियों का सुस्पष्ट परिचय मिलता है। विवाह के लिए सर्वप्रथम वर की खोज की जाती है। इस संस्कार को सम्पन्न करने के लिए कन्या के पिता की ओर से सर्वप्रथम वर की खोज होती है। तत्कालीन समय में वर के निश्चय के लिए दो प्रधान आधार प्रचलित थे- प्रथम तो वर पक्ष की भौतिक समृद्धि का विचार तथा दूसरे स्वयंवर की योग्यता का विचार। ये दोनों दृष्टिकोण प्रायः आज भी हिन्दू समाज में प्रचलित हैं। प्रायः वर ढूढ़ने का कार्य ब्राहमण द्वारा किया जाता था। वह ब्राहमण

बराबरी के कुल में योग्य वर ढूढंने के लिए मंगल की प्रतीक सुपारी साथ में लेकर जाते थे और कन्या के लिए उत्तम वर ढूढंते थे।[9] प्रारम्भिक वार्ता तय हो जाने पर कन्या पक्ष की ओर से कुछ मुद्राओं के साथ पुंगीफल वर पक्ष को दिया जाता है, जिसे बरच्छा, मंगनी या फलदान, व रोक कहते हैं। सूफी प्रेमाख्यानों में भी वर ढूंढने की इस परम्परा का उल्लेख मिलता है। मौलाना दाउद कृत चंदायन में इस प्रंसग का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

चौथे बरिसि धरिसि जस पाऊ। जहत बोलावा बभिन नाऊ।
दीन्हि सुपारी मोतिन्ह हारू। कहिहु महर सौ मोर जुहारू।
अउ अस कहेहु मोर तू भाई। राजा नइ कइ करहु सगाई।

इस प्रकार वर का निश्चय हो जाने पर बरिच्छा बरोक का कार्यक्रम होता था जिसमें पुरोहित वर को तिलक करता था। इस कार्यक्रम को तिलक भी कहा जाता था जिसका उल्लेख जायसी की पद्मावत में देखने को मिलता है-

देसि सुरूज बर कंवल संजोगू। अस्तु अस्तु बोला सब लोगू।
मिला सुबंस अंस उजियारा। भा बरोक ओ तिलक संवारा।[10]

आज भी जन जीवन के बीच इन दोनों शब्दों का प्रयोग होता है। इसी प्रकार मधुमालती में राजा विक्रमराज मधुमालती का मनोहर के साथ विवाह तय करने के लिए बारी को पाती लिख कर भेजते हैं। विवाह तय हो जाने के उपरान्त लग्न लिखी जाती थी जिसे ज्योतिषी और पंडितगण कुण्डली देखकर शुभ लग्न और घड़ी में विवाह का मूहर्त तय करते हैं-

मनिकन्ह गरह कुंडली कीन्हा। बारह रासि ताहि में दीन्हा
ओ जो नो ग्रह है जहां। लिखि विचारी पंडितन्ह कह
जन्म दसा दुओ बिध सारी। अन्तर दसा जो गहा बिचारी
शुभ मूहर्त गनि के दिन साधा। बार नक्षत्र बुध अनुराधा।
नोमी जेठ पाष उजियारा। शुभ लग्न गनिकन्ह विचारा।

जो कुछ दिन पश्चात अथवा कभी बरिच्छा के तुरन्त बाद ही वहां सम्पन्न की जाती थी-

दिन दस पांच कुसल सौ भाई। पुनि धरि लगन धराव आई।[11]

तदुपरान्त होनेवाले विवाह में वर पक्ष की ओर से अपनी शक्ति और सामर्थ्य के अनुसार बारात सजाकर ले जायी जाती थी। इन प्रेमाख्यानों में बारात की तैयारी, उसकी शोभा मंडप और जनवासा का वर्णन मिलता है। बारात के दो प्रधान उपकरण थे- एक विविध वाद्यों से युक्त करके बारात को तथा दूसरे वर को सजाना। वरयात्रा का समाचार पाकर उसके आगमन के पूर्व ही मार्ग में उसका स्वागत तथा अगुवायी की जाती थी[5] जो कि आज के हिन्दू विवाहों में कालक्रम से रूढ़ हुई अगवानी की प्रथा के नाम से प्रचलित है। इसका स्पष्ट उल्लेख इन प्रेमाख्यानों में हुआ है। कन्या पक्ष के द्वार पर बारात के आ जाने के पश्चात् जो अन्य वैवाहिक विधियां संपादित की जाती है वे मंगलाचार तथा वाद्यों द्वारा स्वागत की है, जिसका स्पष्ट उल्लेख जायसी की पद्मावत में आया है-

बाजत बाजे कोटि पवासा। भा अनंद सगरो कविलासा।
जैहि दिन कहं निति देव मनावा। सोइ दिवस पदुमावति पावा।

चांद सुरूज मनि माथे भागू। औ गावहिं सब नखत सोहागू।[12]

वर-वधू एवं बारात को सुन्दर ढंग से सजाना तथा नगर की नारियों का वर को उत्सुकता पूर्वक देखना उस युग की सर्वप्रचलित बात थी जो कि पद्मावत में आये हुए उल्लेखों से ज्ञात होता है। इसी प्रकार मंझन की मधुमालती में राजकुमार मनोहर की बारात का सुन्दर वर्णन हुआ है। सेना सजाकर बारात चली। कागज के बहुत से खिलौने बनाये गये जिनमें से बहुत से खिलौने वृक्षों और कोठियों पर सजाये गये थे। कुसुंभी रंग के वस्त्रों से अलंकृत बहुत सी नौकाएं सजायी गयी थीं जिन पर पातुरें नाचती हुई दिखायी गयीं। वाद्य का प्रबंध अत्यन्त सुहावना था और खेल-तमाशे तो इतने थे कि उनकी गणना संभव न थी। कागज आदि के फलों से लदे वृक्ष बनाये गये थे जिन्हें स्थान-स्थान पर खड़ा किया गया था। सात योजनों तक बारात के उजाले से सूर्य जैसा प्रकाश विकीर्ण हो रहा था।

सेना साजी चली बराता। बाजन बाजा उठा अधाता।
बहु कौतुक कागद केरा। तरू अरि नाव कोटि एक धेरा।
नावे बहुत कुसुंभी मढ़ी। तापर आवे पवै चढ़ी।[13]

इसी प्रकार उसमान कृत चित्रावली में वर को सजाने एवं बारात की सज्जा का कुछ विस्तार के साथ वर्णन हुआ है-

यह कौतुक के रूप पराजे। कागद पात लाह फर साजे।
सुभग डारि फर फूल बनाई। ठांव-ठांव पंछी बैसाई।

विवाह के उस अवसर पर कवि द्वारा रंग-बिरंग की विविध आतिशबाजियों का वर्णन भी विस्तारपूर्वक किया गया है। बारात के स्वागत के लिए

मणिस्तम्भ से युक्त मंडप तथा द्वार पर बंदनवारों के लगाने का उल्लेख भी पद्मावत तथा मधुमालती में मिलता है-

रचि-रचि मानिक माडो छावहिं। ओ भुई रात बिछाउ बिछावहिं।
चंदन खांभ रचे चहुं पाती। मानिक दिया बरहिं दिन राती।
घर-घर चंदन रचे दुआरा। जांवत नगर गीत झनकारा।

बारात के पहुंचने पर सर्वप्रथम अगुवानी होती है। दो स्त्रियों मांगलिक कलशों को अपने शीश पर रखकर सज्जा के साथ आती हैं। जिसके बाद बारात कन्या पक्ष के द्वार पर चलने के लिए प्रस्थान करती है और कन्यापक्ष वाले आगे बढ़कर बारात का स्वागत करते हैं। द्वारचार के समय गीत तथा समधी और बारातियों के नाम से मधुर गालियां गाई जाती थीं।[14] जिसका उल्लेख भी मधुमालती में हुआ है-

बहुरि जनी दस पाछे भाई। सुरस कंठ मातहिं गरियाई।
चित्रसेन कह समधी नाएं। गारी देहिं हरसि रस भाएं।
पेमा कहं ताराचंद लाई। गारी देहिं औ करहिं भड़ाई।
औ मधुरा कहं समधिनि जानी। गारी देहिं और करहिं न कानी।

इसी प्रकार चित्रावली में चेरियां गाली गा रही हैं जिनमें समधी के साथ-साथ नाऊ को भी गाली गाई जा रही है-

गारी दे दे गावहिं चेरी। जाहिं लजाइ कुंअर मुख हेरी।
राजनीति पुनि अपनी बारी। समधी नाई पावै गारी।[15]

द्वारचार के पश्चात् मुख्य वैवाहिक आचार सम्पन्न होने के पूर्व ज्योनार होती थी जिसके पश्चात् मंत्रोचार के साथ ग्रंथि बंधन, पाणिग्रहण तथा तदनन्तर

भावरों का क्रम होता था। कहना न होगा कि संस्कार की ये प्रमुख विधियां आज भी हिन्दू विवाहों में देखने को मिलती है। जिनका उल्लेख इन प्रेमाख्यानों में विधिवत हुआ है।

इन वैवाहिक विधियों के पश्चात् कन्या के पिता की ओर से दहेज दिया जाता था जिसके लम्बे-चौड़े प्रसंग इन प्रेमाख्यानों में देखने को मिलते हैं। यह प्रथा भी आज के विवाहों से कोई भिन्न नहीं है। पद्मावत में रत्नसेन जब कुछ दिन सिंहल द्वीप में रहकर चित्तौड़ के लिए प्रस्थान करता है तो पद्मावती के पिता द्वारा उसे दहेज में सुसज्जित पालकियों में एक सहस्त्र चेरियां, चार लाए पेटारों में रत्नपदार्थ, माणिक्य और मोती, असंख्य घोड़े और सिंहली हाथी प्राप्त होते हैं-

डांडी सहस चली संग चेरी। सबे पदुमिनी सिंघल केरी।
भल पटवन्ह खरबार संवारे। लाख चारि एक भरे पेटारे।
रतन पदारथ मानिक मोती। काढ़ि भंडार दीन्त रथ जोती।[16]

इसी प्रकार मधुमालती, चित्रावली में दहेज में मिली हुई वस्तुओं का उल्लेख हुआ है। चंदायन में तो परम्परागत वस्तुओं के साथ ही साथ बीस गांव भी मिलने का वर्णन हुआ है। विवाह के पश्चात् वधू की विदाई तथा उसके वियोग में माता-पिता एवं पुरवासियों का दुख भारतीय लोकजीवन का बड़ा ही मर्मस्पर्शी दृश्य होता है और आज भी पाया जाने वाला यह तथ्य इन प्रेमाख्यानों के मंझन कृत मधुमालती, जायसी की पद्मावत आदि में प्रतिबिम्बित है।

सामाजिक उत्सव तथा लोकजीवन

भारत धर्म प्रधान देश होने के कारण यहां के लोगों का जीवन विभिन्न पर्वों से इतना परिपूर्ण है कि प्राय: प्रत्येक तिथि को कोई न कोई पर्व अवश्य रहता है। भारतीय लोकजीवन का हृदय स्पर्श करने वाले जिन उत्सवों अथवा पर्वों से संबंधित विवरण इन प्रेमाख्यानक काव्यों में मिलते हैं, वे क्रमश: बसन्तपंचमी, शिवरात्रि, होली, असाढ़ी, तीज, दीपावली तथा कार्तिक पूर्णिमा के हैं जो इन प्रेमाख्यानों में उल्लिखित समकालीन लोकसंस्कृति की मनोरम झांकी उपस्थित करते हैं। लोकजीवन में इन पर्वों का बड़ा महत्व होता है।[17]

बसंतपंचमी

यह पर्व माघ मास के शुक्ल पक्ष की पंचमी को मनाया जाता है। संस्कृत साहित्य में इसे ऋतु उत्सव के रूप में बसंन्तोत्सव नाम से मनाने तथा कामदेव की पूजा के पर्व के रूप में मदनोत्सव के नाम से मनाने का उल्लेख मिलता है। बसंतपंचमी के मदनोत्सव में कुमारियां झुण्ड की झुण्ड बनाकर महादेव के मंदिर में देवपूजा के लिए जाती थीं तथा अपने लिए योग्य वरप्राप्ति की प्रार्थना करती थीं। जायसी कृत पद्मावत में हीरामन सुआ रत्नसेन से कहता है कि माघ मास के पिछले पक्ष की श्रीपंचमी के दिन पद्मावती महादेव का पूजन करने आती हैं। उस दिन जो महादेव की पूजा करता है, उसके मन की आशा पूर्ण हो जाती है-

माघ मास पछिल पख लागे। सिरी पंचिमी होइहि आगे।
अघरिहि महादेव कर बारू। पूजिहि जाइ सकल संसारू।
पदुमावति पुनि पूजे आवा। होइहि एहि भिसु दिष्टि मेरावा।[18]

इसी प्रकार एक अन्य स्थल पर धाएं राजकुमारी पद्मावती से रत्नसेन की प्राप्ति के संबंध में कहती है कि जब फुलवाड़ियों में फूल खिलने लगे और सभी कन्याएं मंदिर में पूजा के लिए जाय तब तुम बसन्तदेवता के पूजन से उसको प्रसन्न करना-

आउ बंसत फूल फुलवारी। देव कर सब जैहहिं बारी।

पुनि तुम्ह जाहु बसंत लै, पूजि मनावहु देव।

देवपूजा के अतिरिक्त इस अवसर पर बसन्ती श्रृंगार, वृक्षों के साथ क्रीडा़ तथा बूमक, फाग इत्यादि का भी उल्लेख मिलता है। इस उत्सव में ऋतु सुलभ सरस वाद्य बजने लगते हैं। युवतियां श्रृंगार करती हैं और सुन्दर वस्त्राभरण से सजकर तथा सुगंधित लेपादि लगाकर बसंतपंचमी मनाने चल पड़ती हैं। गाती-बाजाती ये सुन्दरियां रागरंग युक्त खेल खेलती हैं-

फर फूलन्ह सब डारि ओन्हाई। झुण्ड बांधि के पंचमी माई।

बाजे ढोल दुंद औ भेरी। मंदर तुर झाझ चहुं फेरी।

सेंदुर सेह उठा अस गगन भएउ सब रात।

राति सकल महि धरती रात बिरिस बनपात।[19]

श्री पंचमी के उत्सव का वर्णन करते हुए कवि उसमान ने कहा है कि इस रंगमय उत्सव में विरहिणियों की दशा बुरी हो जाती है। चित्रावली को विष बिना यह पर्व अत्यधिक पीड़ा पहुंचाता है।

सिरी पंचिमी खेलें लोगू। मोहिं बिनु दून भा सोगू।

तरूनी फिरहिं सीस के राता। हम तिन देखि भूलि सुधि साता।

ससिन्ह आनि है भरी गुलाल। प्रगटी रोम-रोम तन ज्वाला।

होली

होलिकोत्सव भारतीय जीवन का सर्वाधिक रंगीन त्योहार है तथा उसका लोक सांस्कृतिक पक्ष उससे भी अधिक सरस है। फाल्गुन मास की पूर्णिमा को होली जलायी जाती है तथा दूसरे दिन यह पर्व उल्लासपूर्वक मनाया जाता है। होली की राख उड़ाना, रंग अबीर खेलना इस पर्व के लोकाचार हैं। साथ ही इस दिन ढोल-मंजीरा जाल के साथ फाग गाने एवं चांचरि नृत्य आदि होने की प्रथा भी मिलती है। होली के त्यौहार में सभी वर्गो तथा सभी स्तरों में परस्पर बिना किसी भेदभाव के रंग खेलने की प्रथा पायी जाती है। साथ ही सूख आनन्द मनाया जाता है। होली की चांचर में बूढ़े और बच्चे का भेदभाव लुप्त हो जाता है। इन्द्रावती में डफ और मृदंग बजाते हुए उनकी घूमने और रंग डालने वाली क्रिया का बड़ा ही स्वाभाविक वर्णन किया गया है-

आगमपुर कविलास मझारा। फागुन आइ आनन्द पसारा।
एक दिन पुरूष एक दिस गोरी। हिलमिल गावहिं चांचर जोरी।
डफ बजावहिं औ मिर दंगू। पिचकारिन मो भरइ सुरंगू।
रंग अबीर भरा सब कोई। जो जहां भरा तहां सोई।[20]

पद्मावत में फाग खेलने, होली जलाने और झोली में राख ले लेकर उड़ाने की प्रथा का उल्लेख मिलता है-

फाग खेलि पुनि दाहब होली। सै तब खेह उड़ाइव होली।

विरह वर्णन के अर्न्तत बारहमासा में भी इस पर्व का उल्लेख प्राप्त होता है। नागमती के विरह वर्णन में फागुन मास में सखियों के फाग खेलने, चांचरि

नृत्य करने आदि का उसके ऊपर विरह के कारण प्रतिकूल प्रभाव दिखाया गया है।

मनोरमा दाउद कृत चंदायन में भी होली पर्व के विशेष उत्साह, तरूणियों के श्रृंगार, फाग गायन और वाद्यों का वर्णन परिलक्षित होता है-

घर घर रचहिं दन्दाहर बारी। अति सुहासनिय राजदुलारी।
मुख तंबोल चल काजर पूरहिं। अंग अंग सिर चिर सिंदूरहि।
नाचहिं फागु होइ झनकारा। तिह रस भई नई सघं सारा।[21]

दीपावली

भारत के सांस्कृतिक जीवन के दृष्टिकोण से इस पर्व का महत्व सदा से है। कार्तिक मास में इस त्यौहार को धूमधाम से मनाते हैं, दिन भर पूरे घर आंगन को सजाते हैं और रात्रि में लक्ष्मी पूजन करते हैं। सूफी प्रेमाख्यानों में इस पर्व का उल्लेख अधिकतर बिरह वर्णन के बारह मासा के अन्तर्गत मिलता है। नागमती कह रही है कि चारों ओर दिपावली का त्यौहार मनाया जा रहा है। सभी सखियां अपने शरीर का मोड़-मोड़ गीत गा-गाकर नाच रही हैं, लेकिन में तो वियोगिनी हूं-

अबहूं निठुर आव एहिं बारा। परब देवारी होइ संसारा।
सखि धूमक गावहिं अंग मोती। हों घूरों बिठुरी जेहि जोरी।

उसमान कृत चित्रावली में भी इस पर्व पर पूजन करने, गाना गाने तथा रसभोग करने का उल्लेख हुआ है-

मानहिं परब देवारी लोगू। पूजहिं गाइ करहिं रस भोगू।

प्रायः बिरहिणियों को कार्तिक मास की चर्चा होने पर दीपावली के पर्व

का रंग और उल्लास स्मरण हो जाता है। मधुमालती[1] और चंदायन[2] में भी इस प्रसंग का स्पष्ट उल्लेख मिलता है।

तीज

इस पर्व को हरतालिका व्रत या साधारण बोली में तीज कहते हैं। यह स्त्रियों का एक प्रमुख त्यौहार है। इस दिन स्त्रियां व्रत रहती हैं तथा हर्षोल्लसित होकर नदी स्नान करती हैं। साथ वे अपने वैवाहिक जीवन के मंगलमय रहने के लिए देवपूजन करती हैं। इस व्रत का महत्व ही मनोवांछित पतिप्राप्ति में है। कवि नूर मुहम्मद ने अपनी रचना- इन्द्रावती में इसकी संयोजना ऐसे ही स्थलों पर की है-

इन्द्रावति मन प्रेम पियारा। पहुंचा आइ तीज त्यौहारा।
कहेनि सहेलिनि उर मानू। मनतारा चलि करहिं नहानू।[22]

इसके अतिरिक्त जिन त्यौहारों का उल्लेख आलोच्य सूफी साहित्य में मिलता है, उसमें शिवरात्रि, नवरात्र, असाढ़ी, कार्तिक पूर्णिमा इत्यादि का उल्लेख है।

सामान्य जीवन का स्वरूप

इन प्रेमाख्यानों के अन्तर्गत व्यक्ति के रहन-सहन से संबंधित अनेक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है जिनमें तत्कालीन लोकजीवन भलीभांति प्रतिबिम्बित है।

रहन-सहन

व्यक्ति के जीवन के अन्यान्य पहलुओं पर पूर्ववर्ती पृष्ठों में विचार किया जा चुका है फिर भी उनके अतिरिक्त इन प्रेमाख्यानों में मिलने

वाले उल्लेखों में व्यक्ति के रहन-सहन के दृष्टिकोण से जिन तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है, वे भोजन, मनोरंजन के साधन, वेशभूषा तथा अलंकरण है। रहन-सहन का अध्ययन इन रचनाओं के माध्यम से यहां प्रस्तुत किया जायेगा। सर्वप्रथम खान-पान भोजन से सम्बन्धित तथ्य यहां विचारणीय हैं।

खान-पान

इस कोटि में भोजन सामग्री से संबंधित निर्देश तथा उसकी पद्धति दोनों ही आती हैं। भोजन की सामग्रियों का वर्गीकरण विभिन्न प्रकार से किया गया है। इसके कड़वा, नमकीन और तिवल ये छःरस माने जाते हैं। मौलाना दाउद कृत चंदायन में षड्रस का उल्लेख मिलता है, पर उसके नामों के अर्थ स्पष्ट नहीं होते हैं-

कटुक, तराक्त, लखवर, लोन, तेल, विसवारं

षट्रस होइ महारस, तिलकुट किएउ अहार।

इसी प्रकार मृगावती में षड्रस व्यंजन का उल्लेख इस प्रकार हुआ है- मीठा फीका लोना खटा कसेला तीत।

खीर दही पसमसौर औ सब पंच अम्ब्रीत।

इन प्रेमाख्यानों में भोजन के प्रकारों के संबंध में विभिन्न संख्याएं मिलती हैं। जायसी ने इनके बावन प्रकार कहे हैं-

पुनि बावर परकार जो आए। ना अस देखे न कबहूं खाए।

इसी प्रंसग में चंदायन एवं मृगावती में भी क्रमशः बहत्तर एवं छत्तीस प्रकार के भोजनों का संकेत प्राप्त होता है।

पद्मावत में भोजन के जो प्रसंग प्रधानतया आये हैं, उनमें विभिन्न

पदार्थों की लम्बी सूची देखने को मिलती है। रत्नसेन के विवाह के प्रसंग पर तैयार की गई रसोई (भोजन) निरामिष है तथा आगे चलकर बादशाह अलाउद्दीन को दी गई ज्योनार (दावत) में सामिष भोजन सामग्रियों की लम्बी सूची है। उस युग में सर्व सामान्य हिन्दू समाज में प्रायः निरामिष भोजन का प्रचलन था किन्तु उसके साथ ही राजघरानों में तथा शाही दावतों में आमिष भोजन प्रचलित था। इस सबंध में डा.वासुदेव शरण अग्रवाल का मत है कि पहले रसोई में घी, दूध, पूड़ी, मिठाई और शाकाहार तक सीमित था तथा वर्णन भी साधारण है, किन्तु राजा रत्नसेन द्वारा शाही दावत का (जिसमें आमिष और निरामिष दोनों ही खाद्य सामग्रियां हैं) वर्णन विस्तृत है जिसमें जायसी ने उस समय की पाकशालाओं का चित्र खींच दिया है। इस प्रकार सूफी प्रेमाख्यानों में आये हुए भोज्य पदार्थों को निरामिष और सामिष दो प्रंसगों में बांटकर विचार किया जा सकता है-[23]

निरामिष भोजन

जिन अनाजों से निरामिष भोजन की विभिन्न वस्तुएं तैयार की जाती हैं, उनमें गेहूं और चावल सबसे प्रमुख हैं जिनका उल्लेख सभी सूफी काव्यों में मिलता है। उसमान की रचना चित्रावली में इनके अतिरिक्त मूंग और चना का नाम आया है। इसी प्रंसग में शेख रहीम कृत भाषा प्रेमरस में खाद्यान्नों की लम्बी सूची मिलती है जिनमें गेहूं, अरहर, मसूर, चना, मेथी, मोठ, गोजई, मसरंगा, मूंग, मटर, पचरंगा, काबुली दाना का केराव, बाजरा, जोन्हरी, धान, सड़हरा, मडुवा, काकुन, कोदो, सांवां, मोटा और महीन चावल, उर्द, तिलहन, तिल, सरसों, अलसी, राई आदि का विस्तृत नामोल्लेख हुआ है।

प्रायः इन्हीं विभिन्न अनाजों से विभिन्न निरामिष खाद्य पदार्थ तैयार किये जाते हैं।

गेहूं के बने पदार्थ

गेहूं पिसने के पहले धोया जाता है और तब पीसा जाता है। पिसे हुए आटा को कपड़े में छानकर उसका बारीक आटा बनाया जाता है जिसे मैदा कहते हैं। इस प्रक्रिया का उल्लेख चंदायन और पद्मावत में हुआ है। इस प्रकार बारीक आटे को गूंथ-गूंथ कर उससे विभिन्न खाद्य पदार्थ बनाते हैं जिसमें मुख्य-मुख्य रूप से लुचुई, पूरी, सोहारी एवं कचौरी हैं। जायसी ने अपनी कृति पद्मावत में गेहूं से बने हुए पदार्थों का अच्छा उल्लेख किया है जो स्वाभाविक बन पड़ा है-

देखत गोहूं कर हिय फाटा। आने तहां होब जहं आटा।
तब पिसे जब पहिलेहिं धोए। कापर छानि मांडि भल पोए।
करित चढे तहं पाकहि पूरी। मूंठिहि मांह रहहि सौ चूरी।
लुचुई पोइ घीय सो भेइ। पाछें चहीं खांड सौ जेई।
पूरी सोहारी करी घिउ चुवा। छुवत बिलाहि डरन्ह को छुवा।

इसी प्रकार गेहूं के आटे का मांड बनाये जाने का उल्लेख पद्मावत[2] में मिलता है। चित्रावली में भी दूध और खांड मिलाकर मांड या मांडा बनाने की बात कही गई है-

गोहूं प्रथम दूध सों धोए। खीरि खांड मिलि मांडा पाए।[24]

चंदायन में झार नामक पकवान बनाने का वर्णन भी इसी से मिलता जुलता है। जायसी ने भी झालर मांड आये घिउ पोए कहकर मांड और

झालर दोनों के बनाने की विधि की समानता का संकेत किया है। हो सकता है कि जायसी का झालर व मांड और दाऊद का झार एक ही हो। चंदायन में झार बनाने की विधि इस प्रकार बताई गई है-

हांसा गोहूं धोइ पिसाए। कपर छान कइ खार बनाए।
अति बड़वल से बड़ भर तोला। सेतु सुहाव कूंज जनु भोला।
टूट न ताना दुई कर तोरा। नैनूं मांझ हाथ जनु बोरा।

चावल के पकवान

इन प्रेमाख्यानों में चावल के द्वारा बनने वाले विभिन्न पकवानों के नामों का उल्लेख मिलता है जेसे चावल को पकाकर भात बनाना, खीर, तहरी तथा झालर इत्यादि। साथ ही इन काव्यों में चावल के विभिन्न प्रकार की जातियों का वर्णन हुआ है। उनमें से कुछ चावल तो स्वाभाविक रूप से इतने सुगंधित हैं कि उसके पकाये जाने पर आसपास का चतुर्दिक वातावरण सुगंध ा से परिपूर्ण हो जाता है। जायसी ने पद्मावत में इस प्रकार के चावलों का नाम गिनाया है जैसे राजभोग, दाउदखानी, रानी काजर, झिनवा, रहुआ, कपूरकान्त, लेंजुरि, ऋतुसारी, मधुकर, दिहुला, जीरासारी, धृतकांदी, कुंवर विलास, रामरास, सगुनी, बेगरी, पढ़िनी, गड़हना, जड़हन, बड़हन, संसार तिलक, खंडचिला, राजहंस, हंसा, भौरी, रूपमजती, केतकी तथा बिकौरी। उनके पकाये जाने पर उनमें से इतनी सुगंधि निकली कि भ्रमर भी पुष्य की सुगंध ा छोड़कर वहां आ गए-

सीखहिं चाउर बरनि न जाहीं। बरन बरन सब सुगंध्हा बसाहीं।
रायभोग औ काजररानी। झिनवा रौदा दाउद खानी।

सोलह सहस बरन अस सुगंध वासना छूटि।

मधुकर पुहुप सौ परिहरे, आइ परे सब टूटि।[25]

मौलाना दाउद ने भी चंदायन में जायसी के समान ही कुछ अधिक सैंतीस प्रकार के चावलों का नामोल्लेख किया है। चावल के द्वारा खीर बनाने का उल्लेख चित्रावली में हुआ है-

लोन समोसा मीठ मधु, खीर खांड बहुताइ।

इसी प्रकार चावल के बने पदार्थ में तहरी का उल्लेख मिलता है। खीर एवं तहरी की भांति चावल द्वारा बनाये गये झालर का उल्लेख मिलता है। झालर मांड आए धिउ पोए। अपर देखि पाप गए धोए।

शाक-भाजी तथा अन्य पदार्थ

इन प्रेमाख्यानों में विभिन्न प्रकार के शाक सब्जियों का नाम गिनाया गया है, जैसे टिंडे, परवल, कुंदरू, तोरई, चिचिंडा, करेला, कुम्हड़ा, अरबी, खेखसा, सीताफल, सेम, पालक, चौलाई, लौकी, सोया, मैथी, भांटा इत्यादि। जायसी ने पद्मावत में बादशाह भोज खंड प्रसंग में लगभग इन्हीं सब्जियों के नाम गिनाये हैं। इसी प्रकार मौलाना दाउद ने भी चंदायन में विभिन्न प्रकार की सब्जियों का नाम गिनाया है तथा पांच वस्तुओं का नाम सब्जी बनाने में लिया है, जिसे पंचफोरन भी कह सकते हैं-

कंकोल (शीतल चीनी), जीवन्ती, सौंफ, सोई और मेथी। पंचफोरन को ही संभवतः धुंगार देना कहते हैं। जायसी ने सब्जी में जीरा का धुंगार देने का उल्लेख किया है। इसी प्रकार कवि ने बराबरी के प्रसंग में मिरिच, सोंठि, जीरा, अंबचुर, लौंग, इलायची, हींग इत्यादि वस्तुओं का नाम गिनाया

है।

सब्जी के अतिरिक्त रायता, अचार, सिरका आदि का भी उल्लेख मिलता है। जायसी ने लोकी के रत्ती-रत्ती टुकड़े काटकर रायता बनाने का उल्लेख किया है।[26]

प्रायः अचार आम, कटहल, बड़हर, आंवला आदि फलों के बनाये जाते हैं। जायसी ने भोज में अचार (संधान) परसे जाने का वर्णन किया है। इसी प्रकार दाउद, कुतुबन एवं उसमान आदि ने भी अचार का उल्लेख किया है। रायता एवं अचार के साथ ही साथ सिरका का वर्णन जायसी ने बादशाह भोज खण्ड में किया है।

बेसन के पकवान

सूफी प्रेमाख्यानों में बेसन से बनने वाली अनेक प्रकार की वस्तुओं का उल्लेख हुआ है। चना, मटर, उर्द, मूंग आदि की दालों को पीस कर बेसन बनता है।[27] जिनसे विभिन्न प्रकार के पदार्थ बनते हैं। बेसन से बनने वाली वस्तुओं में मुख्य रूप से मीठा बरा, बरा, गुगोछी, गुरबरी, मेथोरी, दही बड़ा, खंडुई, कढ़ी, डुभकोरी, बरौरी, रिकवंछ, फुलौरा, पापड़ आदि हैं। जायसी ने 'पद्मावत' के 'बादशाह भोज' प्रसंग में बेसन से बने इन पदार्थों का विस्तृत वर्णन किया है।

धिरित कराहन्हि बेह धरा। भांति भांति सब पाकहिं बरा।।
एकहि आदि मिरिच सिउं पीठै। औरू जो दूध खांड़ सौ मीठे।।
भई मुंगोछी मिरिथै परी। कीन्ह मुंगोरा और गुरबरी।।

भई मेंथोरी सिरिका परा।। सौंठि लाइ के खिरिसा धरा।।

मी0 महिउ और जीरा लावा। भीजि बरी जनपु लेनु लावा।।

मुंडई कीन्ह अंबपुर तेहि परा। लौंग लायची सिउं खड़ि धरा।।

कढ़ी संवारी और ठुभुकौरी। औ खंडवानी लाइ बरौरी।।

पान लाइ के रिकवक्ष छोंके, हींग मिरिच और आद।।

इसी प्रकार चंदायन में पापड़, मुगोरा, मेथोरी, कढ़ी, डुभकरी आदि का वर्णन मिलता है। इसी प्रसंग के अन्तर्गत चित्रावली में भी डुभकोरी, खंडहु गुरवरी और फुलौरा आदि का वर्णन किया है। असमान ने कदाचित खंडुई को 'खंडबरा' एवं गुरबरी को 'अमृतबरी' और डुभकोरी को डुहुका कहा है-

डुहुका छीमी और खंडबरा। अभिरित बरी फुलौरा दरा।।

<u>विविध मिष्ठान</u>

सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में बहु प्रकार के मिष्ठानों का उल्लेख किया है, जैसे पेठा, गुरंब, हलुआ, मोतीलड्डु, छालू, मुरकुरी (अभिरति), मठरी, पेराक (गुड़िया), बुँदिया, ढुरहुरी, बिरौरी इत्यादि। जायसी कुल पद्मावत मेंडन विविध प्रकार के मिष्ठानों का उल्लेख इस प्रकार हुआ है-

बिरित भूंजि के पाका पेठा। औ भा अंब्रित गुरंब मरेठा।।

चुबक लौहड़ा औटा खोवा। भा हलुवा चिउ करे निचौवा।।

मोतिलहु छात और मुरकरी। मांठ पेराक बुंद डुरहुरी।।

इसी तरह दाऊद ने- 'चंदायन' में गुरंब, गुखिया और लपसी आदि का उल्लेख किया है। कदाचित कवि ने गुरंब (गुलम्बा या गुड़म्बा) को 'गुरेठ' कहा है। उस्मान ने भी 'चित्रावली' में लपसी (पतला हलुआ), मधु, खीर,

खांड़, लड्डू, खाजा, फेनि और जलेबी आदि मिष्ठानों का उल्लेख किया है।[5]

दूध द्वारा निर्मित भोज्य पदार्थ

वस्तुतः दूध का प्रयोग पेय पदार्थों के रूप में होता है, पर साथ ही साथ उससे विभिन्न प्रकार की खाने की वस्तुएं बनती हैं। दूध से ही दूध को जमाकर दही बनाते हैं।साड़ीयुक्त दही को सजाव दही कहते हैं। जायसी ने लिखा है- 'जामा दूध दही सिउं साढ़ी' तथा दूध को जलाकर खोआ बनाने का उल्लेख किया है- 'चुबक सौहड़ा औटा खोवा''। दही से एक विशेष प्रकार के मिठाई बनाने का उल्लेख मिलता है जिसे जायसी ने मोरंड कहा है। दही को मथकर मक्खन निकालते हैं जिसे नवनीत कहते हैं। नवनीत को खूब जलाकर घी बनाते हैं। जायसी के समान उसमान ने भी लिखा है-

दूध जमाह दहेड़ी आनी। भाजन छूटन सबउ जसानी।।

दूध को फाड़कर छेना बनाया जाता है जिससे बहुत सी मिठाइयां बनती हैं। दाउद ने 'चंदायन' में दूध को फाड़कर छेना बनाने का उल्लेख किया है- 'दूध फारि के सिरिसा बांधा।

अमिय भोजन

पशुओं, पक्षियों और मछलियों के मांस आमिव आहार में आते हैं। सुफी प्रेमाख्यानों में तीनों प्रकार के मांस को पकाकर बनाने का उल्लेख मिलता है।

मांसाहार में काम आनेवाले पशु

सूफी कवियों ने विभिन्न प्रकार के पशुओं का उल्लेख किया है जिनका मांस पकाकर खाया जाता था। जायसी ने- 'पद्मावत' के अन्तर्गत पशुओं में छांगर, (बकरा), मेंढ़ा, हरिन, रीझ (नीलगाय), गौन (बारहसिंगा), लगुना, चीतल, कांस(सभिर), हरिन और खरगोस का उल्लेख किया है-

छांगर मेंढ़ा बड़ ओ छोटे। धरि धरि आने जह लगि मोटे।।

हरिन रोझ लगुना बन बसे। चीतर गौन झांख ओ ससे।

इसी प्रकार मौलाना दाऊद ने भी अपनी रचना 'चंदायन' में मांसाहारी पशुओं की एक लम्बी सूची प्रस्तुत की है जिनके मांस का उपयोग खाने के लिए होता था।

पक्षी-मांस

मांसाहार में काम आने वाले पक्षियों का नाम परिगणन भोज के सन्दर्भ में किया गया है। जायसी ने जिन पक्षियों के नाम गिनाये हैं, उनमें तीतर, बटेर, लवा, खेहा, सारस, कुंज, मोर, कबुतर, पड़क, गुडरू, उसर बगेरी, चकवी, चकवा, हारिन, चरज, अनमुर्ग, जलमुर्गी, केवा, पिद्दे, नकटा, लेदी, सोन और सिलौर इत्यादि। इसी प्रकार मुल्ला दाऊद ने भी अपनी रचना चंदायन में जिन पक्षियों का नामोल्लेख किया है उनमें बटेर, तीतर, लवा, गुंडरू, केवा, बगेरिए, चरियारे, उसरतिसोरे, बल्ए, सीतस, भुतजोर, काले तिलौर, रत्नबिट्ठल, बनकुबकुट, खरमोर, क्रांच तथा महोख इत्यादि है।

मछलियां

जायसी ने बादशाह भोजखण्ड के अन्तर्गत अलाउद्दीन बादशाह

के भोज के अवसर पर विभिन्न मछलियों का उल्लेख किया है जिनका पशु-पक्षियों की भांति मांस पकाकर खाया जाता है जैसे रोहू, सेंधा, सुगंध, टेंगनी, पटिन, मोय, सिंगी, मोंगरी, नरिया, मोंथ, बॉब, बांगुर, चरखी, चेल्हवा तथा पर्यासी इत्यादि प्रमुख है।

मांस के पकाने की विधि

मांस को तीन प्रकार से बनाने का उल्लेख इन प्रेमाख्यानों में हुआ है-

1. कटवां (काटकर बना हुआ), 2. बटवार (पीस कर निर्मित), 3. भरवां (पिसे हुए मांस को भरकर बनाना)।

जायसी ने मांस का उल्लेख करते हुए उसके दो प्रकार बताये हैं-

कटवां, बटवां, मिला सुबासू। सीझा अनबन भांति गरासू।।

इसी प्रकार दाऊद ने चंदायन में कटवां मांस और मलोरे (कबाब) बनाने का उल्लेख किया है। जायसी ने भवां मांस का भी वर्णन किया है। इसमें पिसे हुए मांस को भरकर तैयार किया जाता है। जिस फल में मांस भरकर तैयार किया जाता था, उसे उसी नाम से पुकारते थे और उसमें वैसा ही स्वाद आता था। आम, भांटा, नारंगी, अनार, तुरूंज, जंभीर, तरबुज, वातमखीरा, कटहल, बड़हल, नारियल, अंगूर, खजूर, होहारे का भवा तेयार करने का वर्णन 'पद्मावत' में हुआ है। चित्रावली में भी भवां मांस बनाने का उल्लेख हुआ है।

पेय पदार्थ

सूफी प्रेमाख्यानों में भारत के साथ अनेक प्रकार के पेय पदार्थो

की परम्परा का प्रचलन मिलता है। जैसे- जल, खंडवानी, पछपावरि, अनरस, मिर्चवानी, राई का पानी, मदिरा, तम्बाकू इत्यादि। चंदायन में पेय पदार्थ के रूप में मिर्चवानी, राई का पानी तथा खंडवानी का उल्लेख आया है। इसी प्रकार उसमान की चित्रावली में पेय पदार्थ के रूप में जल एवं अमरस का वर्णन हुआ है। पेय पदार्थ के रूप में जायसी की रचना 'पद्मावत' में जल, खंडवानी, पद्यावरि का विशेष रूप से उल्लेख हुआ है।

ताम्बुल प्रथा का वर्णन प्रायः सभी कवियों ने किया है। भारत में ताम्बूल प्रथा चिरकास से प्रचलित रही है। यह भोजन के उपरान्त मुख को शुद्ध और सुवासित करने हेतु दिया जाता है जिसका उल्लेख जायसी, कुतुबन, मंखन, उसमान आदि कवियों ने किया है।

भोजन के पात्र

इन प्रेमाख्यानों में निम्नलिखित भोजन के पात्रों का वर्णन मिलता है-

पत्तल या पनवार, दोना, वाली, कटोरी आदि। भोज आदि के अवसरों पर शुद्धता और सुविधा की दृष्टि से पत्सल या पनवार पर भोजन कराने की प्रथा है। कवि उसमान ने दोना, पत्तल और पतरी पर भोजन कराने एवं सोना और रूपा की बनी हुई यात्रियों का उल्लेख किया है। 'भंदायन' में भी दोना तथा पत्तलों का वर्णन मिलता है। पत्तल बनाने के लिए निम्नलिखित पेड़ों के पत्तों का प्रयोग होता था, जैसे- बरगद, पाकड़द्व महुआ, कटहल, बड़हल, तेंदु आदि। जायसी ने पद्मावत में सोने के पत्रों की बनी हुई पत्तलों तथा मणि-माणिक्स से जड़ी हुई कालियों और रत्न से जुड़े हुए खोरा-खोरी समैवतः कटोरा-कटोरी का उल्लेख किय है।

जल के पात्र

सूफी काव्यों में जल के पात्रों के रूप में गड़वा, लोटा, होदा, झारी (झांझर) कलश आदि का यथास्थान उल्लेख हुआ है। 'पद्मावत' में कलश, गुड़वा, (टोंटीदार पात्र) तथा लोटा का उल्लेख क्रमशः बसन्त खण्ड, रत्नसेन- पद्मावती विवाह खण्ड तथा चित्तौड़ वर्णन खण्डे हुआ है। 'चित्रावली' में झारी (संभवत:) झांझर तथा गड़वा का वर्णन हुआ है।

अन्य पात्रों के रूप में सुराही (मदिरा रखने का पात्र) प्याला (पीने का पात्र) कठहंडी (अचार रखने का पात्र) तथा कड़ाही (सब्जी बनाने का पात्र) का उल्लेख

स्त्रियों के खेल-क्रीड़ाएं

सूफी कवियों ने अपने प्रेमाख्यानों में स्त्रियों के क्रीड़ा-विनोद का रोचक वर्णन किया है। जिसमें जल-क्रीड़ा और हिंडोला विशेष प्रमुख हैं। जायसी की रचना 'पद्मावत' में 'मानसरोदक खंड' प्रसंग में जल-क्रीड़ा का विस्तृत वर्णन किया गया है। इससे ज्ञात होता है कि यह खेल कुमारियों में अत्यधिक लोकप्रिय रही होगी। इसमें तैरने के साथ-साथ बाजी लगाकर किसी विशेष प्रकार के खेल खेलने का उल्लेख मिलता है। पद्मावती और उसकी सखियों की जल-क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन हुआ है। पद्मावती और उसकी सख्यिों की जल-क्रीड़ा का सुन्दर वर्णन हुआ है। इस खेल में सांवली ने सांवली को और गोरी ने गोरी को अपनी-अपनी जोड़ी बना लिया। इसी प्रकार उसमान की 'चित्रावली' में जलक्रीड़ा का वर्णन मिलता है। इसमें चित्रावली जल में छिपती है और स्वयं को अपने सहेलियों से ढूंढ़ने के लिए कहती है-

अध्याय-6

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. गुप्त परमेश्वरी लाल: 'कन्हावत' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1981
2. अमरेश अमर बहादुर सिंह: कहरानामा और मसलानामा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1992
3. कुलश्रेष्ठ, कमल : 'हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य' चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर, 1953
4. गुप्त माताप्रसाद : 'जायसी- ग्रंथाली', सम्पादक- डा0 माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1952
5. चतुर्वेदी, परशुराम : भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, इलाहाबाद, 1956
6. चतुर्वेदी परशुराम : 'सूफी काव्य संग्रह' प्रयाग, शक 1880।
7. जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पदमावत' व्याख्याकार- श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, झाँसी, 2012
8. जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पदमावत' सम्पादक- डा0 मुंशीराम शर्मा मनोहर पब्लिकेशन कानपुर, 1958
9. जायसी, कल्बे मुस्तफा (उर्दू) : 'मलिक मुहम्मद जायसी' अंजुमन तरक्की उर्दू, देहली, सन् 1941
10. जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पद्मावत' सम्पादक- डा0 माताप्रसाद गुप्त, भारती-भण्डार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, 1963

11. गुप्त माताप्रसाद : 'जायसी- ग्रंथाली', सम्पादक- डा0 माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1952

12. जैन, विमल कुमार : 'सूफीमत और हिदी साहित्य', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1955।

13. नारंग, इन्द्रचन्द्र : 'पद्मावत-सार' लोकभारती, इलाहाबाद, 1957

14. तिवारी, रामपूजन :'जायसी' राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, 1965

15. त्रिगुणयत, गोविंद :'जायसी का पद्मावत', अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1963

16. पाठक, शिवसहाय : मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, ग्रन्थम, कानपुर, 1964

17. चतुर्वेदी, परशुराम :भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, इलाहाबाद, 1956

18. चतुर्वेदी, परशुराम :'हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान', हिन्दी-ग्रंथ रत्नाकर प्रा0 लि0, बम्बई, 1932

19. सक्सेना, सुधाः 'जायसी की बिम्ब योजना', अशोक प्रकाशन दिल्ली 1966।

20. नारंग, इन्द्रचन्द्र : पद्मावत का ऐतिहासिक आधार, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1956

21. गुप्त परमेश्वरी लालः 'कन्हावत' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1981

22. तिवारी, रामपूजन :'सूफीमत साधना और साहित्य, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संवत् 2013

23. पाण्डेय चन्द्रबली : तसब्बुफ अथवा सूफीमत, सरस्वती मन्दिर, बनारस, 1948

24. पाण्डेय, श्याममनोहर: 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', मित्र प्रकाशन, प्रा० लि०, इलाहाबाद, 1961

25. शुक्ल, रामचन्द्र : 'जायसी ग्रंथावली' नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं० 2013 वि०।

26. साही, विजयदेव नारायण : 'जायसी', हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद1983।

27. जयदेव (डा०): 'सूफी महाकवि जायसी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।

सप्तम अध्याय

उपसंहार

सप्तम अध्याय

उपसंहार

बाबर की भारत विजय ने अफगानों का राज्य कुछ समय के लिए समाप्त कर दिया था परन्तु उनकी शक्ति को पूर्णतया निर्मूल नहीं किया जा सका। हुमायूँ की कमजोरी का लाज उजकर अफगान पुनः अपने आपको संगठित करने लगे। अफगानों के सौभाग्य से उन्हें शेरशाह जैसा योग्य नेता जी मिल गया। शेरशाह ने अपनी सैनिक प्रतिभा एवं अपनी राजनीतिक दूरदर्शिता का सहारा लेकर अफगानों को पुनः एक सूत्र में बांधा और अपनी सैनिक शक्ति के बलपर हुमायूँ को भारत छोड़ने पर विवश कर दिया और वह स्वयं भारत का सम्राट बन बैठा। मुगलों की सत्ता समाप्त कर दी गयी। इस प्रकार शेरशाह ने दुबारा अफगान राज्य की स्थापना की। दुर्भाग्यवश शेरशाह के उत्तराधिकारी अयोग्य निकले और वे शेरशाह द्वारा स्थापित राज्य की रक्षा नहीं कर सके। पानीपत के द्वितीय युद्ध ने अफगानें की शक्ति को हमेशा के लिए समाप्त कर दिया।

मध्ययुगीन भारतीय समाज में सूफी सन्तों ने अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनका सबसे महत्वपूर्ण योगदान हिन्दू-प्रान्तीय सम्प्रदायों में समन्वय की भावना पैदा करना था। इन लोगों ने सामाजिक सेवा का रूप सैद्धान्तिक नहीं बल्कि व्यावहारिक रूप में दिया और परमात्मा की सेवा का

एकमात्र साधन बताया। वेदान्त योग क्रिया, निर्वाण, आदि सिद्धान्तों को अपनाकर अनेक हिन्दुओं तथा बौद्ध धर्मावलम्बियों को आकृष्ट किया। उन्होंने बताया कि सूफीवाद न केवल इस्लाम पर आधारित है बल्कि उसमें हिन्दू तथा बौद्ध सिद्धान्तों का भी समावेश है।

'अगर भाग्य ने मेरी सहायता की और सौभाग्य मेरा मित्र रहा तो मैं मुगलों को सरलता से हिन्दुस्तान से बाहर निकाल दूँगा।' इसको शेरशाह ने उस समय कहा था जबकि वह मुगल सेना में था और बाबर को चन्देरी में सहयोग दे रहा था। शेरशाह ने अपने शब्दों को सिद्ध कर दिखाया और उत्तरी भारत में सूरवंश और द्वितीय अफगान साम्राज्य की स्थापना थी। शेरशाह इतिहास के उन महान शासकों में से एक था जो केवल अपने परिश्रम, योग्यता और अपनी तलवार के आधार पर साधारण व्यक्ति को स्तर से उठकर राज्यपद तक पहुँचा। शेरशाह न किसी राजवंश से सम्बन्धित था न किसी धनाढ्य परिवार से और न किसी ख्याति प्राप्त धार्मिक अथवा सैनिक नेता से। उसने जो कुछ भी प्राप्त किया वह केवल अपने स्वयं के पौरूष से प्राप्त किया। इसी से शेरशाह की गिनती महान व्यक्तियों में भी जाती है।

मलिक मुहम्मद जायसी ने स्वयं अपनी रचना 'पद्मावति' में बतलाया है कि इन्होंने उसे जायस में आकर लिखा था। जायस को उस स्थान पर उन्होनें धर्मस्थान भी कहा है। परन्तु अपनी 'आखिरी कलाम' नाम की रचना में उन्होंने जायस को अपना निजी स्थान भी बतलाया है और उसका आदि नाम 'उदयान' का उल्लेख कर उसके पूर्व इतिहास का परिचय देने की

चेष्टा की है। जायसी शब्द से भी उनका उसके साथ घनिष्ट संबंध जान पड़ता है।। उनकी पद्मावत पंक्तियां स्वयं सिद्ध कर देती हैं।

जायस नगर धरम अस्थानू। तहां आई भवि कीन्ह बखानू।।

मलिक मुहम्मद जायसी का जन्म 1493 ई0 में और मृत्यु सन् 1542 ई0 में हुआ था। अतः उन्होनें अपने जीवनकाल में लोदी वंश का उत्थान-पतन, युगम साम्राज्य की स्थापना और शेरशाह सूरी जैसे प्रतिमा समान सुयोग्य शासक की शासन व्यवस्था देखी थी। इस बीच शासक वर्ग की स्थिति के अनुसार धार्मिक क्षेत्र में होने वाली उथल पुथल को भी जायसी ने स्वयं देखा न सुना था। जायसी ने अपने युग से जो कुछ पाया उनके संवेदनशील ने इन सबके प्रति जो भी प्रतिक्रिया व्यक्त की उसे उन्होनें पूरी ईमानदारी के साथ पद्मावत में व्यक्त किया है।

जायसी ने अपने 1493 से 1542 ई0 तक के जीवन में उनके राजनीतिक उथल पुथल और संघर्ष देखे थे। दिल्ली के सिंहासन पर तीन पृथक वंशों की राजसत्ता भी देखी थी। ये तीन वंश लोदी वंश, मुगल वंश और सूरवंश थे। निःसन्देह सिकन्दर लोदी एक योग्य शासक था किन्तु अपने धार्मिक अत्याचारों की नीति के कारण अपने राज्य की बहुसंख्यक जनता की सहानुभूति खो दी थी और अच्छे शासन प्रबन्ध के प्रभाव को नष्ट कर दिया था।

राज सत्ता की खींचतान में विजयी सिकन्दर लोदी राजनीतिक दृष्टि से सम्पन्न और सुयोग्य होते हुए भी अपनी धर्मान्धता के कारण जनप्रिय नहीं हो सका। 1517 ई0 में उसकी मृत्यु के पश्चात उसके पुत्र इब्राहिम लोदी

को भी ईर्ष्या वैमनस्य की ज्वाला भड़कते हुए विविध विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इब्राहिम लोदी को भी ईर्ष्या वैमनस्य की ज्वाला भड़कते हुए विविध विद्रोहों का सामना करना पड़ा। इब्राहिम लोदी ने अमीरों का भी दमन किया। जिसके फलस्वरूप वे सब हृदय से उसके विरोधी बन गये। उसने चन्देरी में शेख हसन करमाली का वध करवा दिया इससे विद्रोहियों में असुरक्षा की मानना जागृत हुई। वे अपनी सहायता के लिए विरोधी शक्तिर्यों की ओर देखने लगे। पंजाब के सूबेदार दौलत खा ने विद्रोह कर दिया और मुगल शासक बाबर को पंजाब होते हुए दिल्ली पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। उधर दिलावर खां ने भी बाबर को इब्राहिम के विरूद्ध शक्ति प्रयोग का आमंत्रण दिया फलस्वरूप सन् 1526 ई0 में 29 अप्रैल को बाबर और इब्राहिम लोदी की सेनाओं में पानीपत का प्रथम पुष्ट हुआ और दीर्घकालीन दिल्ली सल्तनत का सूर्य अस्त हो गया। छोटे-छोटे राज्यों के लिए उन्होंने मुसलमानों को अपने ही बांधवों को नृशंसतापूर्वक रक्तपात देखा था। वीर राजपूतों को स्वाभिमानी, त्यागपूर्ण और योद्धा जीवन भी जायसी ने देखा था। इसीलिए मलिक मुहम्मद जायसी ने अपने महान काव्य ग्रंथ का नायक वीरप्रसू चित्तौड़ के रत्नसेन को बनाया था।

सौभाग्य से जायसी ने अपने जीवन के अंतिम दिनों मे और अपने महाकाव्य की पूर्णता एक शेरशाह सूर जैसा सुयोग्य शासक पा लिया था। सिकन्दर और इब्राहिम लोदी जैसे धर्मान्ध एवं असहिष्णु शासकों का स्तवन अस्वीकार करती हुयी इस कवि की वाणी जैसी किसी ऐसे 'शाहेवक्त' की

खोज कर रही थी। जिसकी प्रशस्ति में वह अपना शब्द वैभव लूटा सके और उसकी वह खोज पूरी हुयी। शेरशाह की प्रशंसा जायसी ने बड़े ही मनोयोग से की है।

> ''शेरशाह देहली सुल्तानु। चरिउ खण्ड जस भानू।।
> ओही छाज औ पाटा। सब राजे भुई धरा लिलाटा।।
> जाति सूर और खाड़े सूरा। और बुद्यिवंत सबै गुण पूरा।।
> सूर नबाए नव खण्ड बई। सातऊ उदीप दुनी सब नई।।
> दीन असीस मुहम्मद, करहु जुगहि जुग राज।।
> बादशाह तुम जागत के, जग तुम्हार मुहंताज।।

पूर्वमध्ययुगीन भारत विदेशियों द्वारा शासित था। वे भारत से स्वयं को आत्मसात नहीं कर सके थे। यही कारण है कि वह युग धर्म प्रेरित बर्बर राजनीतिक नृशंसता का युग था। भारत की मूल जनता हिन्दू थी जो इन शासकों के हाथों अपने को अपने धर्म को अपनी सांस्कृतिक परंपराओं को असामाजिक मर्यादाओं को असुरक्षित अनुभव कर रही थी। समाज में बढ़ती हुई मुसलमानों की संख्या और धर्मपरिवर्तन के निर्वाध कम में मुस्लिम समाज व्यवस्था पनप रही थी। हिन्दुओं का प्रयास अपने को सुरक्षित रखने का था। इसके लिए स्मृतियों और टिकाओं का सहारा लेकर अपने में सामंजस्य लाने का प्रयत्न कर रहे थे। वर्णाश्रम व्यवस्था और जीवन निर्वाह के साधन अपनाने में ढील दी जा रही थी।

हिन्दुओं के समान ही प्रायः मुस्लिम समाज की भी यही दशा थी बस अन्तर केवल इतना था कि मुस्लिम शासन होने के कारण उनमें हिन्दुओं जैसी असुरक्षा की भावना नहीं थी। शेख, पठान, मुगल व सैय्यद अपने से बाहर वालों में विवाह सम्बन्ध करने को तैयार न थे।

धार्मिक जातिगत और आर्थिक विषमता से पीड़ित तत्कालीन भारतीय समाज विश्रृंखल हो रहा था। उसके दैनिक जीवन और रहन-सहन, उत्सव, पर्व त्योहार आदि सब में यही विषमता विश्रृंखलता, वाह्य आडंबर, अन्ध विश्वास और पतनोन्नुमुखता घर कर गयी थी। इब्राहिम लोदी ने हिन्दू और मुसलमानों में वैमनस्य को बढ़ावा दिया। उसने अपनी कट्टरता के कारण जन असन्तोष और विद्रोह को जन्म दिया।

जायसी ने ऐसे ही विकृत समाज में जीवन बिताया। उनके मर्म भेदी दृष्टि ने यह भी अनुभव किया था कि तत्कालिन समाज अपनी धर्मगत, जातिगत, अर्थगत व अन्य सभी प्रकार की विषमताओं की लौह श्रृंखलता को तोड़ देने को छटपटा रहा था। कबीर ने अपने मंगलोन्नुमुखी अपनी पुष्पवाणी से इस पर तीक्ष्ण प्रहार किए थे। जायसी ने इस श्रृंखलाओं को प्रेम के ताप में पिघलाकर गला देने की चेष्टा की। उन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को प्रेम के उस अलौकिक पंत की दिव्य झांकी दिखायी जिसके अभाव में मनुष्य मुठ्ठी भर राख के अतिरिक्त कुछ भी नहीं।

"जो नहीं सीस प्रेम-पथ लावा। सो प्रिथिवी महं काहेक आवा।।

प्रेम-पंथ जो पहुँचे पारा। बहुरि न आई मिलै ऐहि छारा।।

मानुस प्रेम भयऊ बैकुंठी। नाहिं त काह छार भरि मुठी।।

यद्यपि जायसी कालीन भारतीय समाज में राजनीतिक उथल-पुथल और सामाजिक विश्रृंखलताओं का प्रभाव यहां की सांस्कृतिक परंपराओं पर अवश्य पड़ा था। हिन्दुओं के पर्व त्योहार और उत्सवों में अवरोध आ गया था। तथापि अक्षुण्ण भारतीय संस्कृतिक परंपरा जीवित थी। तत्कालीन सांस्कृतिक परंपराओं की झलक जायसी के 'पद्मावत' और 'मंझन' की 'मधुमालती' में क्रमशः राजा रत्नसेन और पद्मावती के विवाह प्रसंग में मिलती है। जायसी ने मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं के रीति-रिवाज, पर्व-उत्सव तथा विवाह आदि शुभ कार्यो का मनोहारी वर्णन किया है। जायसी ने लगन मण्डप, वर-वधु के ग्रन्थि बंधन तदुपरान्त सप्तपदि आदि का वर्णन हिन्दू परंपरा के अनुसार किया-

"कंचन कलस नीर भरि धरा। इन्द्र पानी आनी अपछारा।।

गांठी दुलह दुलहिन के जोरि। दुऔ जगत जो जाई न छोरी।।

वेद पढ़ै पंडित तेहि ढ़ाऊ। कन्या तुला राशि लेई नाऊ।।"

जायसी कवि थे, सूफी सन्त थे, हिन्दू मुस्लिम ऐक्य के आकांक्षी, उदारतापूर्ण, समन्वयवादी दृष्टिकोण के महापुरूष थे। उनकी रचनाएं जहां हिन्दी साहित्य को उनकी बहुमूल्य प्रदेय है। वही धर्म साधना और सामाजिक सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से भी उनका अपना महत्व है।

सहायक ग्रंथ सूची

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

लेखक का नाम		पुस्तक का नाम
1. अमरेश अमर बहादुर सिंह	:	कहरानामा और मसलानामा हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1992
2. कुलश्रेष्ठ, कमल	:	'हिन्दी प्रेमाख्यान काव्य' चौधरी मानसिंह प्रकाशन, अजमेर, 1953
3. गुप्त माताप्रसाद	:	'जायसी- ग्रंथाली', सम्पादक- डा0 माताप्रसाद गुप्त, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, 1952
4. गुप्त परमेश्वरी लाल	:	'कन्हावत' विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1981
5. चतुर्वेदी, परशुराम	:	भारतीय प्रेमाख्यान की परम्परा, इलाहाबाद, 1956
6. चतुर्वेदी परशुराम	:	'सूफी काव्य संग्रह' प्रयाग, शक 1880।
7. चतुर्वेदी, परशुराम	:	'हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान', हिन्दी-ग्रंथ रत्नाकर प्रा0 लि0, बम्बई, 1932
8. जयदेव (डा0)	:	'सूफी महाकवि जायसी, भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ़।
9. जायसी, मलिक मुहम्मद	:	'चित्ररेखा' सम्पादक- साहित्याचार्य पं0 शिवसहाय पाठक, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी 1959

10. जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पदमावत' व्याख्याकार- श्री वासुदेव शरण अग्रवाल, साहित्य-सदन, झाँसी, 2012

11. जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पदमावत' सम्पादक- डा0 मुंशीराम शर्मा मनोहर पब्लिकेशन कानपुर, 1958

12. जायसी, मलिक मुहम्मद : 'पद्मावत' सम्पादक- डा0 माताप्रसाद गुप्त, भारती-भण्डार, लीडरप्रेस, इलाहाबाद, 1963

13. जायसी, कल्बे मुस्तफा (उर्दू) : 'मलिक मुहम्मद जायसी' अंजुमन तरक्की उर्दू, देहली, सन् 1941

14. जैन, विमल कुमार : 'सूफीमत और हिंदी साहित्य', आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली 1955।

15. तिवारी, रामपूजन : 'जायसी' राधाकृष्णन प्रकाशन, दिल्ली, 1965

16. तिवारी, रामपूजन : 'सूफीमत साधना और साहित्य, ज्ञानमण्डल लिमिटेड, बनारस, संवत् 2013

17. त्रिगुणयत, गोविंद : 'जायसी का पद्मावत', अशोक प्रकाशन, दिल्ली, 1963

18. नारंग, इन्द्रचन्द्र : पद्मावत का ऐतिहासिक आधार, हिन्दी भवन, इलाहाबाद, 1956

19. नारंग, इन्द्रचन्द्र : 'पद्मावत-सार' लोकभारती, इलाहाबाद, 1957

20. पाण्डेय चन्द्रबली : तसब्बुफ अथवा सूफीमत, सरस्वती मन्दिर, बनारस, 1948

21. पाण्डेय, श्याममनोहर : 'मध्ययुगीन प्रेमाख्यान', मित्र प्रकाशन, प्रा0 लि0, इलाहाबाद, 1961

22. पाठक, शिवसहाय : मलिक मुहम्मद जायसी और उनका काव्य, ग्रन्थम, कानपुर, 1964

23. पाठक, शिवसहाय : 'कन्हावत' साहित्य भवन लि0 इलाहाबाद, 1981

24. शुक्ल, प्रभाकर : 'जायसी की भाषा' विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ, संवत् 2022 वि।

25. शुक्ल, रामचन्द्र : 'जायसी ग्रंथावली' नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, सं0 2013 वि0।

26. सक्सेना, सुधा : 'जायसी की बिम्ब योजना', अशोक प्रकाशन दिल्ली 1966।

27. सांकृत्यायन, राहुल : दक्खिनी हिन्दी-काव्यधारा, बिहार-राष्ट्र-भाषा-परिषद, पटना, 1959

28. साही, विजयदेव नारायण : 'जायसी', हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद 1983।

29. सिंह, डा0 कन्हैया : 'सूफीमत' वाणी प्रकाशन, दरियागंज दिल्ली 1993।

30. सिंह, डा0 कन्हैया : 'हिन्दी सूफी काव्य में हिदू संस्कृति' भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

31. आबूरिहान अलबरूनी : किताबुल हिन्द, अंग्रेजी अनुवाद, ई0 सखाऊ 'अलबरूनीज इण्डिया, लन्दन 1910

32. इब्नसूता : किताबुररेहला, जिल्द 4, संक्षिप्त, अंग्रेजी अनुवाद एच0ए0आर0 गेब, लदन 1929, अंग्रेजी अनुवाद जिल्द 2; आगा मेहदी हुसेन, बड़ौदा, 1953; उर्दू अनुवाद जिल्द 2; के0वी0 मौलवी मुहम्मद हुसेन, दिल्ली 1345, (हिजरी)

33. जियाउद्दीन बर्नी : तारीखे फीरोजशाही, सम्पादित सर सैय्यद अहमद खाँ, कलकत्ता, 1862

: फतवाये जहाँदारी, अंग्रेजी अनुवाद : प्रो0 मुहम्मद हबीब और डा0 अफसार सलीम खाँ, 'दि पोलिटिकल थ्योरी ऑफ दि देहली सल्तनत', अलीगढ़, 1969

34. निजामुद्दीन अहमद : तबफाते अकबरी, जिल्द 3, सम्पादित बी0के0 और मुहम्मद हिदायत हुसेन, कलकत्ता, 1913-27, 1931, 1941; अंग्रेजी अनुवाद बी0डे0 और बी0 प्रसाद, कलकत्ता, 1913-40

35. मलिक मुहम्मद जायसी : पद्मावत, सम्पादक, जी0 ए0 ग्रियर्सन और एस0 द्विवेदी, कलकत्ता, 1886-1911

36. गौरीशंकर हीराचंद ओझा : राजपूताना का इतिहास, अजमेर 1927 मध्य कालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, 1951

37. जयशंकर मिश्र : ग्यारहवीं सदी का भारत, वाराणसी, 1970

38. सैय्यद अतहर अब्बास रिजयी : आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़, 1956

: उत्तर तैमूर कालीन भारत , जिल्द 2, अलीगढ़, 1956-57

: खल्जी कालीन भरत, अलीगढ़, 1955

: तुगलक कालीन भारत, जिल्द 2, 1956-57

39. आर0 सी0 मजूमदार : दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ दि इण्डियन पीपुल, जिल्द 4, 5 और 6, भारतीय विद्या-भवन बम्बई, 1947-67

40. आर0 के0 मुकर्जी : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डियन शिपिंग एण्ड मारटाइम एक्टिविटी फ्राम दि अर्लियेस्ट टाइम्स, बम्बई 1912

41. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव : अकबर दि ग्रेट, जिल्द 2, आगरा, 1967 मेडिवल इण्डियन कल्चर, आगरा, 1964 दि फर्स्ट पु नयाब्स ऑफ अवध, लखनऊ, 1933

42. आगा मेहदी हुसेन : तुगलुक डायनेस्टी, कलकत्ता, 1963

43. इलियट एण्ड डाउसन : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया ऐज टोल्ड बाइ इट्स ओन हिस्टोरियस, जिल्द 8, लन्दन 1887, पुनः मुद्रण, किताब महल, इलाहाबाद, 1964

44. ई0 बी0 हेवेल : इण्डियन आर्कटैक्चर, लन्दन 1915

45. पी0 एन0 प्रभु : हिदू सोशल आर्गनाइजेशन, बम्बई, 1958

46. ए0सी0 बनर्जी : राजपूत स्टडीज, कलकत्ता, 1944

47. एम0 एलफिन्सटन : हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, लन्दन, 1857

48. एलिजाबेथ कपूर : दि हरेम एण्ड दि पर्दा, लन्दन, 1915

49. एच0 ए0 आर0 गिब्स एण्ड : इस्लामिक सोसाइटी एण्ड दि हराल्ड बोवेन बेस्ट, जिल्द 1, भाग 2; लदन, 1957

50. एच0 जी0 रालिंसन : ए शार्ट कल्चरल हिस्ट्री सम्पादक सेलिगमैन, लन्दन, 1937

51. कालिका रंजन कानूनगो : शेरशाह एण्ड हिज टाइम्स, कलकत्ता,

52. 1865के0 एस0 आयंगर : सम कन्ट्रीब्यूशन ऑफ साउथ इण्डिया टु इण्डियन कल्चर, कलकत्ता, 1923

53. के0 एम0 कपाडिया : मेरिज एण्ड फैमिली इन इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1958

54. जी0 टी0 गैरट : लिगेसी ऑफ इण्डिया, आक्सफोर्ड, 1937

55. जे0 फरगूसन : हिस्ट्र ऑफ इण्डियन एण्ड ईस्टर्न आर्कीटैक्चर , जिल्द 2, लन्दन 1910

56. डब्ल्यू अर्सकीन : ए हिस्ट्री ऑफ इण्डिया अण्डर बाबर एण्ड हुमायूँ, जिल्द 2, लन्दन, 1854

57. डब्ल्यू0 हेग : कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इण्डिया, जिल्द 3, 1928

58. ताराचन्द्र : इनफ्लूयेन्स ऑफ इस्लाम आन इण्डियन कल्चर, इलाहाबाद, 1963

59. पी0 बी0 काणे : हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र, जिल्द 5, पूना, 1930, 1963

60. पी0 एन0ओझा : सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ नार्दन इण्डियन सोशल लाइफ, पटा, 1961

61. बी0 पी0 मजुमदार : सोशियो-इकनामिक हिस्ट्री ऑफ नार्दन इण्डिया, (1030-1194 ए0डी0) कलकत्ता, 1961

62. बी0 ए0 सेलीटोर : सोशल एण्ड पोलिटिकल लाइफ इन दि विजयनगर एम्पायर (1346-1646) जिल्द, 2, मद्रास, 1934

63. बी0 एस0 निज्जर : पंजाब अण्डर दि सुल्तन्स (1000-1526), दिल्ली, 1968

64. मोहम्मद हबीब : सुल्तान महमूद ऑफ गजनीन, दिल्ली, 1951

65. मोहम्मद हबीब एण्ड : पोलिटिकल थ्योरी ऑफ दि देहली अफसार सलीम खाँ सल्तनत, दिल्ली

66. यू0 एन0 घोषाल : स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, कलकत्ता, 1957

67. आई0 एच0 सिद्दिकी : दि नाबिलिटी अण्डर दि खल्जी सुल्तान्स', इस्लामिक कल्चर, जनवरी 1963, जिल्द 37

68. इरफान हबीब : जमीनदार इन दि आइन इण्डियन हिस्ट्री कांग्रेस, 1958

69. कन्हैयालाल श्रीवास्तव : दि नोबिलिटी अण्डर कुतबुद्दीन ऐबक एण्ड इल्तुतमिश (1206-1236), प्रज्ञाः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, जिल 16, भाग 2, मार्च, 1971
'नोबिलिटी अण्डर दि ममलूक सुल्तान्स ऑफ देहली,
प्रज्ञा : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका, जिल्द 18, भाग 2, मार्च, 1973

70. डा0 झारखण्डे चौबे : मध्ययुगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति, हिकी ग्रंथ अकादमी, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ, 1990

71. अवध बिहारी पाण्डेय : पूर्व मध्यकालीन भारत, अलीगढ़ पं0

72. जवाहर लाल नेहरू : डिस्कवरी आफ इण्डिया।

ग्रन्थ सूची

1. अकबरनामा (अबुल फजल)
2. आईन-ए-अकबरी (अबुल फजल)
3. इकबालनामा (3 भागों में)- बक्शी मुतामिद खां
4. इजाज-ए-खुतरवी, जिल्द-2
5. खुलासात-उत-तवारीख
6. तबकात-ए-अकबरी (3 भाग) (निजामुद्दीन अहमद)
7. तबकात-ए-दौलत-ए-शेरशाही (हसन अली खां)
8. तहकीक-ए-हिन्द (अलबरूनी)
9. ताज-उल-मसिर (स0मु0 हसन निजामी)
10. ताजकीरात-उल-वाकिया (जौहर आफतावची)
11. तारीख-ए-गुजरात (मीर अबूतुखवली)
12. तारीख-ए-दाऊदी (अब्दुल्ला)
13. तारीख-ए-फीरोजशाही (फिरिश्ता)
14. तारीख-ए-फीरोजशाही (जिआउद्दीन बरनी)
15. तारीख-ए-फीरोजशाही (शम्स-सिराज-अफीफ)
16. तारीख-ए-बंगला (बंगाल का इतिहास) : सलीमुल्ला
17. तारीख-ए-बदायूनी (अब्दुल कादिर बदायूंनी)
18. तारीख-ए-मुबारकशाही (याहिन-बिन-अहमद)
19. तारीख-ए-मुश्ताकी (शेख रिजाकउल्ला)

20. तारीख-ए-मुहमद कुतुबशाही (गोलकुण्डा का इतिहास) : हबीबुल्ला
21. तारीख-ए-रशीदी (मिर्जा मुहम्मद हैदर)
22. तारीख-ए-शेरशाही (अब्बास खां सारबानी)
23. तारीख-ए-सलातीन-एअफगाना (अहमद यादगार)
24. तारीख-ए-सिंध (मीर मुहम्मद मासूम)
25. तुजुक-ए-जहांगीरी (जहांगीर)-इसे पूरा किया बक्शी मुतामिद खां ने
26. तुजुक-ए-बाबरी (बाबर)
27. नुसखा-ए-दिलकुशां (भीमसेन)
28. पादशाहनामा (अबुल हमीद लाहौरी)- दो भाग
29. पादशाहनामा (3 भाग)-मुहम्मद अमीन काजबिन
30. पादशाहनामा (मुहम्मद वारिस)
31. फुतुह-उस-सलातीन (ख्वाजा अब्दुल्ला मलिक इसामी)
32. फुतुहात-ए-फीरोजशाही (सुल्तान फीरोजशाह तुगलक)
33. बाबरनामा (बाबर: तुजुक-ए-बाबरी)
34. मनूची, जिल्द-2
35. मालफुजात-ए-तिमूरी
36 मीरात-ए- अहमदी
37. मुखजान-ए-अफगानी (निमायत उल्ला)
38. मुन्तखाब-उल-लबाब या तारीख-ए-खफीखां (हाशिम खफीखां)
39. मुहमदनामा (बीजापुर का इतिहास) : जहुर-बिना-जाहौरी

40. रियाज-उस-सलातीन (गुलाम हुसैन सलीम)

41. वाकियात-ए-मुश्ताकी (शेख रिजाक उल्ला मुश्ताकी)

42. सीरत-ए-आर्मदी (गुजरात का इतिहास)

43. सीरत-ए-फीरोजशाही (अज्ञात)

44. हुमायूंनामा-गुलबदां बेगम

अरबी, तुर्की, फारसी, उर्दू ग्रंथ (लेखकः सरनेम क्रम से)

45. अफीफ, शम्स सिराज : तारीखे फीरोजशाही, कलकत्ता, 1890, सम्पादित विलायत हुसेन, कलकत्ता, 1888-91

46. अफीफ, शम्स सिराज : तारीखे फिरोजशाही (हिन्दी अनु0) सैयद अतहर अब्बास रिजवी

47. अबुल फजल : आइने अकबरी अंग्रेजी अनुवाद एच0 ब्लाकमैन, जिल्द 1, कलकत्ता, 1867-69, एच0 एस0 जैरेट, जिल्द 2 व 3, 1868-94

48. अबुल फजल : अकबरनामा

49. अबुल हमीद लाहौरी : पादशाहनामा (दो भाग)

50. अबू तालिब हुसैनी, (अनुवादक) : मालफुजात-ए-तिमूरी (तुर्की भाषा)

51. अब्दुल कादिर बदायूनी : तारीख-ए-बदायूंनी (3 भाग)

52. अब्दुल्ला (उर्दू) : आदाबियाते फारसी में हिन्दुओं का हिस्सा, दिल्ली, 1942

53. अब्दुल्ला : तारीख-ए-दाऊदी

54. अब्बास खां सारबानी : तारीख-ए-शेरशाही

55. आबूरिहान अलबरूनी : किताबुल हिन्द, अंग्रेजी अनुवाद, ई सखाऊ अलबरूनीज इण्डिया, लन्दन, 1910

56. अली मुहम्मद खां : सीरत-ए-आर्मदी (गुजरात का इतिहास)

57. अली, अहमद और लीस (सम्पा0): अब्दुल बदायूंनी कृत 'मुन्तखबुत्तवारीख, जिल्द 3

58. अहमद, निजामुद्दीन : तबकाते अकबरी, जिल्द 3, सम्पादित बी0डे0 और मुहम्मद हिदायत हुसेन, कलकत्ता, 1913-27, 1931, 1941, अंग्रेजी अनुवाद, बी0डे0 और बी0 प्रसाद, कलकत्ता, 1913-40

59. अहमद यादगार : तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना

60. अहमद, लीस और अली (सम्पा0) : अब्दुल कादिर बदायूंनी कृत मुन्तखाबुत्तवारीख, जिल्द 3

61. इरफान हबीब : दि एग्रेरियन सिस्टम आफ मुगल इंडिया

62. ईसामी : फुतूहुसलातीन, सम्पादित, आगा मेंहदी हुसेन, आगरा, 1938, सम्पादित एम0 उषा, मद्रास, 1948

63. एसामी, फतूहुस्सलातीन

64. खां, मुहम्मद हासिम खाफी: मुन्तखाबुललुबाब, कलकत्ता, 1874

65. खां, सर सैय्यद अहमद (सम्पा0) : जियाउद्दीन बरनी का 'तारीखे फीरोजशाही' कलकत्ता 1862

66. खां, सैय्यद अहमद : सामारूससनादीद, दिल्ली, 1854

67. खां, मु0 हासिम खाफी: मुन्तखाबुललुआब

68. खुसरो, अमीर : हश्त बिहिश्त, अलीगढ़ 1981

: इजाजते खुसरवी, लखनऊ, 1875-76

: किरानुस्सदायन, लखनऊ, 1884

: खजायनुलफुतूह, सम्पादित माइनुलहक, अलीगढ़, 1918

: मजनूं लैला, सम्पादित मौलाना हबीबुर्रहमान खां शेरवानी, अलीगढ़, 1335 (हिजरी)

: देवलरानी खिज्र खां, सम्पादित रशीद अहमद सलीम, अलीगढ़, 1917

: मिफताहुल फुतूह (हिन्दी अनु0) सैयद अतहर अब्बास रिजवी

: तुगलुकनामा, सम्पादित सैयद हाशिम फरीदाबादी, औरंगाबाद, 1933

69. ख्वाजा अब्दुला मलिक इसामी : फतुह-उस-सलातीन

70. गुलबदा बेगम : हुमायूंनामा

71. गुलाम हसन सलीम : रियाज-उस-सलातीन (बंगाल का इतिहास)

72. जकाउल्ला: तारीखे हिन्दुस्तान, जिल्द-3, दिल्ली, 1875

73. जहांगीर : तुजुक-ए-जहांगीरी (इसे पूरा किया-बक्शी, मुतामिद खां), अंग्रेजी अनुवाद-ए रोजर्स एण्ड एस0 बेवरिज

74. जाहौरी, जहुर-बिन: मुहम्मदनामा (बीजापुर का इतिहास)

जियाउद्दीन बरनी देखें बरनी, जियाउद्दीन

75. जौहर अफताबची: ताजकीरात-उल-वाकियात

76. तुगलक, फीरोजशाह: फुतुहाते फीरोजशाही, अलीगढ़, 1943, अंग्रेजी अनु0 शेख अब्दुर रशीद और एम0ए0 मखदूमी, हिन्दी अनुवाद, एम0 उमर अलीगढ़, 1957

77. नदवी, मौलवी अबुल हसनत: हिन्दुस्तान के कादिम इस्लामी, अलीगढ़, 132-37 (हिजरी)

78. अहमद, निजामुद्दीन : तबकात-ए-अकबरी (3 भाग)

79. नियामतउल्ला : मुखजान-ए-अफगानी

80. फक्र-ए-मुदब्बिर

81. फरिश्ता, मोहम्मद कासिम: तारीखे फरिश्ता, लखनऊ

82. फरीदाबादी, सैयद हाशिम (सम्पा0) : अमीर खुसरा कृत तुगलकनामा, औरंगाबाद 1933

83. फवायेदुलफवाद: (उर्दू) शेख निजामुद्दीन औलिया का संभाषण, संग्रहीत, अमीर-हसनआला सिजी, लखनऊ, 1303 (हिजरी)

<u>फीरोजशाह तुगलक देखें तुगलक, फीरोजशाह</u>

84. खां, बक्शी मुतामिद : इकबालनामा (3 भाग)

85. खां, बक्शी मुतामिद (ने पूरा किया)- जहांगीर: तुजुक-ए-जहांगीरी

86. बदायूंनी, अब्दुल कादिर : मुन्तखाबुत्तवारीख, सम्पादित लीस, अहमद और अली, जिल्द 3, अंग्रेजी अनु0 जिल्द 1, रैकिंग, जिल्द-2, लोव, जिल्द-3, हेग, कलकत्ता, 1884-1925

87. बदायूंनी, अब्दुल कादिर : मुन्तखाबुत्तवारीख (फारसी सम्पा0), अहमद अली एवं लीस, बिब्लियोथेका इंडिका, कलकत्ता, (1864-67 अंग्रेजी अनु0) जी0एस0ए0 रेकिंग, भाग 1, डब्ल्यू एच0लोवे (रिवाइज्ट एवं एनलार्ज सम्पा0), बी0पी0 अम्बेष्ठ, भाग 2, वुल्जे हैग, भाग 3, पटना

88. बरनी, जियाउद्दीन : फतवाये जहांदारी, अंग्रेजी अनु0 प्रो0 मुहम्मद हबीब और डॉ0 अफसार सलीम खां ''दि पोलिटिकल थ्योरी ऑफ दि देहली सल्तनत'', अलीगढ़, 1969

89. बरनी, जियाउद्दीन : तारीखे फीरोजशाह, सम्पा0 सर सैय्यद अहमद खां, कलकत्ता, 1862

90. बरनी, जियाउद्दीन : तारीखे-ए-फीरोजशाही (अंग्रेजी अनु0 इलियट-डाउसन)

91. बाबर : तुजुके बाबरी, (बाबर की आत्मकथा), अंग्रेजी अनु0 जे0 लीडन और अर्सकीन आक्सफोड, 1921

92. बाबरः तुजुके बाबरी (बाबरनामा) अंग्रेजी अनु0-ए0एस0 बेवरिज

93. बारबोसा, जिल्द-1

94. बेगम, गुलबदांः हुमायूंनामा, सम्पा0 श्रीमती बेवरिज, रायल एशियाटिक सोसाइटी, 1902

95. भीमसेन : नुसखा-ए-दिलकुशा

96. मलफुजान-ए-तैमूरी

97. मिनहाजुससिराजः तबकाते नासिरी, सम्पा0 लीस, खादिम हुसेन और अदुब्लहई, कलकत्ता, 1863-64, अंग्रेजी अनु0 एच0जी0 रेवर्टी, जिल्द 2, कलकत्ता, 1873-77

98. मिनहाजुससिराजः तबकाते नासिरी, (अंग्रेजी अनु0-इलियट, डाउसन)

99. तुरबवली, मीर अबूः तारीख-ए-गुजरात (गुजरात का इतिहास)

100. हैदर, मिर्जा मोहम्मदः तारीख-ए-रशीदी

101. हैदर, मिर्जा मोहम्मदः तारीख-ए-रशीदी (कश्मीर का इतिहास)

102. मासूम, मीर मुहम्मद : तारीख-ए-सिंध (सिंध का इतिहास)

103. मैन्सी, मुहनोतः ख्यात, जिल्द-2, हिन्दी अनु0, आर0एन0 डूगर, सम्पा0 मौ0सी0 ओझा, ना0 प्र0 सभा बनाम 1982

104. काजविन, मुहम्मद अमीनः पादशाहनामा (3भाग)- शाहजहां काल का इतिहास

105. वारिस, मुहम्मदः पादशाहनामा

106. मोइनुलहक (सम्पा0): अमीर खुसरो कृत 'खजायनुलह?फुतुह', अलीगढ़ 1918

107. यादगार, अहमदः तारीखे सलातीने अफगाना, सम्पा0 हिदायत हुसेन, कलकत्ता, 1939

108. याहिया-बिन-अहमदः तारीख-ए-मुबारकशाही

109. युसूफ, आबूः किताबुलखराज, काहिरा, 1884

110. रसीदुद्दीनः सम्पा0 इलियट अनु0

111. लीस, खादिम हुसैन और अब्दुल हई (सम्पा) : मिनहाजुससिराज कृत 'तबकाते नासिरी', कलकत्ता, 1863-64

112. अफीफ, शम्स-ए-सिराजः तारीख-ए-फीरोजशाही

113. उमरी, शिहाबुद्दीन अल-मसालिकुल अवसार की ममालिकुल अमसार

114. उमरी, शिहाबुद्दीन अल-मसालिकुल अवसार की ममालिकुल अमसार (हिन्दी अनु0) सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी

115. रिजाक उल्ला, सेखः तारीख-ए-मुश्ताकी

116. रिजाक उल्ला, शेख : वाकिया-ए-मुश्ताकी

117. रिजाक उल्ला, शेखः वाकिया-ए-मुश्ताकी

118. शेरवानी, मौलाना हबीबुर्रहमान खां (सम्पा0): अमीर खुसरो कृत मजनूं लैला' अलीगढ़ 135 हिजरी

119. सरवानी, अब्बास खांः तारीखे शेरशाही (हिन्दी अनु0), एस0बी0पी0 निगम,

120. सरहिन्दी, याह्याबिन अहमदः तारीखे मुबारकशाही, सम्पा0 हिदायत हुसेन, कलकत्ता, 1931, अंग्रेजी अनु0 के0के0 बसु, बड़ोदा, 1932

121. सलीम, रसीद अहमद (सम्पा0) : अमीर खुसरो कृत 'देवलरानी खिजखाँ, अलीगढ़ 1917

122. सलीमुल्लाः तारीख-ए-बंगला (बंगाल का इतिहास)

123. याजिद, सारफ-उद्दीन अलीः जफरनामा (मालफूजात क्रीनकल)

सिराज अफीफ देखें शम्स अफीफ

124. सिराज, मिनहाजुद्दीन : तबकाते नासिरी (हिन्दी अनु0) सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी

125. खत्री, खुजान राय : खुलासात-उल-तवारीख

126. हई, अब्दुल, हुसैन खादिम और लीस (सम्पा0) : मिनहाजुससिराज कृत 'तबकाते नासिरी', कलकत्ता 1863-64

127. हबीबुल्ला: तारीख-ए-मुहमद कुतुबशाही (गोलकुण्डा का इतिहास)

128. खां, हसन अली: तवारीख-ए-दौलत-ए-शेरशाही

129. निजामी हसन, स0 मु0 : ताज-उल-मासिर (अंग्रेजी अनु0 इलियट-डाउसन)

130. हाजीउद-दबीर: जफरूलवालेह बि0 मुजफ्फर वा0 आलिह, सम्पा0 अंग्रेजी अनु0, ई0डी0 रास, 'एन0 अरेबिक हिस्ट्री ऑफ गुजरात, लन्दन 1921

131. खां, हाशिम खफी: मुन्तखाब-उल-लबाब (तारीख-ए-खफीखां)

132. हुसेन, आगा मेहंदी (सम्पा0): ईसामी कृत 'फुतूहुस्सलातीन', आगरा, 1938

133. हुसेन, के0वी0 मौलवी (अनु0): इब्नबतूता कृत 'किताबुर्रहला, खिलजी, 1343 हिजरी, जिल्द-2

134. हुसेन, खादिम, लीस और अब्दुल हई (सम्पा0): मिनहाजुससिराज कृत 'तबकाते नासिरी', कलकत्ता, 1863-64

135. हुसेन, मुहम्मद हिदायत (सम्पा0): निजामुद्दीन अहमद कृत 'तबकाते अकबरी' जिल्द-3, कलकत्ता 1913-27, 1931, 1941

136. हुसेन, विलायत (सम्पा0): शम्ससीराज अफीफ कृत तारीख-ए-फीरोजशाही कलकत्ता, 1888-91

137. हुसेन, हिदायत (सम्पा0) :अहमद यादगार कृत 'तारीख-ए-सलातीन-ए-अफगाना, कलकत्ता, 1939

138. हुसेन, हिदायत (सम्पा0): याह्या बिन अहमद हिन्दी कृत 'तारीा-ए-मुबारकशाही, कलकत्ता, 1931

139. मलिक, हैदर : तारीख-ए-कश्मीर (कश्मीर का इतिहास)

संस्कृत ग्रंथ (शीर्षक क्रम से)

140. अपरार्कः याज्ञवलक्य स्मृति पर भाष्य, पूना, 1903

141. उपनिषद्ः उपनिषद्, निर्णयसागर प्रेस, बम्बई, गीता प्रेस, गोरखपुर : बृहदारण्यक उपनिषद, छांदोग्य उपनिषद्, ईसावास्य उपनिषद्, प्रश्न उपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद्, केन उपनिषद् कठ उपनिषद श्वेताश्वे उपनिषद, केन उपनिषद् कठ उपनिषद, श्वेताश्वे उपनिषद्, तैत्तिरीय उपनिषद्

142. कामन्दक नीतिसारः सम्पा0 आर0 मित्र, कलकत्ता, 1884

143. धर्मसूत्र-गौतम धर्मसूत्र-हरदत्त टीका सहित, आन्नादाश्रम संस्कृत सीरीज, 1910- विष्णुधर्मसूत्र, सम्पा0 जोली कलकत्ता, 1881

144. पुराणः भागवतपुराण, श्रीधर टीका सहित, कलकत्ता

145. महाभारतः नीलकण्ठ का टीका सहित, पूना 1929-33

146. शुक्रनीतिसारः मद्रास, 1882, अंग्रेजी अनु0 एम0एन0 दत्ता, कलकत्ता, 1896

स्मृतियां

147. कात्यायन स्मृतिः सम्पा0 नारायण चन्द्र, बन्धोपाध्याय, कलकत्ता, 1917

148. नारद स्मृतिः सम्पा0 जोली, कलकत्ता, 1885

149. पराशर स्मृतिः बम्बई, 1911

150. मनु स्मृतिः कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, बम्बई, 1946

:मेधातिथि की टीका के साथ, कलकत्ता, 1932

151. याज्ञवल्क्य स्मृति के नाम पर भाष्य-अपरार्क

लेखक क्रम से

152. कल्हणः राजतरंगिणी, एम0ए0 स्टीन, जिल्द-2, 1900, वाराणसी 1961, आर0एस0 पंडित, 1935

153. कौटिल्य : अर्थशास्त्र, सम्पा0 आर0 शामाशास्त्री, मैसूर, 1919

154. कौटिल्यः अर्थशास्त्र, सम्पा0 वाचस्पति गेरोला

155. क्षेमेन्द्रः कला-विलास

156. क्षेमेन्द्र : दशोपदेश

157. चण्डेश्वरः स्मृति रत्नकार, कृत्य रत्नाकर, सम0, पंडित कमला कृष्ण, स्मृति तीर्थ, कलकत्ता, 1925

: विवाद रत्नाकर, सम्पा0, पंडित दीनानाथ विद्यालंकार, कलकत्ता, 1887, अंग्रेजी अनु0, जी0सी0 सरकार और डी0 चटर्जी, कलकत्त, 1899

158. पाणिनिः अष्ठाध्यायी, निर्णयसागर प्रेस, 1929

159. बाणभट्ट: हर्ष चरित, अनुवाद कावेल और टामस, 1897

160. बाणभट्ट: कादम्बरी, सम्पादक रामचन्द्र काले, बम्बई

161. भोज: समरांगणसूत्रधार और योगसूत्र, सम्पादक ढुण्डिराज शास्त्री, वाराणसी, 1930

162. भोज: युक्ति कल्पतरू, कलकत्ता, 1917

163. राजशेखर: कर्पूरमंजरी, कलकत्ता, 1948

164. रासमाला: सम्पादक, एच0जी0 रालिन्सन, आक्सफोर्ड, 1924

165. लक्ष्मीधर: कृत्य कल्पतरू, 11 खण्ड, बड़ोदा, 1941-53

166. बाल्मीकि: रामायण, मद्रास 1938

167. अब्दुल्ला: आदाबियाते फारसी में हिन्दुओं का हिस्सा, दिल्ली, 1942

हिन्दी

168. अली, एम0अतहर : औरंगजेब कालीन मुगल अमीर वर्ग, अनु0-डा0 राधेश्याम

169. अहमद, लइक: भारतीय संस्कृति

170. इब्नबतूता: रिहेला (भारत से सम्बन्धित यात्रा विवरण), हिन्दी अनु0, सैय्यद अतहर अब्बास रिजवी, अंग्रेजी अनु0-मेहदी हुसेन

171. प्रसाद, ईश्वरी: भारतीय मध्ययुग का इतिहास

172. प्रसाद, ईश्वरी: मध्ययुग का इतिहास

173. उमर, एम0 (अनु0): फीरोजशाह तुगलक कृत 'फुतुहाते फीरोजशाही' अलीगढ़, 1956

174. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र (सम्पा0, हिन्दी में): मुहनोत नैन्सी कृत ख्यात, जिल्द 2, हिन्दी अनु0- आर0एन0 डूगर, ना0 प्र0 सभा, वा0, सं0, 1982

175. ओझा, गौरीशंकर हीराचद्रः राजपूताना का इतिहास, अजमेर, 1927

176. ओझा, गौरीशंकर हीराचन्द्र : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद, 1951

177. औलिया, शेख निजामुऊीन : फवायेदुलफुवाद (शेख निजामुद्दीन औलिया का सम्भाषण), संग्रहीत, अमीर हसन आला सिजी, लखनऊ, 1303 हिजरी

178. कादिरी, असगर अलीः हिन्दू-मुस्लिम स्थापत्यशैली आगरा, 1963

179. कुल्लूक भट्ट (टीकाकार) : मनु स्मृति- कुल्लूक भट्ट की टीका सहित, बम्बई, 1916

180. खां, मोहम्मद अलीः गुजरात का इतिहास (सीरत-ए-आर्मदी)

181. खुराना, डॉ0 के0 एल0 : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

182. चन्द बरदाई : पृथ्वीराज रासो, सम्पा0, एम0बी0 पाण्ड्या और एस0एस0दास, बनारस, 1904

183. जायसी, मलिक मुहम्मद : पद्मावत, सम्पा0 जी0ए0 ग्रियर्सन और एस0 द्विवेदी, कलकत्ता, 1886-1911

184. जौहरी, जदूर-बिनः मुहम्मदनामा (बीजापुर का इतिहास)

185. जोशी, उमेशः भारतीय संगीत का इतिहास, फिरोजाबाद, 1957

186. टेवरनियर की भारतीय यात्राएं

187. डूगर, आर0एम0 (हिन्दी अनुवादक) : मुहनोत नैन्सी कृत ख्यात्, जिल्द-2, सम्पादक-गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, ना0 प्र0 सभा0 वा0, सं0 1982

188. ढुण्ढि़राज (सम्पा0) : भोज कृत समरांगणसूत्रधार और योगसूत्र वारा0, 1930

189. तुलसीदास, कवितावली-टीकाकार पंडित चन्द्रशेखर शास्त्री

190. तुलसीदास, रामचरित मानस-टीकाकार हनुमाद प्रसाद

191. दिनकर, डॉ0 रामधारी सिंह : संस्कृति के चार अध्याय

192. निगम, एस0 वी0 पी0 (अनु0) : सूरवंश का इतिहास, 1973

193. नीककण्ठ शास्त्री, के0एस0: दक्षिण भारत का इतिहास, अनूदित डॉ0 वीरेन्द्र वर्मा

194. नैन्सी, मुहनोत: ख्यात्, जिल्द-2 हिन्दी अनु0- आर0एन0 डूगर, सम्पा0-गौरीशंकर, हीराचन्द्र ओझा, ना0 प्र0 सभा, वा0 सं0 1982

195. पाण्ड्या, एम0वी0 और दास, एस0एस0 (सम्पा0) : चद्रबरदाई कृत पृथ्वीराज रासा, वा0 1904

196. पांडेय, अवध बिहारी :पूर्व मध्यकालीन भारत

197. पांथरी, प्रो0 भगवती प्रसाद : यवन इतिहासकारों का भारत वर्णन

198. परमात्माशरण : मुगलों का प्रांतीय शासन

199. बिहारी, सतसई-बिहारी: सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र

200. भार्गव, वी0एसव0 : मध्यकालीन भारतीय इतिहास

201. भार्गव, वी0एस0 : मारवाड़ से मुगलों का सम्बन्ध

202. भार्गव वी0एस0 : भारतीय इतिहास (प्राचीन काल से 1757 ई0 तक)

203. मतीराम : मतीराम ग्रंथावली, सं0 कृष्ण बिहारी व ब्रज किशोर मिश्र

204. मिर्जाहैदर : तारीख-ए-रशीदी, (कश्मीर का इतिहास)

205. मिश्र, जयशंकर : 11वीं सदी का भारत, वा0, 1970

206. मिश्र, जयशंकर : प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, घटना, 1974

207. मीर अबू तुखवली : गुजरात का इतिहास (तारीख-ए-गुजरात)

208. मीर मुहमद मासूम : तारीख-ए-सिंध (सिंध का इतिहास)

209. मुहनोत नैन्सी : नैन्सी री ख्यात्, 3 भाग, शाहजहां काल का इतिहास

210. मुहम्म्द अमीन कासविन : पादशाहनामा (3भाग), शाहजहां काल का इतिहास

211. मेधातिथि (टीकाकार) : मनु स्मृति- मेधातिथि की टीका सहित, कलकत्ता, 1932

212. डॉ0 रामनाथ : मध्यकालीन भारतीय कलाएं और उनका विकास

213. राधेशरण : भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूल तत्व

214. रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास, खलजी कालीन भारत

215. रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास : आदि तुर्क कालीन भारत, अलीगढ़, 1956

216. रिजवी सैय्यद अतहर अब्बास : उत्तर तैमूर कालीन भारत, जिल्द-2, अलीगढ़, 1956-57

217. रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास : खलजी कालीन भारत, 1955

218. रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास : तुगलुक कालीन भारत, जिल्द 2, 1956-57

219. रिजवी, सैय्यद अतहर अब्बास : तुगलक कालीन भारत

220. लइक अहमद : भारतीय संस्कृति, इलाहाबाद

221. विद्यालंकार, दीनानाथ (सम्पा0) : विवाद रत्नाकर, कलकत्ता, 1887

223. शर्मा, एल0पी0 मध्यकालीन भारत

224. शर्मा, गोपीनाथ: मेवाड़-मुगल सम्बन्ध

225. शर्मा, डॉ0 घनश्यामदत्त: मध्यकालीन भारतीय सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक संस्थाएं

226. शेरानी, महमूद : पंजाब में उर्दू लाहौर, 1928

227. श्रीवास्तव, डॉ0 आशीर्वादी लाल : मध्यकालीन भारतीय संस्कृति

228. श्रीवास्तव, डॉ0 के0 एस0 और चौबे, झारखण्डे: मध्यकालीन भारतीय समाज एवं संस्कृति

229. श्याम लाल : वीर-विनोद, उदयपुर

230. सक्सेना, बनारसी प्रसाद : मुगल सम्राट शाहजहां

231. सतीश चन्द्र : उत्तर मुगलकालीन भारत

232. सफीनतुलऔलिया : द्वारा दउराशिकोह, लखनऊ, 1972

233. सरकार, जदुनाथ : मुगल शासन पद्धति

234. सलीम, गुलाम हसन: रियाज-उस-सलातीन(बंगाल का इतिहास)

235. सलीमुल्ला : तारीख-ए-बंगला (बंगाल का इतिहास)

236. सिजी, अमीर हसन आला (संकलन) : फवायेदुलफुवाद कृत शेख निजामुद्दीन औलिया का सम्पादन, लखनऊ, 1303 हिजरी

237. सिंह, ओम प्रकाश : भारत का आर्थिक इतिहास (मुगलकाल), 1996

238. सिद्दीकी, नोमन अहमद : मुगलकालीन भू-राजस्व प्रशासन

239. सिन्हा, सार्वित्री: मध्यकालीन हिन्दी कवयित्रियां, दिल्ली, 1953

240. सुखदेव : वाणिज्य नीति

241. हबीब, इरफान : मध्यकालीन भारत

242. हबीबुल्ला : गोलकुण्डा का इतिहास (तारीख-ए-मुहम्मद कुतुबशाही)

243. हैदर, मलिक : कश्मीर का इतिहास (तारीख-ए-कश्मीर)

अंग्रेजी ग्रंथ (लेखक क्रम से, सरनेम)

1. Ahmad, Nizamudding : Tabkat-I-Akbari English Translation by B. De, 3 Vols. Calcutta-1913-1940
2. Ahmad, Yadgar : Tarikh-I-Shahi, Tarikh-I-Salatin-I-Afghana Translated into Hindi by S.A.A. Abbas Rizvi in Uttar Taimur Kalin Bharat Voll-II
3. Al, Utbi : Tarikh-I-Yamini, Extracts Translated into English by Elliot and Dowson inHistory of India as told by its own Historians. Vol.II (Aligarh Edition)
4. Ansari, K.M. : Life and Conditions of the People of Hindustan
5. Ali, M. Athar : The Mughal Nobility Under Aurangzeb
6. Arnol, Sir Thomos W. : The Caliphate, First Published in 1924, Resumed with an additional chapter in 1965
7. Ashraf, Dr. K.M. : Life and condition ofthe people of Hindustan
8. Asir, Ibn : i) Kamil-ut-Tawarikh Translated into English by Bulak

		ii)	Translated into English by Elliot and Dowson : History of India as told by its own historians Vol-II
		iii)	Translated into Hindi by Rizvi, Aadi, Turk Kalin Bharat
9.	Aziz, Abdul	:	The Mansab system and the Mughal Army
10.	Badayuni, Al	:	Kuntakhab-Ut-Tawarikh calcutta, 1968: Translated into English by George S.A. Ranking 3 Vol. 1973
11.	Baden Powell, B.H.	:	Land System of British India, 3 Vols.
12.	Baihaki, Abdul Fazal Al	:	Tarikh-us-subuktigin Elliot and Dowsons, Vol- II Aligarh Eition)
13.	Bandopadyaya, N.c.	:	Economic Life and Progress in Ancient India
14.	Banerjee, Jamini Mohan	:	History of Feroz shah Tughluq 1967
15.	Barani, Ziauddin	:	Tarikh-I-Ferozshahi, Translated into English by A.R. Fuller and A. Khallaque; Extracts Translated intoEnglish E.d. Vol. III; Translated into Hindi by A.A. Rizvi.

16.	Barani, Ziauddin	:	Fatwai Jahandari
17.	Basu Shyuam Prasad	:	Rise and fall of the Khaliji Imperialism
18.	Basam, Dr. A.	:	The Wonder that was India.
19.	Batuta, Ibn	:	Travels of Batuata Translated into English by H.A.R., Gibb, 1963 Hindi Translated by AA Rizvi in Adi Turk Kalin Bharat and Tughluq Kalin Bharat Vol-I
20.	Bhargava, Brij Kishore	:	Iadigenous Banking in Ancient and Medieval in India
21.	Browne	:	Literary History of Persia, vol-I
22.	Boxer, C.R.	:	Protuguese Seaborne Empire
23.	Brigs,John	:	History of the Rise of Mohamadan Power in India Vol-IV
24.	Brown, Percy	:	Indian Architecture
25.	Chandra, Naya	:	Rambha Manjari, Edited by Ram Chandra Shastri, Bombay, 1899
26.	Chaudhari, K.N	:	The Trading world of Asia and the East India Company, 1660-1760
27.	Chicherov, A.I.	:	Indian Economic Development in the 16th-18th Centuries, Outline History of Crafts and Trade.

28.	Commissariat, S.	:	A History of Gujrat, 2 Vols.
29.	Chaudhari, K.N.	:	The Trading world of Asia and East India Company, 1660-1760
30.	Cunningham Major-General Sir A	:	Coins in Medieval India, 1967
31.	Dabral, Shiv Prasad	:	i) Uttra Khand ka Rajnitik Aur Sanskritic Itihas (Hindi)
32.	Dasgupta, J.N.	:	Bengal in the 16th Century
33.	Day, U.N.	:	Some Aspects of Medival Indian History 1971
34.	Das, Shyam Sundar (Editor)	:	Raso Sara
35.	Dhara, Lakshmi	:	Virudha Vidhi Vidhuvans.
36.	Edward, Thomas	:	The Chronicles of the Pathan KIngs of Delhi, 1967
37.	Elphinstone	:	History of India
38.	Elliot and Dowson	:	History of India As Told by its own Historians vol-II with Introduction by Muhammad Habib (Aligarh Edition)
39.	Elliot	:	History of India as told by ita own Historian, Vol.-3

40.	Fakhruddin	:	Tarikh-I-Fakhruddin Mubarak Shah
41.	Faster, W.	:	The English Factories inIndia, 1618-69
42.	Fegusson James	:	History of Indian and Eastern Architecture, Vol-2
43.	Forbes, Alexander	:	Rasmala, 2 Vols.
44.	Forbes James	:	Oriental Memoirs, Vols-3
45.	Fuller, A.R. and A. Khallaque	:	The Reign of Alauddin Khilji, Translated from Zia-ud-din Barani's Tarikh-I-Firozshahi.
46.	Ganguli, D.C.	:	History of the Para mara Dynasty
47.	Gardizi	:	Zain-ul-Akhbar
48.	Gillian, K.I.	:	A Studyof Indian Urban History
49.	Habib, Irfan	:	The Agrerian System of Mughal India
50.	Habib, Irfan	:	Banking in Mughal India, in Contributions to India Economic History. Ed. Tapan Ray Chaudhari
51.	Habib, Irfan	:	Usury in Medieval India- Comparative Studies in Society and History, VI
52.	Habib, M.	:	The Political theory of the Delhi Saltanat
53.	Habib Mohmmad And Nizamai, K.A.	:	Delhi Sultnate Hindi Sanskaran 1978

54. Habib and Nizami : Comprehensive History of India Vol. V (Delhi Sultante)

55. Habib, Muhammad : The life and Times of Sultan Mahmud of Ghazin

56. Habibullah, A.B.M. : The Foundation of Muslim Rule in India and its Hindi Translation in the name of Bharat Me Muslim Raja ki Buniyad, 1978

57. Halim, Abdul : History of the Lodi Sultans of Delhi and Agra, 1974

58. Hasan, Ibn : Central Structure of the Mughal Empire

59. Hasan, S. Nurul : Thoughts on Agarian Relation in Mughal India,

60. Hasan, S. Nurul : Zamidaras under the Mughal's Land Control and Social Structure in India History, E.L.E., Frykenbegr.

61. Havell, E.B. : Aryan Rule in India; London, 1918

62.	Haig, Sr. W. (Editor)	:	The Cambridge History of India Vol. III
63.	Hitti, Philip, K.	:	A short History of the Arabs (Hindi) Sri Prabhakar Sahitya Lok Lucknow 1961
64.	Hodivala, H.S.	:	Historical Studies in Mughal Numismatics
65.	Hussain, Aga Menhadi	:	Tuglaqu Dynesty
66.	Hussain, Yusuf	:	Muslim Polity
67.	Hussain Yusuf	:	Indo-Muslim Polity, 1971
68.	Hussain, Menhadi Agha	:	(i) Tughluq Dynasty, 1963 ii) The Rise and Fall of Muhammad bin Tughluq, 1938
69.	Irvine, William	:	The Army of the Indian Mughals
70.	Isami	:	Futuh-us-Salatin (i) Translated into English by Dr. Mehdi Hussain in three Volums.

			(ii) Translated into Hindi by Rizvi in Addi Turk Kalin Bharat.
71.	Ishwari Prasad	:	History of Qauaunah Truks in India
72.	Ishwari Prasad	:	History of Medieval India
73.	Jaffar, S.M.	:	Medieval India Under Muslim Kings, 1972 (The Rise and Fall of the Ghaznavids). Idarah-I-Adabiyat-I-Delhi, 1972
74.	Jauhary, R.C.	:	Firoz Tughluq (1351-1388 A.D.) 1987
75.	Joshi, Rekha	:	Sultan Iltutamish
76.	Kabir, Muhammad	:	Afsana-I-shahan
77.	Keene	:	History of India, Vol-I
78.	Khan, Abdulla	:	Tarikh-I-Daudi
79.	Khan, Ahsan Raza	:	Chieftains in the Mughal Empire During the Reign of Akbar
80.	Khusrau, Amir	:	i) Kiranud-Sadain ii) Khazain-ul-Futuh

81.	Lal, K.S.	:	Studies in Medieval Indian History
82.	Lal, K.S.	:	History of the Khaljis, 1950 Hindi Education 1964
83.	Lal, K.S.	:	Twilight of the Sultanate 1963
84.	Lallan Ji Gopal	:	Economic Life of Northern India, 700-1200
85.	Lane Poole, Stanley	:	Medieval India Under Muhammadan Rule, 1910, Also its Hindis Edition Published by S. Chand & Company Delhi.
86.	Latif, Abdul	:	Basis of Islamic Clture
87.	Law, N.N.	:	Promotion of Learning in India During Muhammadan Rule, 1916
88.	Mahalingam, T.V.	:	Economic Life in the Vijaynagar Empire
89.	Majumdar, R.C. (Edi)	:	The Struggle for Empire, Bhartia Vidya Bhavan, Series, Bombay, 1967 Second Edition
91.	Malcolm	:	History Persia

92.	Marshal, S. John.	:	Combridge-History of India Vol-3
93.	Masum, Mir	:	Tarikh-I-Masumi
94.	Merutunga	:	Prabandha Chinta Mani, Singhi Jain Granth Mala Vol-I Translated by Ch. Tawney, Calcutta, 1899
95.	Mehta, Dr. J.I.	:	Advanced study in the History of Medieval India
96.	Moreland, W.H.	:	Agratian System of Moslem India (English and Hindi Version both), 1963
97.	Moreland, W.H.	:	Akbar to Aurangzab a study in Indian Economic History
98.	Moreland, W.H.	:	India from Akbar to Aurangzeb
99.	Moreland, W.H.	:	Jahangir's India and P. Gole
100.	Movia, S.K.	:	Annals of Delhi Badshahat
101.	Mukherjee, Radha Kumud	:	A History of Indian Shipping
102.	Munshi, K.M.	:	Struggle for Empire
103.	Mushtaqui, Sheikh Rizkullah	:	Wakyat-I-Mushtaqi

104. Naqvi, H.K. : Urban Centres and Industries in Upper India 1556-1803

105. Naqvi, H.K. : Urbanization and Urban Centres Under the Great Mughals

106. Nigam, S.B.P. : Bobility Under the Sultans of Delhi, 1206-1398

107. Niyogi, Pushpa : Contribution to the Economic History of Northern Indian, from 10th to 12th century A.D.

108. Nizami, K.A. : (Ed.) Politics and Society During the Early Medieval Period Collected works of Professor Mohammad Habib, 1 Vol.

109. Nizami, K.A. : Some Aspects of Religion and Politics in India during the Trhiteenth century

110. Nizami, K.A. : Salatin-1-Delhi Ke Majhabi Ruzhanat

111. Nizami, K.A. : Studies in Medieval History and Culture Kitab Mahal, Allahabad, 1966

112.	Nizami, Hassan	:	Tajul-Maasir
113.	Niyamatullah, Khwajah	:	Tarikh-1-Khanjahani Makh Zanal-Afghani India Office Library M.S.
114.	Ojha, G.H.	:	Udaipur, Rajya Ka Itihas
115.	Pandey, A.B.	:	The First Afghan Empire In India.
116.	Pavlov, V.I.	:	Historical Premises for India's Transition toGapitalism (Late 18th and mid. 19th century)
117.	Philips, C.H. (Edi)	:	Historians of India Pakistan andCeylon
118.	Prabha Chandra	:	Prabhavak Charit
119.	Qureshy, I.H.	:	The Administration of the Sultaneature of Delhi
120.	Ramanaiya, N.B.	:	The third Dynesty of Vijay Nagar
121.	Ranade, Dr.	:	Essays on India Economic
122.	Rashid, A.	:	Society, and Culture in Medeival India (1206-1526 A.D.)
123.	Rai Chawadhary G.C.	:	History of Mewar
124.	Rai, H.C.	:	Dynastic History of Northern India Vil. II Second Edition, 1973

125.	Rai Chawdhary, Tapan and Infan Habib	:	(Ed.) the cambridge Economic History of India, Vol-1 (1200-1750)
126.	Rizvi, A.A.	:	(i) Aadi, Turk Kalin Bharat (Hindi) (ii) Khalji Kalin Bharat (iii) Tughluq Kalin Bharat (Hindi) Vol-I, II (iv) Taimur Kalin Bharat Vol-I (Hindi) (v) Uttar Taimur Kalin Bharat Vol-II (Hindi)
127.	Saran, P.	:	The Provincial Government of the Mughals
128.	Saran, P. .	:	Studies in Medieval Indian History
129.	Sarkar, B.K.	:	The Positive Background of Hindu Sociology
130.	Sarkar, J.N.	:	Military History of India
131.	Sarkar, J.N.	:	History of Aurangzeb, Vol-III

132.	Sarkar, J.N.	:	Mughal Administration
133.	Sachau, Edward. C.	:	(i) Alberuni's India, English Translation S. Chand & Co. (ii) Translated into Hindi by Aadarash Hindi Pustakalay Allahabad, 3.
134.	Sharma, Dashrath	:	Early Chauhan Dynasties, 1959
135.	Sharma, Dashrath	:	Rajasthan Through the Ages, 1966
136.	Satish Chandra	:	Medieval India
137.	Satish Chandra	:	Parties and Politics at the Mughal Court, 1707-40
138.	Shah, Ahmad	:	The Bijak of Kabir
139.	Sharma, Dr. Brij Narayan	:	Social Life in Northern India
140.	Sharma, G.D. The Marsaris	:	Foundation of Indian Capitalist class, India Business Committies, (ed)D. Tripathi
141.	Sharma, G.D.	:	Rajpat Polity

142. Sharma, R.S. : Social Changes in Early Medieval India, The First Devraj Channa Memorial Lecture, 1969

143. Siddiqui, N.A. : Land Revenue Administration Under the Mughal (1700-1750)

144. Singh, R.B. : History of the Chahamanas, 1964

145. Siraj, Minhaj : (i) Tabakat-I-Nasiri Translated into English by Major Revetry Vol. & II
(ii) Translated into Hindi by Rizvi in Aadi Turk Kalin Bharat

146. Sirhindi, Yahya Bin : Tarikh-I-Mubarak Shahi
(i) Translated into English by K.K. Basu
(ii) Extracts Translation into English by Elliot and Dowson History of India As Told by Its Historians Vol. IV

(iii) Translated Into Hindi by Rizvi in Aadi Turk Kalin Bharat

147. Smith, V.A. : Akbar the Great Mughal

148. Smith V.A. : The Early History of India Forth edition

149. Srivastava, Ashok K. : The Life and Times of Kutub-ud-din Aibak, 1972

150. Srivastava, Ashok K. : Chamanas of Jalor, 1979

151. Srivastava, Ashok. K. : Khalji Sultans in Rajasthan, 1981

152. Srivastava, Ashok K. : Disintigration of North Indian Hindu State (C. 1175-1320 A.D.) Vol. I 1989

153. Srivastava, Ashok K. : Disntigration of North Indian Hindu States Vol-II, 1989

154. Srivastava, Ashok K. : Sultan Balban (Hindi) 1987

155. Srivastava, A.I. : Delhi Sultnate (Hindi ed.) 1982

156. Srivastava, A.L. : Akbar the Great

157. Srivastava, A.I. : Indian Medieval Culture

158. Steensguard, N. : The Asian Trade in the Early 17 Century Ancient Indian

159.	Strabo	:	Ancient Indian
160.	Surendra Gopal	:	Commerce and Crafts in Gujrat : 16th and 17th centuries
161.	Suri, Jaina, Prabha	:	Vididh Tirtha Kalpa, singhi Jain Grantha Mala, 1934
162.	Suri, Padmanabh	:	Kanha-da-de-Prabandh
163.	Suri, Nayachandra	:	Hammir Mahakavya
164.	Swell	:	A. Forgotten Empire
165.	Tarachand	:	Influence of Kalam in Indian Culture
166.	Terry, Adberd	:	Voyage to East Indian
167.	Towny	:	Praband Chintamani
168.	Tod, Col. James	:	Annals And Antiquities of Rajasthan (Crooke Edition)
169.	Tripathi, R.P.	:	Some Aspects of the Muslim Administration
170.	Tripathi, R.P.	:	Some Aspects of the Muslim Emperors of India
171.	Uddabir, Haji	:	Jafrul Wali
173.	Ufi Muhammad	:	Jami-ul-Hikiayat

			(i) Translated into English by Elliot and Downson, History of Indian as told by its own Historians Vol-IV Translated into Hindia by Rizvi Tughlaq Kalin Bharat
174.	Vaidya, C.V. Edited	:	History of Medieval Hindu India, Vol-3
175.	Verma, H.C. (Edited)	:	Madhya Kalin Bharat, (Hindi) Second Edition 1985 (750-1540 A.D.)
176.	Vardai, Chandra	:	Prithvi Raj Rasso
177.	William Rush Brooke	:	An Empire Builder of the Sixteenth Century, Published by S. Chand and Company, New Delhi
178.	Yazdani, G. (Editor)	:	Deccan Ka Prachin Itihas (Hindi 1977)
179.	Yule, Henry	:	Cathay and the Way Thither Vols.-I-IV 1914, 1916

निबन्ध

1. Desai, A.V. : Population and Standards of Living in Akbar's Time (IESHR IV (I)March, 1972)

2. Fukazawa, H. : Land and Peasants in the 18th century Maratha Kingdom (Hitotsubahi Journal of Economics. Vi (I) June 1965)

3. Fukazawa, H. : Rural Servants in the 18th century Maharastrian Village Demiugic of Jaimani System (Histosubashi Journal of Economics, XII (2) 1972)

4. Grover, B.R. : Agrarian Classification of Land under Akbar, (P.I.H.C., Aligarh Session 1960)

5. Grover, B.R. : Nature of the Dehat-i-talauqa (Zamindari Villages) and the evolution of Taaluqdari system during the Mughal Age (IESHR, II, 1965)

6.	Grover, B.R.	:	The position of Desai in the Pergana Administration of Suba Gujarat under the Mughals, Proceeding of Indian History Congress, (PIHC), Delhi Session 1961.
7.	Gupta, S.P.	:	Ijara System in Eastern Rajasthan 1650-1750, Medieval India A Miscellany, Vol-II Aligarh, 1972
8.	Gupta, S.P.	:	The Jagir System During the Evolution of Jaipur State (P.I.H.C., 1974)
9.	Habib, Ifran	:	Distribution of Landed Property in Pre-British India, Enquiry N.S.-II (3) (O.S. No. 12) Winter 1965, Delhi
10.	Habib, Ifran	:	Potentialities of Capitalistic Development in the Economy of Mughal India, Enquiry N.S. II (3) (O.S. No. 15) Winter 1971

11.	Habib, Ifran	:	The System of Bills of Exchange (Hundis) in the Mughal Empire (PIHC, 1972)
12.	Hasan, Aziza	:	The Silver Currency output of the Mughal Empire and Price in India during the 16th and 17th centurie's (IESHR, VI (I)(1969) AND VII, 1970)
13.	Hasan, S. Nurul	:	K.N. Hasan and S.P. Gupta "The Pattern of Agricultural Production in the Territories of Amber (PIHC, 1966)
14.	Hasan, S. Nurul S.P. Gupta	:	Price of Food Grains in the Territories of Amber (PIHC, 1967)
15.	Hussain, Afzal	:	Growth of Irani Elements in Akbar's Nobility (PIHC, Aligarh Session, 1975)
16.	Khan, Iqtidar Alam	:	The Middle Classes in the Mughal Empire, Sectional Presdinitial Address-Dedieval

			Indian (PIHC, 1975)
17.	Khan, Iqtidar Alam	:	The Nobility Under Akbar and the Development of his Religious Policy, 1560-1580 (Journal of the Royal Asiatic Society, 1968)
18.	Kulkarni, A.R.	:	Village Life in the Deccan in the 17th century (IESHR, IV (I) 1967)
19.	Mihra, S.C.	:	Land Revenue Adminisstration of Sher (PIHC, 1952)
20.	Moosai, Sireen	:	Evolution of Mansab System Under Akbar till 1595-96 (The Journal of Royal Asiatic Society, London, 1980)
21.	Moosai, Sireen	:	Production Consumption and Population in Akbar's Time (IESHR X (2) 1973)
22.	Qaisar, A.J.	:	Distribution of Revenue Resources of the Mughal Empire Among the Mobility (PIHC Allahabd Session, 1965)

23.	Qaisar, A.J.	:	Note on the Date of Institution of Mansab Under Akbar (PIHC, 1961)
24.	Satish Chandra	:	Jiziya and the State in India During the 17th century (Jountal of the Social and Economic History of the Orient, XII, 1969)
25.	Satish Chandra	:	Some Aspects of the Growth of Money Economy in India during the 17th century (Indian Economic and Social History Review, (IESHR), III (4) 1966)
26.	Satish Chandra	:	Some Aspects of Indian Village Society in Northern Indian During the 18th century (Indian Historical Review (IHR,I, 1974))
27.	Satish Chandra	:	Some Institutional Factors Providing Capital Inputes for the Improvement and Extension of Cultivation in Medieval Indian

(IHR, I 1976)

28. Shrarma, G.D. : Concept of Sovereignty and Marwar Nobility During the 16th Centry (PIHC, 1975)

29. Sharma, G.D. : Vyaparis and Mahajans in Western Rajasthan During the 18th century (PIHC, Bombay Session, 1980)

यात्राएं

1. Ansari, M.A. : English Travellers in India

2. Barbosa, Durte (C. 1518) : The book of Durte Barbosa-An-Account of the Countries Berdering on the Indian Ocean and their inhabitants, 2 Vols. London, 1918 and 1921

3. Bernier, Franceis : Travelsin the Mughal Empire, 1656-68, Trans. From French by Irving Brock, revised and annotated by A. Constable, London 1891. Photo offset, Delhi, 1968

4. Buchanan, F. : A Journey from Madras through the Countries of Mysore Canara and Malabar.

5. Della Valle, Picture (1623-4) : The Travels of Pietro della valle in India, Ed. E. Grey-2 Vols. London, 1892

6. Fitch, Ralph : Early Travel in India 1513-1619 (Account of Ralph Fich Mildengall, William Hawkins, William Fitch Edward Terry etc) Ed. W. Foster, London 1921 (Photo-offset Edn. Delhi, 1968)

7. Manucc, Niccolao : Storia-de Mogor, trans, W. Irwine, 4 Vols. (1699-1709) London, 1907-1908

8. Yule, Sir Benery, Marcopolo : Travels of Marcopolo

9. Mundy, Peter : The Travel of Peter Mundy, Vol.-II Travels in Asia, 1628-1634 Ed. Rechard Carne Temple, 1914

10. Persaort, Francisce (1926) : Remenstratic, Trans. W.H. Moreland & P. Goyal, Jahangir's India Cambridge,1925

11. Tavernier, Jean Baptiste : Tavernier's Travels in India (1604-67) (i) trans. V. Ball 2 Vols. London 1889. Balls trans revised and Ed. W. Crooke, London, 1925

19. Medieval India Quartelly, Part-III (Aligarh)

20. Medieval Indian Culture

21. nagari Pracharini Patrika

22. Puratatva Prabandh Sangrah

23. Proceedings of the Indian History Congress (P.I.H.C.) 1952, 1960, 1961, 1965, 1966, 1967, 1972, 1974, 1975, 1980

24. Research Bulletin, Department of History. University of Gorakhpur.

25. Sita Ram Kohili Memorial Lecturs, Punjab, University, Patiala

26. Sindhi Jain Granthmala.

27. Some Aspects of Indian Culture on the Eveof Muslim Invasion, Chandigarh, 1962.

<u>**GAZETEERS**</u>

1. Bombay Gazetteers
2. Gaya Gazetteers
3. Imperial Gazetteers